दूरस्थ शिक्षा निदेशालय

Directorate of Distance Education

जम्मू विश्वविद्यालय

University of Jammu

जम्मू

Jammu

पाठ्य सामग्री

Study Material

एम0 ए0 हिन्दी

M.A. (HINDI)

Session - 2019 onwards

पाठ्यक्रम संख्या : Hin–402		सत्र – चतुर्थ
Course Code : Hin 402	कथाकार यशपाल	**Semester - IV**
इकाई – 1 से 4		आलेख संख्या 1–12
(Unit : 1 to IV)		**Lesson No. 1-12**

Dr. Anju Thappa
Course Co-ordinator

http:/www.distanceeducationju.in

इस पाठ्य सामग्री का रचना–स्वत्व/प्रकाशनाधिकार दूरस्थ शिक्षा निदेशालय, जम्मू विश्वविद्यालय, जम्मू – 180 006 के पास सुरक्षित है।

All copyright privileges of the material reserved by the Directorate of Distance Education, University of Jammu, Jammu – 180 006

M.A HINDI - C. NO. 402

Course Contributors :

Lesson No. 1 to 4	**-**	**Dr. Anju Thappa** **Associate Professor, DDE** **University of Jammu, Jammu**
Lesson No. 5 to 8	**-**	**Dr. Sunil Kumar** **Assistant Professor,** **Guru Nanak Dev University, Amritsar**
Lesson No. 9 to 12	**-**	**Dr. Deepika Sharma** **SET**
Proof Reading	**-**	**Ms. Nisha Devi** **Ph.D Research Scholar, NET, JRF**

© Directorate of Distance Education, University of Jammu, Jammu. (2020)

All rights reserved. No part of this work may be reproduced in any form by mimeograph or any other means, without permission in writing from the DDE, University of Jammu. Jammu.

The script writer shall be responsible for the lesson/script submitted to the DDE and any plagiarism shall be his/her entire responsibility.

Printed by : Khajuria Printers/2020/No. of Copies 1000

विषय–सूची

आलेख सं०	आलेख
1.	यशपाल का व्यक्तित्व एवं कृतित्व
2.	भारत विभाजन की त्रासदी और झूठा सच
3.	'झूठ सच' में नारी चित्रण
4.	'झूठा सच' के प्रमुख पात्र
5.	'दिव्या' उपन्यास का कथानक
6.	'दिव्या' उपन्यास में ऐतिहासिकता
7.	'दिव्या' उपन्यास में नारी
8.	'दिव्या' उपन्यास के प्रमुख पात्र
9.	कहानीकार यशपाल
10.	यशपाल की कहानियों की मूल संवेदना
11.	पाठ्यक्रम में निर्धारित कहानियों का समीक्षात्मक अध्ययन
12.	पाठ्यक्रम में निर्धारित कहानियों के प्रमुख पात्र

यशपाल का व्यक्तित्व एवं कृतित्व

1.0 रूपरेखा
1.1 उद्देश्य
1.2 प्रस्तावना
1.3 यशपाल का व्यक्तित्व एवं कृतित्व
1.3.1 यशपाल एक परिचय
1.3.2 साहित्य–सृजन की प्रेरणा
1.3.3 व्यक्तित्व के निर्माणकारी तत्व
1.3.4 क्रान्तिकारी रूप में
1.3.5 साहित्यिक तथा बहुमुखी प्रतिभा
1.4 यशपाल का साहित्य
1.4.1 उपन्यासकार के रूप में
1.4.2 कहानीकार के रूप में
1.4.3 नाटककार के रूप में
1.4.4 निबन्धकार के रूप में
1.5 निष्कर्ष
1.6 कठिन शब्द

1.7 अभ्यासार्थ प्रश्न

1.8 पठनीय पुस्तकें

1.1 उद्देश्य

प्रस्तुत आलेख के अध्ययनोपरांत आप यशपाल के व्यक्तित्व से परिचित होंगे। इस आलेख में आप यह जानेंगे कि साहित्यकार यशपाल बहुमुखी प्रतिभा के धनी थे। हिन्दी साहित्य में वे एक ऐसे साहित्यकार के रूप में हमारे सामने आए जिन्होंने कथाकार के रूप में ही नहीं अपितु एक नाटककार एवं निबन्धकार के रूप में भी हिन्दी साहित्य में ख्याति अर्जित की। वे हिन्दी साहित्य में उन अग्रणी लेखकों में से थे जिन्होंने भारतीय जीवन की जटिलताओं का चित्रण अत्यन्त गहराई और जीवन्तता से किया। वे एक महान क्रान्तिकारी, युग दृष्टा और श्रेष्ठ साहित्यकार थे।

1.2 प्रस्तावना

जन्म, पारिवारिक वातावरण, शिक्षा, परिस्थितियाँ और सम्पर्क का व्यक्ति के जीवन पर बहुत प्रभाव पड़ता है। अतः कलाकार के व्यक्तित्व के निर्माण में इनके महत्वपूर्ण योग को किसी भी दृष्टि से ओझल नहीं किया जा सकता। हिन्दी के कर्मठ और लब्धप्रतिष्ठ उपन्यासकार यशपाल ने अपनी सशक्त लेखनी द्वारा हिन्दी साहित्य को विविध रंगों से रंजित किया। उपन्यासों में राजनीति और रोमांस का कलात्मक समन्वय होने के कारण हिन्दी प्रगतिवादी लेखकों में इनका महत्वपूर्ण स्थान रहा। जीवन की सामाजिक, राजनीतिक, व्यक्तिगत समस्याओं के भीतर इन्होंने स्पष्ट शाश्वत सौन्दर्य को खोजने का प्रयास किया और उसे स्पष्ट रूप से अंकित किया।

1.3 यशपाल का व्यक्तित्व एवं कृतित्व

1.3.1 यशपाल एक परिचय

यशपाल का जन्म काँगड़ा में 3 दिसम्बर 1903 में एक साधारण स्थिति के परिवार में हुआ। माता–पिता में बनती नहीं थी। अतः उनका जीवन प्रारम्भ से ही अभावग्रस्त और संघर्षमय रहा। माता ने स्वयं फिरोजपुर के अनाथालय में अध्यापन–कार्य करते हुए पुत्र को निःशुल्क छात्र के रूप में गुरूकुल में

अध्ययनार्थ प्रविष्ट कराया। गुरूकुल के वातावरण में यशपाल ने प्रारम्भिक शिक्षा प्राप्त की। उनके पिता लाला हीरालाल स्थायी रूप से कांगड़ा में रहते थे। वहाँ यशपाल माता के साथ यदा–कदा जा पाते थे। इस तरह पिता का भरपूर सामीप्य और स्नेह भी उन्हें नहीं मिल सका। उनके व्यक्तित्व पर उनकी माँ की ही छाप विशिष्ट रूप से दिखाई पड़ती है।

उनकी माता सहनशील, साहसी, परिश्रमी और आत्मनिर्भर महिला थीं। दूसरी ओर यह भी कि पढ़ी–लिखी और साधनसम्पन्न परिवार की होते हुए भी उनका विवाह एक ऐसे व्यक्ति से हुआ था, जो उनके उपयुक्त नहीं था और आयु में भी उनसे काफी बड़ा था। लेकिन इन सब विषमताओं को भी उन्होंने सहज रूप से स्वीकार किया और समाज में सम्मानित रूप से अपना जीवन व्यतीत किया। यही बात हमें यशपाल के व्यक्तित्व में देखने को मिलती है।

माँ को अध्यापिका की नौकरी से जो अल्पराशि प्राप्त होती थी, वह परिवार के लिए अपर्याप्त थी, अतः यशपाल ने कम आयु में ही ट्यूशन पढ़ाना प्रारम्भ कर दिया था। घरेलू कार्यों में भी हाथ बँटाना वे अपना कर्तव्य समझते थे और उन्हें ऐसा लगता था कि स्कूल में दिन भर की मेहनत के बाद थकी–माँदी माँ घर लौटकर चौका बर्तन करे, यह अन्याय है। इसलिए अक्सर इस तरह के कार्य वे स्वयं कर लिया करते थे।

बचपन से ही आर्य समाजी वातावरण और गुरूकुल की शिक्षा–दीक्षा के कारण उन्हें सादे और मितव्ययी जीवन की शिक्षा मिली। वे अभावों में भी सहर्ष जीवन जीने के अभ्यस्त हो गये। अनु विग के शब्दों में, ''यशपाल के व्यक्तित्व की सबसे बड़ी विशेषता इनके साहस में लक्षित होती है। बचपन से लेकर अब तक यह इनके जीवन को प्रेरित करता रहा है। यदि किसी मूल्य को इन्होंने वैदिक ऋषियों से ग्रहण किया है तो वह अभय होने के संदेश में है। राजनीतिक, सामाजिक तथा साहित्यिक क्षेत्र में वह साहस से काम लेते रहे हैं। अभय होकर सोचते रहे हैं। अपनी बुद्धि तथा अनुभूति के अधीन होकर ही वह अपने दृष्टिकोण को बनाने में विश्वास रखते हैं।''

गुरुकुल काँगड़ी के पश्चात् यशपाल ने लाहौर के डी.ए.वी. स्कूल में शिक्षा प्राप्त की और सन् 1921 में उन्होंने प्रथम श्रेणी में मैट्रिक की परीक्षा उत्तीर्ण की।

यशपाल के पिता धनवान वर्ग के नहीं थे, लेकिन फिर भी काँगड़ा के समाज में वे उच्च स्तर के प्रतिष्ठित, सम्मानित और इज्जतदार व्यक्तियों में माने जाते थे। लोग उन्हें लालाजी के नाम से सम्बोधित करते थे हालाँकि न तो वे कोई बड़ा कारोबार करते थे और न ही वे किसी उच्च पद पर आसीन थे। बिना हिसाब रखे लोगों को सूद पर उधार रुपया देते थे। इससे उनको कोई अधिक आर्थिक लाभ नहीं होता था। यहाँ तक कि परिवार का निर्वाह भी कठिनाई से हो पाता था। पिता और चाचा में भी परस्पर मनोमालिन्य ही रहता था और आय का अधिकांश भाग उनके आपसी झगड़ों के निबटारे में भी उड़ जाता था। इसके अतिरिक्त अधिकांश लोग पैसे लेकर लौटाते भी नहीं थे।

यशपाल को पैतृक रूप में कोई चल या अचल सम्पत्ति प्राप्त नहीं हुई थी। पिता की आर्थिक विपन्नता के कारण यशपाल के आत्मसम्मान को ठेस लगती थी। माता–पिता का आत्मसम्मान उनके जीवन का एक अंग था। यशपाल ने स्वयं लिखा है, ''मैं जब कांगड़े गया, अपने पिता की स्थिति मुझे असम्मानजनक ही लगी। परन्तु न जाने क्यों लोग 'लाला' के सम्मानजनक नाम से सम्बोधित करते थे। चाहे वह कैसी भी नौकरी क्यों न कर रहे हों।''

नेशनल कॉलेज में पढ़ाते समय ही यशपाल के पिता का देहान्त हो गया था। माता के असीम साहस और स्वयं की कर्मशीलता के कारण वह अपना भविष्य निर्माण करने में सफल हो सके। अपने पति की मृत्यु के पश्चात् यशपाल की माता काँगड़ा ज़िला त्याग कर पंजाब आ गई। वहाँ उनके सभी रिश्तेदार आर्यसमाजी विचार के थे और वह भी आर्य समाज के आदर्शों की ओर झुकने लगीं। उन्होंने अपनी शैक्षणिक योग्यता को कुछ और बढ़ाया और अपने दोनों पुत्रों की शिक्षा चालू रखने के लिए नौकरी का सहारा लेकर जटिल जीवन पथ पर गतिशील हुई। इस काल में उन्हें केवल तीस रुपये वेतन मिलता था। इतनी कम राशि में बच्चों को अधिक सुविधाएँ प्रदान करना उनके लिए सम्भव नहीं था। यशपाल ने नंगे पाँव, खड़ाऊँ पहनकर, खाट पर सोकर, कड़ाके की सर्दी में सूर्योदय से पहले उठकर स्नान, और भोजन के पश्चात् अपने बर्तन स्वयं मांजकर सात–आठ वर्ष गुरुकुल में व्यतीत किये थे। आर्यसमाजी वातावरण के प्रभाव से वैदिक धर्म में यशपाल की माता की अपार श्रद्धा थी और वे अपने दोनों बच्चों को भी आर्य सिद्धान्तों के अनुकूल ही शिक्षा दिलाकर स्वामी

दयानन्द के विचारों का अनुयायी बनाना चाहती थीं। वे उन्हें एक तेजस्वी ब्रह्मचारी, ओजस्वी प्रचारक के रूप में देखना चाहती थीं।

यशपाल गुरूकुल के कठोर अनुशासन और वहाँ की दिनचर्या के समर्थक नहीं थे। उनके विचार से सभी विद्यार्थियों पर इसका विपरीत प्रभाव पड़ता था। उन दिनों गुरूकुल में विदेशी शासन–विरोधी आचरण पर प्रतिबन्ध नहीं था और विद्यार्थी स्वतंत्रता सम्बन्धी वार्तालाप बेहिचक किया करते थे। यदा–कदा शिक्षक स्वयं भी उन्हें क्रांति के लिए प्रोत्साहित करते रहते थे। गुरूकुल में बालक जब मंत्रों का उच्चारण करने के लिए आँखें मूँदते तो वे इंगलैंड में आर्यों का यानी अपना साम्राज्य और अंग्रेज़ों को कुरता–धोती में देखने की कल्पनाएँ करने लगते थे।

इस तरह, गुरुकुल की शिक्षा ने यशपाल की विद्रोही भावनाओं को बल दिया। विषमता और असमानता ने बालक यशपाल के हृदय में प्रतिकार की भावना को जन्म दिया। इस तरह प्रवृत्तियों को समय और परिस्थितियों के साथ बढ़ावा मिलता गया। परिणामतः वे एक क्रान्तिकारी के रूप में जनता के सामने प्रस्तुत हुए और उनका संवेदनशील हृदय देश के स्वतंत्रता–संग्राम में अपने प्राणों की बलि देने के लिए आतुर होने लगा।

गुरुकुल की प्रारम्भिक शिक्षा के बाद उन्होंने डी.ए.वी. स्कूल (फिरोज़पुर) में दाखिला लिया। यहाँ का माध्यम तो हिन्दी था परन्तु वहाँ के वातावरण में रमने के लिए उर्दू का ज्ञान उन्हें आवश्यक जान पड़ा, अतः 1919 में उन्होंने उर्दू सीखी। मिडिल की परीक्षा में भी प्रथम स्थान प्राप्त किया।

मिडिल करने के पश्चात् फिरोजपुर में ही मनोहर हाईस्कूल में नवीं कक्षा में प्रवेश ले लिया और पढ़ाई के साथ–साथ ट्यूशन भी करने लगे। हरिजन बालकों की पाठशाला में भी वे पढ़ाने जाया करते थे। घर के कार्यों में हाथ बँटाना तो दैनिक कर्तव्य था ही। इतनी सब व्यस्तताओं के उपरान्त भी मैट्रिक की परीक्षा प्रथम श्रेणी में उत्तीर्ण की। यह बात निश्चय ही यशपाल की विलक्षण प्रतिभा की द्योतक है। उनकी यह सफलता उनकी माँ के लिए विशेष प्रसन्नता का विषय थी। वे विपन्नताओं और गरीबी के पथ्य एक–एक दिन बच्चों के भविष्य की स्वर्णिम कल्पना में बिता रही थीं। फिरोजपुर शहर में, जोकि छावनी से तीन मील दूर था, तब तक स्वतंत्रता की चिनगारियाँ पहुँच चुकी थीं।

यशपाल पैदल ही कांग्रेस के जलसों, सभाओं और भाषणों में भाग लेने पहुँच जाते थे। इस तरह, शिक्षा काल से ही उनमें राजनीतिक गतिविधियाँ प्रारम्भ हो गई थीं। कांग्रेसी नेताओं को खद्दर पहनते देखकर इनके हृदय में भी खादी के कपड़े पहनने की ललक जाग पड़ी। घर में पुरानी रूई का बुना हुआ हाथ का खद्दर रखा था, उसी से कुरता, पायजामा, टोपी और कोट बनाकर मन को संतुष्ट कर लिया। वे कपड़े पहनकर जब भाषण देते थे तब अपने को शायद वह कांग्रेसी समझते होंगे? इसी समय इन्होंने देश—दर्शन नामक पुस्तक का अध्ययन प्रारम्भ किया। विदेशी कम्पनी के काले कारनामे, भारत के साथ षडयंत्र और मुगलों के समय की चीज़ों की कीमतों की तुलना अंग्रेज़ी काल की चीज़ों की कीमत से तुलना अंग्रेज़ी काल की चीज़ों की कीमत से करके तथा आर्थिक और राजनीतिक ज्ञान को अपना आधार बनाकर वे भाषण देते जिसका एकमात्र आधार विदेशियों के प्रति देशवासियों के हृदय में अधिक से अधिक रोष उत्पन्न करना था। इनके भाषण बहुत ही प्रभावपूर्ण होते थे। उन दिनों हर समय देशभक्ति और राष्ट्रप्रेम की भावनाओं के अथाह सागर में डुबकियाँ लगाते रहते थे।

मैट्रिक की परीक्षा देने और परिणाम निकलने तक वह फिरोजपुर शहर में रहकर कांग्रेस कार्यकर्ताओं के साथ कार्य करने लगे। यहां स्वामी विवेकानन्द और अरविन्द की पुस्तकों को पढ़ा और साथ ही लोकमान्य बालगंगाधर तिलक के 'गीता—रहस्य' का भी अध्ययन किया। इनके विचार तो परिपक्व हुए ही, साथ ही, आत्मिक शान्ति भी बहुत अर्जित की। फिरोजपुर में नया कॉलेज 'रामसुखदास कॉलेज' था। उसमें आगे में शिक्षा दिलाने की माँ की बहुत अभिलाषा थी क्योंकि यहाँ स्कूल और कॉलेज दोनों में छात्रवृति मिलती और माँ को शिक्षा के भार से भी मुक्ति मिल जाती। पर यशपाल इसके विपरीत नेशनल कॉलेज में जाना चाहते थे। वहाँ का वातावरण यशपाल के मनोनुकूल था। नेशनल कॉलेज लाहौर का वातावरण उस समय की परिस्थितियों तथा राजनीतिक गतिविधियों से सम्बन्धित था, अतः वहाँ यशपाल की भावनाओं को बढ़ावा ही मिलता। परन्तु वहाँ किसी तरह की छात्रवृत्ति की आशा करना व्यर्थ था। परिवार की स्थिति तो विकट थी ही। अतः माँ और पुत्र में काफी वैमनस्य के पश्चात् इस शर्त के साथ दाखिला मिला कि माँ पर आर्थिक रूप से अवलम्बित न रहेंगे।

नेशनल कॉलेज में पहुँचकर तो उनके मन की मुराद ही पूरी हो गई। यहां किसी तरह की राजनीतिक या देश भक्ति की प्रवृत्तियों को छिपाने की आवश्यकता नहीं थी। इसके विपरीत इस कॉलेज का उद्देश्य ही ऐसे कार्यकर्त्ताओं को तैयार करना था, जो देश की पुकार पर स्वतंत्रता–संग्राम में भाग ले सकें। यहां के शिक्षित विद्यार्थी को सरकारी नौकरी मिलना प्रायः मुश्किल ही था और वहाँ पर सभी जाति के विद्यार्थी पढ़ने आते थे। विद्यार्थियों को राजनीति, अर्थशास्त्र इतिहास, फारसी और संस्कृत की शिक्षा भी दी जाती थी। यहीं पर वे भगतसिंह, सुखदेव आदि साथियों के सम्पर्क में आये। जीवन क्रांति का प्रभाव यहीं से हुआ।

कॉलेज की पढ़ाई चार साल की थी। अतः भविष्य को बनाने और शीघ्र ही अपने पैरों पर खड़े होने के लिए एक साल में दो परीक्षाएँ उत्तीर्ण कीं, कॉलेज जीवन में ही जनता में जागृति लाने के लिए नाटकों को भी माध्यम बनाया। इसमें परस्पर सब विद्यार्थी भाग लेते और ओजपूर्ण गानों के साथ–साथ नाटक की पृष्ठभूमि देशभक्ति से सम्बन्धित रखते थे। उनके द्वारा अभिनीत 'भारत दुर्दशा' नाटक उस समय बहुत सफल और चर्चित रहा। नेशनल कॉलेज में अचानक हिन्दी के अध्यापक की जगह खाली हो जाने पर यशपाल को अवसर मिल गया। इससे बी.ए. की परीक्षा देने में आर्थिक रूप से थोड़े सबल हो गये।

नेशनल कॉलेज के पास ही द्वारकादास पुस्तकालय था। वहाँ पर हर तरह की राजनीति समसामयिक पत्र–पत्रिकाएँ पढ़ने को मिल जाती थीं, जो उस समय की परिस्थितियों से अवगत होने का सबसे बड़ा साधन थीं। दूसरे, वहाँ पर हर तरह के विचारों के विद्यार्थी आते थे जिनसे परस्पर विचार–विमर्श भी हो जाता था। इधर 'तिलक स्कूल्स ऑफ पॉलिटिक्स जौरा सरवेन्ट्स ऑफ पिपुल्स सोसायटी' पढ़ने से और रूसी साहित्य पढ़ने से समाजवाद की ओर भी इनका झुकाव हुआ। नेशनल कॉलेज में साहित्यिक गतिविधियाँ भी प्रारम्भ हो गई थीं। आगे कुछ कहानियाँ 'भ्रमर' में प्रकाशित हुईं। प्रायः मित्रगण इनको कहानी लेखक और कलाकार कहकर चिढ़ाने लगे थे। सन् 1924 में वे देहरादून हिन्दी साहित्य सम्मेलन में भाग लेने पहुँचे और वहीं श्री भगवतीचरण से उनका परिचय हुआ। श्री भगवतीचरण एक बहुत बड़े क्रांतिकारी रहे थे। सन् 1925 में हिन्दुस्तान रिपब्लिक सेना का परचा बँटा तो उसमें उन्होंने डरते–डरते भाग

लिया। प्रत्यक्ष रूप से तो वे उसमें भाग ले रहे थे पर साथ ही साथ नौकरी जाने और परीक्षा में न बैठ सकने का डर भी था। इसके साथ ही विपन्नता की रुढ़ियों को तोड़कर सम्पन्न और समृद्धिशाली बनने की व्यक्तिगत चाह भी परिलक्षित थी, अतः एकदम भाग लेने से डरते थे।

नेशनल कॉलेज में साम्प्रदायिक एकता को मजबूत बनाने के लिए सामूहिक भोजों का आयोजन किया जाता था। इन भोजों में सभी जातियों और सम्प्रदायों के विद्यार्थी भाग लेते और सब मिलकर भोजन बनाकर खाते थे।

भगतसिंह और यशपाल दोनों को ही साहित्य पढ़ने और लिखने में रूचि थी। हिन्दी के प्रसिद्ध साहित्यकार उदयशंकर भट्ट भी उस समय नेशनल कॉलेज में हिन्दी के अध्यापक थे। उनके प्रोत्साहन से ही इनकी पहली कहानी हिन्दी के एक मासिक पत्र 'भ्रमर' में प्रकाशित हुई। उससे उत्साहित होकर यशपाल ने उस समय के प्रमुख पत्रों 'प्रताप' तथा 'वन्दे मातरम' दोनों पत्रिकाओं में लिखना प्रारम्भ कर दिया। इन्होंने अपनी सबसे पहली कहानी अंगूठी शीर्षक से गुरूकुल में 12 वर्ष की अवस्था में लिखी थी, जो उनके साहित्यकार का प्रथम परिचय कराने वाली प्रथम रश्मि थी।

1.3.2 साहित्य सृजन की प्रेरणा

यशपाल को अपने प्रारम्भिक शिक्षाकाल से ही पाठ्य–पुस्तकों की अपेक्षा इतिहास की कहानियाँ पढ़ने में विशेष आनंद की अनुभूति होती थी। जब वे गुरूकुल में पाँचवी या छठी कक्षा में थे, तभी उन्होंने 'अंगूठी' नामक कहानी लिखी थी, जो उस समय के मानदण्ड से काफी अच्छी थी।

बचपन में ही गुरूकुल के साहित्यिक वातावरण के मध्य रहने से भी इन्हें प्रेरणा मिली। गुरूकुल में बड़ी कक्षा वाले विद्यार्थी अपने हाथ से सजा कर पत्रिकाएँ निकालते थे। वह सब देख–देखकर भी उनका उत्साह बढ़ता गया। 1920 में उन्होंने दूसरी कहानी लिखी। स्वाध्याय की ओर रूचि होने के कारण उनका अधिकांश खाली समय पुस्तकों के अध्ययन में ही बीतता था। 'चन्द्रकान्ता संतति' आदि अनेक जासूसी उपन्यास, प्रेमचन्द और सुदर्शन के उपन्यास तथा कहानियाँ, रवीन्द्रनाथ टैगोर और शरतचन्द्र तथा दूसरे बंगाली उपन्यासकारों के अनुवाद, कुछ बंगाली क्रान्तिकारियों के चरित्र आदि पुस्तकें उन्होंने बचपन में ही पढ़ ली थीं। उसी समय इन्होंने एक उपन्यास लिखने का प्रयास किया।

नेशनल कॉलेज में उदयशंकर भट्ट जैसे प्रोत्साहन तथा प्रेरणा देने वाले गुरू की उपलब्धि इस दिशा में ईश्वरीय वरदान सिद्ध हुई।

उस समय 'प्रताप' और 'प्रभा' भारत के दो प्रमुख पत्रों में से थे। इन्हीं पत्रों में भट्ट जी के प्रयास से इनके कुछेक लेख प्रकाशित हुए। इन लेखों में भारत को स्वतंत्र कराने की करूण पुकार थी। यहीं से इनके साहित्यिक जीवन की वास्तविक शुरूआत हुई। हाँ, यह अवश्य है कि समय और परिस्थितियों के साथ इन प्रेरणा के स्वरूपों में परिवर्तन आता गया। स्वयं यशपाल के अनुसार, ''चाहे जिस उद्देश्य से लिखा जाए, लिख पाने के लिए प्रेरणा का होना तो अनिवार्य है ही। लेकिन सभी परिस्थितियों–अवस्थाओं में प्रेरणा का स्त्रोत एक ही या एक जैसा हो यह आवश्यक नहीं। समय पर प्रेरणाएँ बिलकुल अलग ढंग की हो सकती हैं।

इनका ज्ञान केवल पुस्तकीय नहीं था। इनके प्रेरक तत्व भी असामान्य और निजी थे और वे थे अनुभव, विषम परिस्थितियाँ, विभिन्न प्रकार का वातावरण और कार्यकलाप। इन सबके पीछे इनका संवेदनशील मस्तिष्क प्रभावों और कारणों को कंजूस के धन की तरह संजोये हुए। झाँकता स्पष्ट दृष्टिगोचर होता है। इन्हीं सबने समय–समय पर इनको एक नई दिशा दी है। नन्ददुलारे वाजपेयी के शब्दों में, ''यशपाल का अनुभव क्षेत्र विशाल है और वे विशाल निर्बन्ध जीवन परिस्थितियों का चित्रण करने की क्षमता रखते हैं। वे समय और काल के अनुसार अपने विचारों और भावों को बदल लेते थे। अपने विचारों को किन्हीं रूढ़ियों और परम्पराओं की डोर में बांधकर संकुचित दायरे में नहीं रखना चाहते बल्कि अपनी सशक्त लेखनी से परिस्थिति और समय को बदलने की भी मन में चाह रखते थे।

यशपाल कहते हैं, ''परिस्थितियों के अनुसार विचारधारा निश्चित करने में ही मनुष्य स्वतंत्र है। विचारधारा में परिवर्तन न कर सकना ही विचारों की परतंत्रता है। आज मेरी प्रेरणा का मुख्य स्त्रोत अपने समाज के लिए विचारों की ऐसी स्वतत्रंता को भावना उत्पन्न करना ही है।''

इनकी प्रेरणा केवल थोथी आदर्शवादी प्रेरणा नहीं थी बल्कि यथार्थता और वास्तविकता इनके साहित्य की जान है। यथार्थता से मुँह मोड़ना इनके लिए असम्भव है। वह यथार्थता की गहराई में बैठ जाने में ही आत्मिक संतोष की

अनुभूति प्राप्त करते हैं।

यशपाल का साहित्यकार जीवन की वास्तविकता और विषमता से मुँह मोड़कर अनन्त पथ का पथिक बनना नहीं चाहता। इस तरह इनके साहित्य–सृजन को प्रेरणा इनका स्वयं का अन्तर्मन और अनुभूतियां ही हैं। इसके अतिरिक्त जीविकोपार्जन भी एक तरह से प्रेरक स्त्रोत ही कहा जाएगा। यह प्रश्न भी यशपाल के सामने रहा है पर किसी सीमा तक स्वयं यशपाल के शब्दों में, ''लेखक लिखने के लिए तो जीना चाहता ही है परन्तु लेखन की जीविका या व्यवसाय के रूप में स्वीकार कर लेने पर वह लिखने के फलस्वरूप जीविका या निर्वाह के साधन भी पाना चाहता है अर्थात् वह जीने के लिए भी लिखा है। यह एक अन्तर्विरोध भी हो सकता है लेकिन यह अन्तर्विरोध नहीं है क्योंकि लेखक लिखने के व्यवसाय के माध्यम को कमाई के प्रलोभन से ही नहीं अपनाता। वह केवल कमा पाने के लिए ही नहीं लिखता। समाज की मौजूदा आर्थिक व्यवस्था में निर्वाह के लिए कमाना आवश्यक है इसलिए लेखक को समाज की कला को समृद्ध करने के लिए समाज कल्याण की प्रवृत्ति से श्रम करने पर जीवन निर्वाह के साधनों के लिए भी लिखना पड़ जाता है।'' यशपाल के विचार में साहित्य साधना का मूल्य तो उचित मिलना ही चाहिए, पर इसका तात्पर्य यह कदापि नहीं कि एक लेखक या कलाकार बिलकुल व्यवसायी बन जाए और वास्तविकता से हट जाए। इस कथन की भी स्वयं यशपाल द्वारा पुष्टि हो जाती है, ''हम यह नहीं मानना चाहते कि लेखक केवल धन के लिए लिखता है और पर्याप्त धन पा जाने पर उसे लिखने की आवश्यकता नहीं रहती। कोई कारण नहीं गरीबी से मुक्ति लेखक की कलम रोक दे। यदि वैभव लेखक की प्रवृत्ति का दमन करता है तो उसे ठुकरा देना चाहिए। लेखक के लिए सबसे बड़ा सन्तोष अपनी अनुभूति को गहराई से अभिव्यक्ति दे सकता है। दमन को स्वीकारकर की गयी कला विकासोन्मुख नहीं हो सकती।'' इस तरह यशपाल अपने अथक परिश्रम से निर्धनता और विपन्नताओं की सीमाओं को तोड़कर सम्पन्न बन गये, इतना सब होने पर भी साहित्य–साधना में वे संलग्न रहे। धन उनकी कलम पर हावी नहीं रहा।

1.3.3 व्यक्तित्व के निर्माणकारी तत्व

यशपाल का कद पाँच फुट सात इंच तथा बदन इकहरा था। यशपाल के बाह्य व्यक्तित्व का वर्णन करते हुए रूपनारायण पाण्डेय ने अच्छा चित्र प्रस्तुत किया

था। ''यशपाल के होंठों पर मुस्कान है और सिगरेट की उजली धूम्र रेखाएँ उस मुस्कान को वयोगामी उर्ध्व किये हुए हैं। यशपाल की इस मुस्कान में उनकी वेदना नहीं, क्रान्ति किलकारी करती है। शोषण से ऊपर उठी हुई उनकी नुकीली नाक, चिबुक और सघन पलकें उनकी गहरी आंखों पर छायी है। केश पक चुके हैं। चिन्तन के भीतर से उनकी आँखों में विराट के लिए महान् और लघु के लिए महानता, विचार ज्योति की दृष्टि–रेखा समाज से सदैव संकलित की है। शोषण से उनकी कपोल अस्थियाँ बाहर निकल आयी हैं। फिर भी उनके हृदय की क्रांतिकर्मी वाणी बिना किसी दुराव–छिपाव के स्पष्टरुपेण सभी के प्रति स्वस्थ भावना से उर्मिल नूतन विचारधारा के पथ से ही प्रवाहित होती रही है।''

देखने में यशपाल न तो कलाकार ही लगते थे और न ही चेहरे पर विशेष कोई आकर्षण था, जो बरबस लोगों को उनकी ओर आकृष्ट करे। वेशभूषा भी सादी ही थी। गर्मी में पेंट–बुशर्ट और सर्दी में सूट पहनते थे। बातचीत भी बहुत ही संक्षिप्त और शुष्क होती थी। बाहरी व्यवहार सरकारी अफसरों जैसा शुष्क था। इसी कारण साहित्य सम्मेलनों, सभाओं आदि में मिलने वाले और देखने वाले इनको अहंकारी लेखक समझते थे। जिस प्रकार वे साहित्यिक केन्द्र में प्रगतिवादी थे उसी प्रकार इनकी वेशभूषा भी आधुनिक ढंग की थी। बातचीत के दौरान सीधे तर्क का प्रयोग करते थे। यशपाल की चिरपरिचित और 'हिन्दुस्तानी समाजवादी प्रजातंत्र सेना' की एक कार्यकर्ता–सहयोगी प्रसिद्ध दुर्गा भाभी प्रायः बातचीत के ढंग से चिढ़कर कह बैठती थी, ''तुम तो खामुखा कलाकार बन बैठे हो। पैदा तो पुलिस सुपरिटेंडेंट बनने के लिए ही हुए थे।''

इनके बाह्य रूप को देखकर लगता था कि परिस्थितियों और समय के कड़वे मीठे अनुभव ने गम्भीरता की छाप इनके बाहरी रूप पर छोड़ दी थी। देखने में बाहर से जितने गम्भीर थे, आंतरिक रूप से उतने ही सरस व विनोदप्रिय थे। थोड़ी देर के सम्पर्क से ही लगता था कि हम उनके बहुत ही निकट आ गये हैं। वे अपने पास आने–जाने वालों का सत्कार बहुत ही शिष्टता से करते थे।

इनका व्यक्तित्व आधुनिकता से प्रभावित था। इसमें वह भारतीय संस्कृति के प्रति निष्ठावान नहीं रहे। इनका कोट, पेंट, नाटक गाउन, चाय, कॉफी, ड्रिंक, सिगरेट, सिगार, आमिष–निरामिष भोजन, घर की सजावट, बगीचे में घूमने

आदि का शौक था। इनकी कोठी स्वयं इनके द्वारा बनाये हुए नक्शे के अनुसार बनी हुई है। वह पूरी तरह पाश्चात्य ढंग की थी। बाहर लॉन तथा छोटा–सा बगीचा भी लगा रहा था। सुबह–शाम अपने द्वारा हाथ से लगाये गये फूल–पौधों का निरीक्षण करना इनका स्वभाव बन गया था। लेखन–कार्य के बीच भी हरियाली से अपने आपको तरोताज़ा बना लेते थे। स्वयं यशपाल के शब्दों में, ''मैं पौधों का शौकीन हूँ और थोड़ी देर लिखकर गमलों का चक्कर लगा लिया करता हूँ।'' यशपाल को कुत्ते पालने का शौक था। इनकी कोठी का सारा ढाँचा ही विदेशी शैली पर खड़ा किया गया था। वे एक कुशल चित्रकार भी थे। जेल जीवन में इनके कई चित्र बनाये थे। पुस्तकों के मुखपृष्ट पर बनाने गये अधिकांश चित्र इनके ही थे। मौसम के अनुसार बियर और व्हिस्की का आनंद भी लेते थे। साथ ही लड़की किरण और लड़के को देने में भी संकोच नहीं करते थे। लखनऊ के कॉफी हाऊस का अनेक बार अध्यक्ष निर्वाचित होना इनके कॉफी हाउस के शौक का प्रमाण है। जग का मुजरा जैसी कृति वहीं के अनुभव का प्रमाण है। चाय तो दिन में जितनी बार लें, कम है। वे जीवन में हर तरह का आनंद लेने में विश्वास करते हैं। अज्ञेय लिखते हैं, ''बढ़िया सूट के साथ नब्बे सौ का शू पहनना चाहते हैं। रेफ्रिजिरेटर में रखे पेय का आनन्द उठाना चाहते थे और अधिक खर्च करना चाहते थे। इसका एक कारण तो वह गरीबी और अभाव हो सकता है जिसमें उनका बचपन और जवानी का अधिकांश समय व्यतीत हुआ और दूसरा वास्तविकता तथा आवागमन के दर्शन में उनका अविश्वास।''

यशपाल विद्यार्थी जीवन से ही मेधावी और होनहार रहे थे। विद्यार्थी जीवन में सदैव प्रथम श्रेणी में सफलता प्राप्त करना इनकी प्रखर बुद्धि का द्योतक है। देशी–विदेशी, यथा हिन्दी, संस्कृत, उर्दू, अंग्रेज़ी फ्रेंच, इटेलियन आदि भाषाओं पर इनका अच्छा अधिकार था और इन भाषाओं की कई अच्छी पुस्तकों का उन्होंने हिन्दी में अनुवाद भी किया है।

किसी भी व्यक्ति को कसौटी पर खरा उतारने के लिए उसके जीवन के कष्ट और विपत्तियाँ ही काफी होंगी। जिस प्रकार सोना अग्नि में जितना अधिक तपता है, उतना ही दमकता है ठीक उसी प्रकार मनुष्य की जितनी अधिक परीक्षा होती है, उसका व्यक्तित्व भी उतना ही निखरता है। अगर हम आज महान व्यक्तियों के चरित्रों को देखें तो हमें अपने प्रश्न का उत्तर स्वतः ही मिल जाएगा। मनुष्य अभावों से बहुत कुछ सीखता है। अपने यहाँ कहावत भी है कि

जितनी ठोकरें लगती हैं, उतनी ही बुद्धि आती है।

यशपाल का बचपन व यौवन अभावों और विपत्तियों में ही बीता, पर उनको विपत्तियों ने विचलित नहीं किया। करती भी कैसे! उन्होंने स्वयं ही स्वेच्छा से कंटकाकीर्ण पथ को चुना था। भाग्यवश इनकी माता तथा धर्मपाल (छोटे भाई) और पत्नी भी समय समय पर इनके कार्यों में सहयोगी बनते रहे जिससे इनका पथ और सुगम होता चला गया।

क्रान्तिकारी जीवन में अर्थात् 1928 से 1968 तक इनको हर क्षण मौत के मुँह से गुजरना पड़ता था। श्रीमती सरोज गुप्त के शब्दों में, ''कश्मीर का प्राकृतिक रमणीक स्थान भी जिसके मन को न डगमगा सका तथा उसी पारदर्शी जल की लहरों के किनारे वे बम के मसाले की विधि तैयार करने में संलग्न रहे।'' स्वयं यशपाल के शब्दों में, ''संसार के स्वर्ग कश्मीर के सुन्दरतम स्थान में कमल के फूलों पर नाव में विहार करता हुआ मैं अपने ही गले के लिए फाँसी की रस्सी बट रहा हूँ। इस कल्पना से मेरे होंठों पर मुस्कुराहट आ जाती।'' इस तरह यह देखा जा सकता है कि यशपाल के जीवन में कितना अधिक वैषम्य है। एक ओर साहित्य जैसी सुकोमल भावना और संवेदनापूर्ण कला और दूसरी ओर मृत्यु का क्रान्तिकारी पथ।

यही कारण है कि आज यशपाल लोगों के मन–मानस पर छाये हुए हैं। स्थिरता, परिश्रमशीलता, सहानुभूति, संयम, कर्मठता, साहस, प्रखर बुद्धि आदि बहुत से ऐसे गुण हैं, जो हर साधारण व्यक्ति में पा सकना आसान नहीं। वे तन–मन से मनुष्यता का निरूपण करते हैं। साथ ही, मानव मात्र तथा मानवता के प्रति इनमें आगाध निष्ठा और विश्वास था।

वे प्रारम्भ से ही जिस कार्य को करने का संकल्प करते थे उसमें चाहे कितनी ही बाधाएँ क्यों न आएँ– विचलित नहीं होते, साहस से जुटे रहते थे। फरारी जीवन में चार–चार दिन भूखे रहने और मीलों पैदल चलने की भी नौबत आयी। सर्दियों में पंजाब जैसी भीषण सर्दी में एक कमीज में और बिना बिस्तर के दिन निकाले। कुछ लोगों के परस्पर वैमनस्य के कारण पार्टी के द्वारा शूट करने के निर्णय से भी विचलित नहीं हुए, न ही पार्टी के प्रति मन में किसी प्रकार का विद्वेष रखा। बल्कि समय आने पर गम्भीरता और बुद्धिमता से उन आरोपों का खंडन करके पार्टी में पुनः अपना महत्वपूर्ण स्थान प्राप्त किया। यह सब इनके

हृदय की विशालता और बुद्धि–चातुर्य का ही प्रमाण है।

वे वेशभूषा या अपनी आकृति बदलने में इतने पटु थे कि फरारी जीवन में ब्रिटिश पुलिस के द्वारा इनको पकड़ने के लिए जो इश्तहार इनाम के साथ–साथ रेलवे स्टेशन, बाज़ार, सड़कों पर चिपकाये जाते थे, वहाँ पर साहस के साथ आना जाना जारी रहता था। पहचान में न आने के लिए कभी गाँव के नौकर का भेष बना लेना और कृष्णा के रूप में मालिक लेखराम के यहाँ झाड़ू लगाना, दवाई कूटना, वैद्यजी को पंखा करना और आने–जाने वालों को कुएँ से खींचकर ठण्डा पानी पिलाना तथा जाते–जाते सिर पर बक्स या कनस्तर या और कुछ वजन ले जाने पर भी न कोई ग्लानि और न कोई लज्जा का अनुभव करना इनकी पटुता का प्रमाण था। इसके अतिरिक्त बम का मसाला पुलिस के तीन कांस्टेबलों के साथ लारी में ले जाने पर उनका ध्यान अपनी ओर आकर्षित न होने देने के लिए उन लोगों के साथ मजाक में शामिल हो जाना इस बात का प्रमाण है कि अवसर के अनुसार वे स्वयं को किस प्रकार परिवर्तित कर लेते थे।

इसी तरह सुखदेव के गिरफ्तार हो जाने पर उनसे जेल में पार्टी की कुछ जरूरी बातें, पूछने एक बैरिस्टर के वेश में बेधड़क चले जाना उनके असीम साहस और कुशाग्रता का ही प्रमाण कहा जाएगा।

इस तरह एक बार नहीं, अनेक बार पुलिस से मुठभेड़ होने पर वे अपने वाक्‌चतुर्य, साहस और हाजिरजवाबी के कारण बचते रहे। यशपाल की स्मरण–शक्ति बहुत तेज थी। अपने जीवनकाल से सम्बन्धित और क्रान्तिकारी जीवन की घटनाओं, विदेश–यात्रा आदि का इतनी सूक्ष्मता से वर्णन किया है कि कहीं भी कोई प्रसंग छूट नहीं सका। यहाँ तक कि प्रत्येक स्थान, व्यक्ति का नाम, समय और दिन आदि सब ठीक–ठीक लिखा है। यह देखकर यशपाल की स्मरणशक्ति की दाद दिये बिना नहीं रहा जा सकता। साथ ही साथ हर स्थान पर समाज की दोषपूर्ण व्यवस्था पर व्यंग्य के छींटे इस खूबी से कसे हैं कि देखते ही बनता है। पण्डित और महन्त स्वामी कहलाने वालों के ऊपर आपने कितना बड़ा व्यंग्य किया है, ''किसना नौकर के रूप में जब मैं कुएँ से पानी भरने गया तो स्वामी जी (जो कि मंदिर में रामायण बाँचा करते थे) के कहने पर उनको पानी देने गया, देखा तो वह छिनाल–पचीसी पढ़ रहे थे। स्वामी जी के

पूछने पर कि रामायण पढ़ रहे हैं क्या? उत्तर में बोले, नहीं ऐसे ही एक शास्त्र की किताब है।''

समय का पाबन्द रहना भी एक बहुत बड़ी चारित्रिक विशेषता है। यशपाल अपना हर काम समय और नियम के साथ करते थे। एक बार यशपाल दार्जिलिंग गए हुए थे। वहाँ पर एक साहित्यिक गोष्ठी का आयोजन एक लाइब्रेरी में संध्या पाँच बजे निश्चित किया गया। चार साढ़े चार बजे आयोजक यशपाल को सुविधा की दृष्टि से ठहरने के स्थान पर लेने पहुँचे और वहाँ प्रतीक्षा करते रहे। वे घूमते हुए ठीक पाँच बजे पहुँच गये और जाकर पत्र–पत्रिकाएँ पढ़ने लगे। जब सब सदस्य इकट्ठे हो गये और साढ़े पाँच बजने पर वह लोग ऊब गये और सभा विसर्जित करने का प्रस्ताव रखा तो यशपाल उठे और कहने लगे मैं तो ठीक पाँच बजे से बैठा हूँ। जब समय और स्थान बता दिया तो बुलाने जाने की तो कोई आवश्यकता थी नहीं।

इनका व्यवहार तार्किक अधिक था। व्यर्थ की बातों में समय गँवाना यशपाल को गवारा नहीं था। वैसे भी बातचीत सूक्ष्म और कम समय में समाप्त कर देते थे। यशपाल का हृदय विशाल था– यहाँ तक कि अपने विरोधियों (जोकि के और की कृतियों के विरोधी थे), उनकी कृतियों या उनकी अच्छी बातों की प्रशंसा करना नहीं भूलते। इसके अतिरिक्त साहित्यिक क्षेत्र में भी अनेक पत्र–पत्रिकाओं तथा आलोचकों की कटु आलोचनाओं का भोजन भी इन्हें बनना पड़ता था। यहाँ तक कि कई बार तो इन्हें हाथ तोड़ देने की धमकी भी मिली। लेकिन इनके व्यवहार में कहीं भी किंचित रोष या असंतोष नहीं मिलता। वे व्यक्तिगत आक्षेप और आरोप लगाने वाले व्यक्तियों को बड़ी सतर्कता और धैर्य से उत्तर देते थे। इनकी सहानुभूति, मैत्री या विरोध जिनसे भी रहा हो, पर कभी भी किसी लेखन में किसी आन्दोलन को न जोड़ना इनकी एक और विशेषता थी।

यशपाल ने विदेशों में भी काफी ख्याति अर्जित की थी। विश्व शान्ति सम्मेलन के सदस्य होने के नाते सबसे पहली बार 1952 में विएना, जिनेवा, ज़्यूरिख मास्को लेनिनग्राद आदि की यात्राएँ की। दूसरी बार भी इसी कारण 1955 में मास्को ज्योर्जिया, लन्दन गये और तीसरी बार सन् 1956 में चेकोस्लोवाकिया, जर्मनी रूमानिया तथा चौथी बार लेखक सम्मेलन में शामिल होने के लिए सन् 1958 में ताशकन्द, तुर्किस्तान, मास्को और लेनिनग्राद आदि स्थानों की यात्राएँ

की। सन् 1964 में स्वास्थ्य सुधार के लिए वे मास्को और कीमिया गये। 1969 में भारत सरकार की ओर से 26 जनवरी के गणतंत्र दिवस के अवसर पर इनको 'पद्मविभूषण' की उपाधि से विभूषित किया गया। दिसम्बर 76 में साहित्य अकादमी पुरस्कार से सम्मानित हुए।

इनका व्यक्तित्व प्रभावशाली था और विचार भी बहुत ही सरल और सीधे तरीके से पाठक या जनता तक पहुँचाने की क्षमता इनमें थी।

ब्रिटिश सरकार राजनैतिक तथा क्रान्तिकारी बन्दियों के साथ पाशविक और घृणात्मक व्यवहार करती थी। पर यशपाल जब बन्दी हुए तो इनके साथ व्यवहार बहुत ही सहिष्णु और मधुर रखा। जेल में ही 1936 में प्रकाशवती के साथ इनका विवाह हुआ। लिखने–पढ़ने की भी पूरी सुविधाएँ इनको दी गयी थीं। और भी अन्य सब सुविधाएँ, जो कि एक राजनैतिक कैदी को मिलनी चाहिए, इन्हें मिलीं। यशपाल जैसे कैदी को, जिसने सान्डर्स कांड में भाग लिया, जिस वायसराय की ट्रेन को बम से उड़ाने की कोशिश की, दिल्ली सहारनपुर में बम बनाने का अभियोग भी इन पर था, उन्हीं यशपाल के साथ ब्रिटिश सरकार के इतने सौम्य व्यवहार का कारण उनका महान व्यक्तित्व ही था।

इनकी आयु का विचार ध्यान में न रखा जाए तो इनके समकालीन साहित्यिकों में उनका रचनाकाल सबसे कम है। इतने कम समय में ही उन्होंने कहानी उपन्यास, राजनैतिक निबन्ध, नाटक, संस्मरण आदि पर 43 से भी अधिक पुस्तकें लिखीं हैं। हर कृति एक सर्वोच्च कृति के रूप में हमारे सम्मुख आयी है।

अधिकांश लेखकों, कहानीकारों या कवियों के लिए मूड, भावावेश या प्रेरणा की एक बहुत बड़ी समस्या रहती है। वे मूड बनने पर ही लिखते हैं और अगर लिखते–लिखते बीच में ज़रा सी बाधा आ जाती है तो उनके लिए लिखना असहाय हो जाता है। पर यशपाल की एक बहुत बड़ी विशेषता यह भी है कि उनके मूड बनने और बिगड़ने का कोई प्रश्न नहीं उठता। अगर प्रकट करने योग्य विचार हें तो मूड बनने में कोई दिक्कत नही होती थी। वे लिखते समय दूसरे कार्य भी करते थे। अगर बीच में कोई मिलने आ जाए तो उससे बातचीत करके फिर लिखने लग जाते थे। इससे इनके विचारों की शृंखला नहीं टूटती। इसके अतिरिक्त लिखते समय किसी विशेष परिस्थिति वातावरण और स्थान की आवश्यकता अनुभव नहीं करते थे। घर का शान्तिमय वातावरण हो या

प्रकृति का मनोहारी स्थान या जेल की चारदीवारी– उनका लिखने का क्रम जारी रहता था। परिश्रमी भी इतने अधिक थे कि बरसात की उमस भरी रातों में भी जब टेबिल लैम्प पर पतंगे मंडराते थे, तब भी रात को दो–तीन बजे तक लिखने का क्रम जारी रहता था। कभी दिन में तीन चार कहानी लिख लीं तो कभी हतों कुछ नहीं लिखा गया। प्रकाशवती पाल के शब्दों में, ''कई बार ऐसा तो हुआ है कि विचार अथवा कथानक की कल्पना मस्तिष्क में उबलती रहती है, ऐसी अवस्था में आप साथ चलते चलते मौन हो जाते हैं। कोई बात कहने पर हाँ–हूँ में उत्तर दे देते हैं। उनके कदम तेज हो जाते हैं और साथ चलने वाले से कुछ आगे बढ़ जाते हैं। ऐसी स्थिति में भोजन के समय भी नमक मिर्च की न्यूनधिकता की ओर उनका ध्यान नहीं जाता। स्पष्ट मालूम हो जाता है कि वह अपनी बात में खोए या उलझे हुए हैं।'' ये सब इनके कुशल साहित्य तथा स्वयंभू होने के प्रमाण हैं।

किसी के सामने यशपाल ने झुकना तो सीखा ही नहीं। कठोर से कठोर यातनाएं और यंत्रणाओं के बाद भी अपनी आस्था को उन्होंने बनाये रखा था और निराशा को तो पास भी नहीं फटकने दिया था। सदैव वही उत्साह और आशा की विलक्षण चमक उनके चेहरे पर कायम रहती थी। जीवनक्रम बहुत ही नियमित चलता था। अस्वस्थता से तो इनका दामनचोली का साथ रहा था। फिर भी, साहित्य साधना में कोई बाधा नहीं पड़ी और यही कारण है कि दृष्टि क्षीण होने पर भी कर्तव्यरत होकर साहित्य सृजन में लीन रहे। स्वयं पढ़ने या लिखने के बजाय दूसरों से बोल कर लिखवाते और सुनते थे। उन्होंने जीवन में स्वतंत्र लेखन को अपनाया था और एक निर्धन परिवार में जन्म लेकर पहाड़ी कुरीतियों में फंस कर, ब्रिटिश सरकार से मोर्चा लेकर, अत्याचार को सहकर, जेल की कैद में रहकर यशपाल अपने लोकोत्तर जीवट के कारण कहाँ से कहाँ पहुँच गये थे। यह उनके विलक्षण व्यक्तित्व से ही जाना जा सकता है। यशपाल बहुमुखी व्यक्तित्व के धनी थे लेकिन उनके व्यक्तित्व के दो पक्ष–एक क्रान्तिकारी और दूसरा साहित्यिक–विशेष उल्लेखनीय हैं। उनके साहित्यिक व्यक्तित्व को उनके क्रांतिकारी व्यक्तित्व से विलग करना असम्भव है। स्वयं यशपाल भी इन दोनों की एकरूपता में अपने सम्पूर्ण व्यक्तित्व और कृतित्व की सार्थकता मानते थे, ''मैं साहित्य को साधना के रूप में मानता हूँ। मेरा ध्येय साहित्य द्वारा क्रान्ति की प्रवृत्ति और भूमिका तैयार करना ही रहता है।''

1.3.4 क्रान्तिकारी के रूप में

यशपाल साहित्यिक बाद में थे, क्रान्तिकारी पहले। साहित्यकार के रूप में इनकी सफलता का श्रेय इनके क्रान्तिकारी जीवन को जाता है। यही कारण है कि इनकी लेखनी में पारदर्शिता, वास्तविकता, विविधता देखने में आती है। यह सब इसी जीवन की देन थी। वे बचपन से ही कुशाग्र बुद्धि और स्वतंत्र प्रकृति के बालक थे। जब से होश संभाला, देश को विदेशियों के हवाले पाया और उनका आतंक ऐसा कि बड़े बच्चे–बूढ़े–स्त्रियाँ सब नाम सुनते ही थर–थर काँपते थे। बचपन से ही उन्होंने भूख से क्षुब्ध जनता को निराश–कातरता के स्वर में करुण–क्रन्दन करते देखा था। विशेषकर निम्न मध्य वर्ग तो चक्की के दो पाटों के मध्य घुन की तरह पिस रहा था और उसकी पुकार को सुनने वाला कोई न था। जब वे हाई स्कूल में थे, तभी चारों ओर स्वतंत्रता की पुकार गूँजने लगी थी। गांधीजी ने भी असहयोग शुरू कर दिया था। उनके इस आह्वान पर सरकारी संस्थानों, अस्पताल कर्मचारियों और स्कूलों में भारतीय कर्मचारियों ने कार्य करना बन्द कर दिया था। इसके विपरीत जनता ने निजी स्कूल स्थान–स्थान पर खोल दिये, पंचायते बना दी गयीं और प्राइवेट अस्पतालों में बीमारों के इलाज का प्रबन्ध कर दिया गया था। लाहौर पंजाब केसरी लाला लाजपतराय और भाई परमानन्द के प्रबन्ध में नेशनल कॉलेज की स्थापना की गयी जिसका एक मात्र उद्देश्य देश की आजादी के युद्ध में भाग लेने वाले योद्धाओं को उनके अनुकूल वातावरण तैयार करना था। यशपाल ने इसी कॉलेज से बी.ए. किया था। यहीं से उनके क्रान्तिकारी जीवन की नींव पड़ी। इस कॉलेज में विद्यार्थियों की संख्या दिनोंदिन बढ़ती गयी तथा हर प्रान्त व हर जाति के विद्यार्थी शिक्षा प्राप्त करने लगे थे। यहाँ के लोग किताबी शिक्षा तो नाममात्र की ही करते थे पर देश को विदेशी शिकंजों से शीघ्र से शीघ्र छुड़ाने की शिक्षा अधिक ग्रहण करते और विद्यार्थी जीवन में छुटपुट कारनामे वे करते रहते थे। यहीं पर भगतसिंह, सुखदेव, भगवतीचरण बोहरा जैसे शहीदों ने भी शिक्षा पायी थी। यहाँ के प्रिसिंपल आचार्य जुगलकिशोर और प्रो.जयचन्द्र विद्यालंकार आदि थे, जो अपने विद्यार्थियों में अंग्रेजी विरोधी भावनाओं में बढ़ावा देते थे। यशपाल यद्यपि सक्रिय रूप से क्रान्ति में भाग लेना चाह रहे थे पर पारिवारिक आर्थिक स्थिति के असन्तोषजनक होने के कारण उन्हें पहले बी.ए. करना आवश्यक लग रहा था। अतः कठोर परिश्रम करके उन्होंने पहले अध्ययन का कार्य पूरा किया।

एक दिन कॉलेज में ही भगतसिंह के साथ रावी नदी पर नौका विहार करने गये। उसी दिन दोनों ने ही राष्ट्र के हित के लिए जीवन अर्पित करने की प्रतिज्ञा कर ली थी। यह प्रतिज्ञा बहुत ही भावुकता से की गयी थी। उन्होंने जीवनपर्यन्त इस प्रतिज्ञा को निभाया भी। पढ़ाई समाप्त करने के पश्चात् तो वह सब 'नौजवान भारत सभा' और 'सशस्त्र क्रान्ति' के गुप्त संगठन के सक्रिय सदस्य बन गये। सन् 1925–1926 के पूरे दो वर्ष बम–पिस्तौल और बन्दूक आदि चलाने की प्रेक्टिस करते रहे।

जनता के सामने अपने विचारों और कार्यक्रमों को रखने के लिए अंग्रेजी के महीन अक्षरों में फुलस्केप कागज़ के चार पृष्ठों में इन्होंने एक घोषणा पत्र प्रकाशित कराया। इसके पश्चात् भगतसिंह को बोस्टर्न जेल से छुड़ाने के लिए कई बार प्रयत्न किया गया लेकिन असफलता ही हाथ लगी। इधर इनके सबसे बड़े साथ भगवती भाई की, जिनसे आपसी बहुत ही आत्मीयता थी, एक बम का परीक्षण करते समय घायल होने से मृत्यु हो गई। भगवती भाई की मृत्यु से इनको गहरा आघात लगा था। कुछ समय पश्चात् दिल्ली में फिर दुबारा एक बड़ी बम फैक्टरी का निर्माण किया। यशपाल, विमल, वात्स्यायन, प्रकाशवती आदि के मिलकर बम बनाने में लगे रहने के कारण कोई खिचड़ी बनाने योग्य भी न रहता और पित्रिक एसिड से हाथ इतने रच जाते थे कि जिस चीज़ को भी हाथ लगाते, वह कड़वी हो जाती। अतः होटल में खाना खा लेते या कभी तांगे में जाकर घूम आते। इन सब बातों पर दल के साथियों ने इनको शूट करने का निश्चय किया। उनके अनुसार यशपाल में कायरता और विलासिता आ गयी थी तथा खतरे से भी बचना चाहते थे और किसी भी समय दल के साथ विश्वासघात कर सकते थे। उसी समय वीरभद्र नामक एक साथी ने उक्त रहस्य बतला कर इन्हें सचेत कर दिया। इसके बाद पुनः यशपाल ने एक छोटा–सा संगठन बनाकर पार्टी के सन्मुख अपने ऊपर लगाये गये आरोपों का खण्डन करके महत्वपूर्ण स्थान प्राप्त कर लिया था। तब तक कुछ कार्यकर्ता तो गिरफ्तार हो गये थे और कुछ मतभेद के कारण तितर–बितर हो गये। इधर आज़ाद और यशपाल को गिरफ्तार करने के लिए पुलिस बहुत ही सरगर्मी से प्रयत्न कर रही थी। अतः सुरक्षा और पार्टी को शक्ति देने के विचार से यशपाल ने रूस जाने का निश्चय किया। सहायता के लिए श्री नेहरू से मिले जिन्होंने 1500 रुपये तो नगद दे दिये और बाद में कुछ रुपये देने के लिए कहा। पर

दूसरे दिन ही पुलिस से मुठभेड़ हो जाने के कारण आज़ाद शहीद हो गये, और उन्हें भी रूस जाने का विचार स्थगित करना पड़ा। 23 मार्च 1931 को लाहौर जेल में भगतसिंह, सुखदेव, राजगुरू को फाँसी पर लटका दिया गया। इस तरह यशपाल की मनःस्थिति बहुत ही खराब हो गयी ओर वे कुछ भी निर्णय करने जैसी हालत में न रहे। उधर दल के कुछ बिखरे हुए साथी अपनी स्वार्थ सिद्धि के लिए ऐश–आराम कर यशपाल पर आरोप लगा ही रहे थे। आखरी बैठक गढ़मुक्तेश्वर (कानपुर) में गंगा स्नान के मेले के समय निश्चित हुई जिसमें कई सदस्यों ने भाग लिया। इसमें सर्वसम्मति से यशपाल को पार्टी का कमाण्डर–इन–चीफ चुना गया। पार्टी के कार्यक्षेत्र को विस्तृत रूप देने के लिए 23 जनवरी को वे कुछ सदस्यों सहित इलाहाबाद पहुँचे। स्टेशन पर ही कृष्णशंकर इन्हें लेने आ गये थे और इन्हें सावित्री आयरिश के यहाँ ठहरा दिया था। लेकिन दूसरे दिन सुबह पाँच बजे ही पुलिस ने उस घर को घेर लिया। कुछ देर तक गोलियाँ चलने के बाद जब गोलियाँ समाप्त हो गयीं और भागने या छिपने का कोई रास्ता न रहा, यशपाल ने पुलिस के समक्ष आत्मसमर्पण कर दिया। पुलिस ने उन्हें वहाँ के केंनिग रोड के थाने में पहुँचाकर हवालात में बन्द कर दिया। तत्पश्चात् मुकदमा चला। मुकदमा चलने से पूर्व डॉ.बनर्जी डिप्टी सुपरिटैंडैंट ने बातचीत के दौरान उन्हें ब्रिटिश सरकार से माफी माँगने की सलाह दी तथा तरह–तरह के प्रलोभन भी मन को विचलित करने के लिए दिये। पर वे अपने विचारों से तिल भर भी न हटे और दृढ़ रहे। प्रारम्भ में जेल में उन्हें काफी असुविधा और परेशानी रही, लेकिन जब यशपाल ने जेल अत्याचारों के विरोध में भूख हड़ताल प्रारम्भ कर दी तो फिर इन्हें अन्य राजनैतिक कैदियों की तरह बी–क्लास में रखा गया। अदालत ने उन्हें 14 साल की सज़ा सुनायी।

जेल में उन्हें पढ़ने–लिखने और पत्र–व्यवहार आदि की सुविधा दी गयी थी। अतः जेल में वे साहित्य सृजन में लगे रहे। स्वाध्याय से ही वहाँ फ्रेंच और इटेलियन भाषाएँ भी सीखीं। नैनी जेल में और भी पहचान के राजनीतिक कैदी थे। सन् 1937 के जुलाई महीने में गवर्नरों और वाइसराय से कम से कम हस्तक्षेप किये जाने का आश्वासन पाकर ग्यारह प्रान्तों में कांग्रेसी मंत्रिमण्डलों ने सरकार की बागडोर सम्भाल ली थी। कांग्रेस ने चुनाव में वोट माँगने के लिए जो घोषणापत्र निकाला था, उसमें बिना किसी भेद के सभी राजनैतिक बंदियों

को रिहाई की भी प्रतिक्षा थी। अतः बहुत से राजनैतिक बन्दी रिहा हो गये। यशपाल की रिहाई में गवर्नर अड़चन डाल रहे थे। उनके अनुसार यशपाल पंजाबी थे और रिहा होने के पश्चात् पंजाब अवश्य जाते। वहाँ उस समय ब्रिटिश सरकार का शासन था। फिर रफी अहमद किदवई ने उनके मामले पर विशेष ध्यान देकर उस समस्या का समाधान उनसे यह लिखवाकर किया कि रिहा होने के बाद वे पंजाब नहीं जाएंगे क्योंकि इलाज के लिए प्रकाशवती पाल उनको स्विटजरलैंड ले जाना चाहती थीं। इस प्रकार 2 मार्च, 1938 को वे जेल से मुक्त हुए। जेल में लगभग वे छः साल रहे। चूँकि वे बीमार थे, अतः जेल से छूटने के पश्चात् भुवाली सैनीटोरियम में रहे। फिर स्वस्थ होने पर लखनऊ को ही उन्होंने अपना कार्यक्षेत्र बनाया और स्थायी तौर पर यहीं बस गये।

1.3.5 साहित्यिक तथा बहुमुखी प्रतिभा

जेल से छूटने के पश्चात् लखनऊ में एक साप्ताहिक पत्र में 75 रुपये मासिक की उप–सम्पादक की नौकरी कर ली। यह इनके आत्मसम्मान और विचारों के अनुकूल न होने के कारण निभ न सकी। माता प्रेमदेवी के पास से 300 रुपये की पूंजी लेकर 1938 अक्टूबर मास के विप्लव नाम की मासिक पत्रिका का प्रकाशन प्रारम्भ कर दिया। क्रान्तिकारी विचारकों ने इसका भव्य स्वागत किया। पाठक संख्या भी निरन्तर बढ़ती ही गयी। इससे उत्साहित होकर यशपाल ने उर्दू का संस्करण बागी के नाम से निकालना प्रारम्भ कर दिया। जनता से इसको भी पूरा समर्थन और प्रशंसा मिली। इन पत्रों में सरकारी नीति तथा अन्याय की कड़ी आलोचना होती थी जिसे ब्रिटिश सरकार सहन न कर सकी। क्रुद्ध होकर ब्रिटिश सरकार ने इन पत्रों पर भारी जमानत माँगी। इतनी जमानत न दे सकने के कारण 1942 में इन पत्रों का प्रकाशन बन्द करना पड़ा। बाद में विप्लवी ट्रेक्ट नाम से एक और भी मासिक पत्र निकाला। उस समय आर्थिक रूप से समर्थ न होने के कारण यशपाल को लेख लिखने के साथ–साथ लेख मँगाना, प्रूफ देखना और पत्र के पार्सल स्टेशन पर पहुँचाने का कार्य भी स्वयं ही करना पड़ता था। प्रकाशवती जी का कार्य घूम–घूम कर ग्राहक बनाना तथा अगला अंक निकालने की आर्थिक समस्या को सुलझाया था। इस प्रकार, कठोर परिश्रम और प्रयास से विप्लव के अंक निकलते। इन अंकों में अधिकांश पृष्ठ यशपाल स्वयं अपना नाम बदलकर लिखते थे। विप्लव में 80 पृष्ठ होते थे और उनमें 50 या 60 पृष्ठ यशपाल स्वयं ही लिखते थे। इसमें 'चक्कर क्लब',

'मार्क्सवाद की पाठशाला' और 'सिंहावलोकन' धारावाहिक लेख के रूप में चलते थे। इस तरह की उत्तेजित सामग्री से विप्लव भरा रहता था। पर यह कठिनाई से तीन–चार महीने निकल सका कि इसे बन्द करना पड़ा। विप्लव बन्द करने से इनको बहुत ही नुकसान उठाना पड़ा था क्योंकि एजेंटों के यहाँ से भी काफी रुपया निकलता था। इस तरह विकट आर्थिक संकट ने इन्हें आ घेरा। प्रकाशवती जी ने डेन्टिस्ट्री सीखी और प्रेक्टिस प्रारम्भ कर दी। पर वह सामान भी आर्थिक विपन्नता के कारण बेच देना पड़ा और इससे भी पूरा न पड़ने पर इस महान कलाकार को अपनी पत्नी के साथ लैम्पों के शेड और चमड़े की गद्दियां बनाकर बेचने का काम करना पड़ा। इन कष्टों में भी वे हताश नहीं हुए और साहस के साथ हर विकट परिस्थिति से जूझने को तैयार हो गये थे।

विप्लव के प्रकाशन के समय सम्पादन के साथ–साथ वे कहानी निबन्ध और लेख आदि भी लिखते रहे थे। इस तरह, यह चार या पाँच साल का समय उनके जीवन का साहित्यिक तथा पत्रकारिता का मिला–जुला रूप कहा जा सकता है। इनका सबसे पहला कहानी–संग्रह 'पिंजरे की उड़ान' नाम से प्रकाशित हुआ जिसका सर्वत्र स्वागत हुआ था। एक साल में ही पूरा संस्करण बिक जाना इनकी सफलता का प्रमाण है। यशपाल एक उदारमना तथा उदार दृष्टि वाले सर्जक थे और इनका पूरा साहित्य अनुभव की आधारशिला पर अंकित है। जो कुछ इन्होंने देखा, भोगा, उसे यथार्थ रूप में चित्रित करना इनकी विशेषता रही है। परम्पराओं से चली आ रही रुढ़ियों को तोड़कर इन्होंने साहित्य को एक नयी दिशा दी थी। कथनी और करनी के अंतर को मिटाकर एवं अपने जीवन में कथनी और करनी के सामंजस्य का निर्वाह यशपाल की एक अप्रतिम विशेषता है। अपनी पुत्री किरण के विवाह में ब्राह्मण भोज और सामाजिक रीति–रिवाजों का परिहार तथा उसका उसके निर्वाचित पति से आधुनिक पाश्चात्य रीति से विवाह इनके उदात्त दृष्टिकोण का परिचायक तथा कथनी व करनी में सामंजस्य का द्योतक है। इस तरह वे केवल प्रगतिवादी लेखक ही नहीं विचारक भी थे।

साहित्य की कोई भी विधा इनसे अछूती नहीं रही। एक के पश्चात् एक अलग कृतियाँ इन्होंने साहित्यिक जगत को दीं। क्या कहानी, क्या उपन्यास, क्या निबन्ध, क्या लेख और संस्मरण इनकी सभी कृतियाँ अनुपम हैं। इनकी रचनाओं

के अनुवाद प्रायः सभी प्रादेशिक भाषाओं में हुए हैं। विदेशी भाषाओं तथा अंग्रेजी, फ्रेंच, रूसी और चेक भाषाओं में इनकी कृतियों के अनुवाद हो चुके हैं। इनकी सम्पूर्ण रचनाएँ सप्रयोजन हैं। 'कला कला के लिए' अथवा 'स्वान्तः सुखाय' लिखने वाली बात में उन्हें विश्वास नहीं था। किसी भी कहानीकार या उपन्यासकार की सफलता इस तथ्य में है, कि उसका पाठक उसकी कृति से तादातम्य स्थापित कर ले और उसे वह काल्पनिक न लग कर वास्तविक लगे। यशपाल को इसमें सिद्धि प्राप्त थी। वे रचना–निर्माण के समय पात्रों से इतना तादात्मय स्थापित कर लेते थे कि पात्रों के अनुसार ही भाषा बोलने लगते थे जिससे सत्य की पकड़ कहीं ढीली न हो। 'दिव्या', 'ज्ञानवान' और 'दास धर्म' जैसी रचनाओं में यदि पौराणिक काल की होने के कारण संस्कृत के शब्दों की बहुलता है तो 'मनुष्य के रूप' में पहाड़ी ड्राइवरों और सड़क की भाषा की बहुलता है। इसी प्रकार 'दूसरी नाक' और 'पीर के मजार' में उर्दू के शब्दों की अधिकता है।

यशपाल ने केवल समाज के उपयोगितावादी पक्ष को ही बल नहीं दिया वरन सोद्देश्य साहित्य के सृजन पर भी अधिक बल दिया है। इस प्रकार, इनकी दृष्टि लोकहित की ओर उन्मुख रही है। एक जनवादी कलाकार के रूप में समाज की आर्थिक, नैतिक और सामाजिक विकृतियों का चित्रण करते हुए इन्होंने मानव के सर्वांगीण विकास को सुझाया है।

एक बार यशपाल ने स्वयं ही किसी गोष्ठी में अपने लेखन के विषय में बोलते हुए बतलाया था कि, ''लेखक पुराने से पुराने कथानकों और घटनाओं को वर्तमान परिस्थितियों के अनुकूल ढालकर उन्हें एक नया रूप दे सकता है।''

इसी तरह प्रदीप पन्त के पूछने पर कि ''वर्षों लिखने के अनुभव के बाद भी आज भी यह मानते हैं कि रचनाकार की लेखनी का लक्ष्य समाज होना चाहिए था, उसे किसी वर्ग विशेष के लिए लिखना चाहिए क्योंकि विचारों की धारा वर्ग विशेष तक आती है।'' यशपाल ने अपने उत्तर की पुष्टि इस प्रकार की थी कि ''जब किसी वैज्ञानिक के आविष्कार की उपयोगिता आप सारे समाज के लिए देखते हैं, तब लेखक की कलम की उपयोगिता को आप वर्ग विशेष तक ही क्यों सीमित कर देना चाहते हैं। याद रखिए लेखक नागरिक भी है और नागरिक के नाते उसके कतिपय कर्तव्य भी है। पेशे से लेखक होने के नाते उसका एक

कर्तव्य यह है कि वह अन्य नागरिकों के लिए लिखे अर्थात् समाज और जनता के लिए लिखे।''

इस तरह, कृतिकार का समाज से कोई अलग अस्तित्व और संसार नहीं होता। गुरूकुल कांगड़ी के आचार्य प्रियव्रत वेदवाचस्पति ने यशपाल अभिनन्दन ग्रंथ में अपने संदेश में कहा है, ''श्री यशपाल जी हिन्दी भाषा के प्रतिष्ठा प्राप्त कहानी लेखक और उपन्यासकार हैं। हिन्दी में प्रगतिवादी साहित्यधारा को उन्नत करने में आपने अच्छा प्रयत्न किया है। आप विद्रोही साहित्यकार हैं। जो परम्पराएँ रुढ़ियाँ हमारे समाज को पंगु और निर्बल बनाती है उनके विरोध में अधिक बोलने में अपनी पूरी शक्ति लगाकर शोषितों, पीड़ितों और दलितों के उद्धार को आपने अपना जीवन कार्य बनाया हुआ है। अपनी जोरदार और प्रभावशाली लेखनी द्वारा अपने साहित्य क्षेत्र में अच्छी उथल–पुथल मचा दी है।''

यशपाल ने लगभग तीन साल तक फरारी का जीवन व्यतीत किया था। उस समय भी इस साहित्यकार के हाथ में पिस्तौल के साथ कलम रही। जब भी समय मिलता, वे कुछ न कुछ लिखते ही रहते थे। हिन्दुस्तानी समाजवादी प्रजातन्त्र सेना का घोषण पत्र 'फिलासफी ऑफ दी बम' भगवतीचरण और यशपाल ने ही तैयार किया था। इसके अतिरिक्त, उन्होंने एक क्रान्तिकारी नाटक का अनुवाद भी किया जो किन्हीं कारणों से प्रकाशित नहीं हो सका, और एक साढ़े चार सौ पृष्ठों की पुस्तक 'गांधी और लेनिन' भी उन्होंने लिखी जिसे अंग्रेज सरकार ने जब्त कर लिया था। वैसे तो जेल की रिहाई के बाद से ही (सन् 1938 के बाद से ही) सुचारू रूप से साहित्यिक गतिविधियाँ प्रारम्भ हुई। अनेक कष्ट, परेशानियाँ, आर्थिक असन्तोष, शारीरिक कष्ट तथा अनेक व्यवधानों का सामना करते हुए भी इनकी साहित्य साधना एक पवित्र सरिता के प्रवाह–सी स्वच्छन्द गति में निर्बाध रूप से प्रवाहित होती रही है। वैसे इन्होंने अपना साहित्यिक जीवन कहानियों से प्रारम्भ किया था पर उपन्यास के क्षेत्र में इनका शीर्ष स्थान रहा है। महादेवी वर्मा का यह कथन अक्षरशः सत्य है कि ''जब यशपाल की पीढ़ी के साहित्यकार सरस्वती साधना में लगे हुए थे तब यशपाल किसी बन्द कमरे में बैठे बम बना रहे थे और जब कई वर्ष बाद यशपाल सरस्वती के मन्दिर पहुँचे तो सरस्वती का ध्यान सर्वाधिक यशपाल पर हो गया।'' यशपाल साहित्य और क्रान्ति को अलग–अलग नहीं मानते बल्कि एक–दूसरे को पूरक मानते हैं। यशपाल के स्वयं के शब्दों में, ''मैं साहित्य को

साधन के रूप में मानता हूँ। मेरा ध्येय साहित्य द्वारा क्रान्ति की प्रवृत्ति और भूमिका तैयार करना ही रहता है।''

यशपाल के कुशल साहित्यकार होने का प्रमाण तो यही है कि उनकी पुस्तक को पाठ्यक्रम में न रखने पर भी चार–चार पाँच–पाँच संस्करण बिक चुके हैं। इस सफलता का रहस्य उनकी कल्पना की प्रखरता और शैली के चुटीलेपन की है। सभी लोग उनकी कला के प्रशंसक थे। उनके उपन्यास 'दिव्या' के विषय में राष्ट्रकवि मैथिलीशरण गुप्त ने लिखा था, ''लेखक ने वे जादू की छड़ी घुमायी है जिससे रसिक पाठक कवि के सम्मोहन के वशीभूत हो जाता है।'' और उनकी कहानियों के विषय में गुप्तजी ने लिखा था, ''विधाता ने लेखक को मुक्तहस्त होकर प्रतिभा और शक्ति दी है। हिन्दी कथा साहित्य अभी तक लेता ही रहा है राम कृष्ण से। वह अब देने योग्य भी हो गई है। यह शक्ति हिन्दी को ऐसी ही रचनाओं से मिल रही है। ''यशपाल की कहानी'' कबाव का टुकड़ा' को प्रसिद्ध उपन्यासकार कुपरिन के सम्पूर्ण उपन्यास 'यामा दि पिट' से भी अधिक मार्मिक और सफल बताया जाता है। भगवतशरण उपाध्याय ने अपनी आलोचना में यशपाल के उपन्यास 'देशद्रोही' के वर्णनों को तालस्ताय के उपन्यास 'वार एण्ड पीस' से अधिक सारगर्भित समझा है। प्रसिद्ध कवि बच्चन ने 'पिंजरे की उड़ान' की पहली कहानी पढ़कर ही कहा था, ''इसकी एक ही कहानी को पढ़ने के बाद मुझे इससे अधिक मार्मिक कहानी की न इच्छा है और ना ही आशा है।''

यही कारण है कि इनकी उच्च कोटि के साहित्यकारों में गणना की जाती है और इन्हें विभिन्न प्रदेशों से कई पुरस्कार, अभिनन्दन ग्रन्थ व पत्र प्राप्त हुए हैं। इनकी पृष्ठिपूर्ति के सम्मानार्थ विभिन्न शहरों में गोष्ठियों का आयोजन किया गया था। भाषा विभाग, पंजाब ने इन्हें अभिनन्दन ग्रन्थ भेंट किया था। मध्यप्रदेश सरकार द्वारा 'देव पुरस्कार' तथा उत्तर प्रदेश सरकार तथा पंजाब सरकार द्वारा भी अन्य कई पुरस्कार मिले थे। भारत में ही नहीं बल्कि अपने विशिष्ट गुणों के कारण विदेशों में भी इनको पर्याप्त सम्मान मिला है। 1964 में प्रौस्ट्रेटग्लैंड के ऑपरेशन के लिए मास्को से निमंत्रण मिलना विदेशों में इनकी प्रशंसा का ही द्योतक है।

यशपाल की अन्तर्राष्ट्रीय ख्याति का मुख्य कारण था– उनकी रचनाओं का

विदेशी भाषाओं में अनुवाद। इनकी कहानियों के रूसी, अंग्रेज़ी, फ्रेंच और चेक भाषाओं में अनुवाद प्रकाशित हो चुके हैं।

उपन्यासकार, कहानीकार, निबन्धकार तथा अनुवादक के अतिरिक्त यशपाल का एक रूप और भी रहा है जिससे उन्हें विशेष ख्याति प्राप्त हुई है और वह रूप है, अभिनेता का। विद्यार्थी जीवन में तो इन्होंने मंच पर अभिनय किया ही था, 30 अप्रैल, सन् 1941 को अपने ही नाटक 'नशे नशे की बात– में एक प्रमुख पात्र की भूमिका निभाकर यह भी सिद्ध कर दिया कि वे एक सफल अभिनेता भी हैं। देवकीनन्दन पाण्डेय ने अपने व्यक्तिगत संस्मरण में लिखा है, ''छिट्टू काका के रूप में श्री रघुवीर सहाय और कामता की बहू के रूप में कुमारी देवकी पाण्डेय तो सफलता की आशा देते थे किन्तु शराबी 'कामता' के रूप में कोई जम न पाया। अन्त में मित्रों के अनुरोध से यशपाल ने यह कार्य अपने सर ले लिया, एक ही दो रिहर्सलों के बाद हम सबने फिर चैन की साँस ली क्योंकि पैदायशी अभिनेता की खोज पूरी हो गई थी। यशपाल ने अत्यन्त उत्साह से अपने चेहरे की नकाब हटा कर इसे नये रूप का प्रदर्शन कर दिया। कई साल के लम्बे काल में नाटक की प्यासी लखनऊ की जनता ने शायद पहली बार इस प्रकार का सफल अभिनय देखा होगा।''

यशपाल ने नाटक भी लिखे हैं। आल इंडिया रेडिया के डायरेक्टर–जनरल जगदीशचन्द्र माथुर ने कुछ वर्ष पहले हिन्दी नाटकों के सम्बन्ध में रेडियों पर अपने विचार प्रकट करते हुए इन नाटकों को हिन्दी साहित्य में स्थायी देन बताया था। इनके तीन नाटकों 'नशे–नशे की बात', 'रूप की परख' और 'गुडबाई दर्दे दिल' को कई बार अभिनीत किया जा चुका है।

इस तरह यशपाल बहुमुखी प्रतिभा सम्पन्न व्यक्ति थे। इनकी बहुमुखी प्रतिभा के सम्बन्ध में रामप्रताप त्रिपाठी कहते हैं, ''यशपाल जी का गौरवपूर्ण जीवन और बहुमुखी कृतित्व की तुलना पंजाब की पाँच नदियों से की जा सकती है। सप्तसिन्धु प्रदेश में जन्म लेकर यशपाल जी ने अपने स्वभाव, चरित्र और कार्यों में अपने पूर्वज सप्तसिन्धुवासियों–आर्यों का उच्च आदर्श अपनाया है। गत स्वाधीनता संग्राम के वे एक अजेय ज्ञानी हैं। अपने जीवन के प्रथम चरण से ही उन्हें शस्त्र और शास्त्र दोनों के साथ प्रेम रहा है और अपनी प्रतिभा एवं उदात्त चरित्र को उन्होंने इन दोनों के माध्यम से बहुत उच्च बना लिया है। आज के स्वाधीन

भारत में उनकी प्रतिभा का प्रसाद हमें साहित्य के माध्यम से प्राप्त हो रहा है और यह कहने में संकोच नहीं है कि उनके कार्यों की परम्परा सदैव से ही निर्माणकारी एवं ठोस रही। कागजी योजनाओं से दूर रहकर उन्होंने कर्म से ही प्रेम किया है। विप्लव का संचालन–सम्पादन करते हुए उन्होंने अपनी पत्रकार प्रतिभा का ज्वलन्त रूप प्रदर्शित किया तो कहानी, संस्मरण और उपन्यास लिखकर उन्होंने प्रगतिशील साहित्य को एक नयी दिशा, नया मोड़ और नयी चेतना प्रदान की।''

राहुल साँकृत्यायन ने यशपाल के विषय में अपने विचार इस प्रकार प्रकट किये ''काँगड़ा के पहाड़ों में पैदा हुआ शिशु पुश्तों की कूप मण्डूक्ता को छोड़ कर विश्व प्रसिद्ध लेखक हो जाएगा यह बचपन में बहुत ही कम लोगों ने आशा की होगी। यशपाल ने किसी का पल्ला नहीं पकड़ा, किसी की अँगुली पकड़कर आगे बढ़ना नहीं चाहा, न परिचय और विज्ञापन ढूँढने की कोशिश की। अपनी लेखनी और क्षमता पर उन्हें पूरा विश्वास था और उसी संबल के साथ वह हिन्दी साहित्य में एक कहानीकार के रूप में आये।''

निष्कर्ष रूप में कहा जा सकता है कि यशपाल ने गुरूकुल के आर्य वातावरण में रहकर अध्यवसाय और त्याग, माता के कठोर और संयमित जीवन से श्रम और सहनशीलता, देश की तत्कालीन स्थिति से स्वातंत्र्य प्रेम एवं मध्यम वर्ग की विषम परिस्थितियों से साम्यवाद की अनुभूतियों को प्राप्त किया और इसलिए इन सबकी समष्टि उनके बहुमुखी चरित्र में झलकती है या कहिए चरित्र को ही बहुमुखी बनाती है।

1.4 यशपाल–साहित्य

यशपाल का जीवन क्रान्तिकारी का जीवन था। उनका साहित्य उन भावों और विचारों का अभिव्यक्त रूप है जिन्हें लेकर वे कर्म–क्षेत्र में उतरे थे। उनके कर्म तथा साहित्य दोनों का उद्‌देश्य था व्यष्टि तथा समष्टि में नवमानवता के भावों और विचारों को भरना। वे व्यष्टि सिद्धान्तवादी नहीं, कर्मठ साहित्यकार एवं विवेकशील विचारक थे। उनका साहित्य अतिरंजना से उन्मुक्त एक यथार्थ रूप लिए हुए है जिसमें एक बौद्धिक सत्य निहित रहता है। यशपाल का साहित्यिक व्यक्तित्व वेदना और कष्ट की अग्नि में तपकर निखरा है।

यशपाल अपने क्रान्तिकारी जीवन में पंजाब तथा उसके आसपास के जिस जीवन तथा समाज से परिचित हुए उनके सजीव चित्र उनकी रचनाओं में मिलते हैं। वे दूर एकान्त में बैठे कल्पना के महल ही निर्मित नहीं करते वरन् प्रेमचन्द की भाँति यथार्थ की ठोस भूमि पर स्वयं आते थे और पाठक को भी उसका बोध कराते थे। उनके लिखे उपन्यासों, कहानियों तथा एकांकी नाटकों में एक भावधारा का प्रवाह था। यह भावधारा निबंधों में तो स्वाभाविक रूप से विचारमय होकर गम्भीर हो गई है परन्तु कहानियों और उपन्यासों में उर्मिल होकर सीधे हृदय को स्पर्श करती है। इतने कम समय में इतने अधिक ग्रन्थों की रचना की दृष्टि से उन्हें जहाँ भारतेन्दु हरिश्चन्द्र के समकक्ष कहा जा सकता है वहाँ उनकी लोकप्रियता की दृष्टि से उन्हें मुंशी प्रेमचन्द का उत्तराधिकारी माना जा सकता है। उनकी अनेक रचनाओं को भारत की अनेक प्रादेशिक भाषाओं के अतिरिक्त पश्चिम की प्रमुख भाषाओं– अंग्रेजी, फ्रेंच, रूसी भाषाओं में अनूदित होने का गौरव प्राप्त हुआ है।

1.4.1 उपन्यासकार के रूप में

प्रेमचन्द के पश्चात् यशपाल ही दूसरे क्रांतिकारी उपन्यासकार हैं। उनके द्वारा लिखित उपन्यासों में 'दादा कामरेड', 'देशद्रोही', 'दिव्या', 'पार्टी कामरेड', 'मनुष्य के रूप', 'अमिता', 'झूठा सच', 'बारह घंटे क्यों फँसे?' आदि प्रमुख हैं। सन् 1960 में प्रकाशित 'झूठा–सच' ने पाठक वर्ग में एक हलचल उत्पन्न कर दी। यह उपन्यास उनकी सशक्त प्रौढ़ लेखन–कला का परिचायक है। इस उपन्यास के दोनों भागों 'वतन और देश' तथा 'देश का भविष्य' में देश के राजनीतिक वातावरण को ऐतिहासिक यथार्थ के रूप में चित्रित किया है। सन् 1968 तक 'बारह घंटे' और 'क्यों फँसे?' उपन्यास सामने आते हैं। कला की दृष्टि से बहुत महत्वपूर्ण न होते हुए भी ये उपन्यास उनकी अनवरत साधना का परिचय देते हैं। 'दिव्या' और अमिता ऐतिहासिक पृष्ठभूमि पर आधारित हैं, शेष समाज और समाज से सम्बन्ध रखते हैं। 'पक्का कदम', 'जनानी ड्योढी' तथा 'चलनी में अमृत' क्रमशः बर्दी केर्बाबायेव के डिसिसिव स्टेप, पर्ल्सबक के पेवेलियन ऑफ वोमेन तथा कमला मार्कण्डेय द्वारा रचित 'नेक्टर इन अ सीव' के अनुवाद हैं।

विकास क्रम की दृष्टि से 'दादा कामरेड' यशपाल का सर्वप्रथम प्रयास है। यह

उपन्यास मई सन् 1941 में प्रकाशित हुआ। यह एकदम साम्यवादी विचारधारा से परिपूर्ण मार्क्सवाद से प्रभावित है। इसमें राजनीतिक सिद्धांतों तथा रोमांस का सम्मिश्रण है। कथा में यशपाल ने हिसांत्मक विप्लव तथा सशक्त डकैतियों का स्पष्ट विरोध किया है। वे जन आन्दोलन के पूर्ण समर्थक थे। दादा और हरीश आदि की राजनीतिक और क्रांतिकारी कहानी के साथ–साथ सामाजिक क्रांतिकारिणी शैली की कहानी भी चलती है। वे स्त्री और पुरुष के पारस्परिक सम्बन्ध में स्वतंत्रता के समर्थक थे।

सन् 1943 में इनका दूसरा उपन्यास 'देशद्रोही' प्रकाशित हुआ। वे कहीं भी गांधीवाद के समर्थक नहीं थे। यह उनके लेख 'गाँधीवाद की शव–परीक्षा' से स्पष्ट है। इस कृति में भी गांधीवादी कार्यक्रम की अपेक्षा समाजवादी कार्यक्रम को ही अधिक सिद्धहस्त और उपयोगी चित्रित किया गया है। इस कथानक का आधार है एक अभागा जीवन और उसकी दुखदर्द भरी कहानी, जो विधि के हाथ की कठपुतली है, और वह उसे कई नाच नचाता है। वह ऊपर उठने का प्रयत्न करता है, परन्तु अन्त में धूर्त्त, बदमाश देशद्रोही की उपाधियों से विभूषित किया जाता है जो उसके प्राणों का काल बन उसे ग्रस लेती हैं।

अभागे देशद्रोही का अन्त हुआ, परन्तु प्रगतिशील यशपाल की अनवरत साधना ने सन् 1945 में अपनी अमूल्य निधि 'दिव्या' हिन्दी साहित्य को प्रदान की। 'दिव्या' कलाकार की कल्पना से परिपुष्ट ऐतिहासिक कथानक के आधार पर एक ऐसी कला–कृति है जो युग–युग तक एक दिव्य आलोक से पाठक तथा समाज की आँखों को परितृप्त करती रहेगी। इसकी समस्या न मज़दूर वर्ग की आर्थिक समस्या है न किसानों की पीड़ित आत्मा की पुकार। यह तो युग–युग की प्रताड़ित, दलित और त्रस्त नारी की करुण कथा है। सागल नगरी के वयोवृद्ध महापंडित धर्मस्थ देवशर्मा की प्रपौत्री और जनपद–कल्याणी राजनर्तकी मल्लिका की शिष्या दिव्या सागल के सर्वश्रेष्ठ खड्गधारी दासपुत्र 'पृथुसेन' को आत्मसमर्पण करती है। परिणाम में उसे दुख और यातना सहनी पड़ती है। इस रचना में यशपाल की कला के अपेक्षाकृत स्वस्थ और संयत स्वरूप के दर्शन होते हैं। प्रस्तुत कृति बौद्धकालीन कथानक के आधार पर सर्वदेशीय और सर्वकालीन सामाजिक मान्यताओं तथा उनके कुप्रभावों का दिग्दर्शन कराती है।

'पार्टी कामरेड' (1947) 'दादा कामरेड' और देशद्रोही आदि राजनीतिक उपन्यासों

की अपेक्षा अधिक प्रौढ़ है तथा इस कोटि की अंतिम रचना। किस प्रकार एक कम्युनिस्ट लड़की गीता के सम्पर्क में आकर पदुमलाल भावरिया एक लखपति लफंगा धीरे–धीरे अपनी दशा का सुधार करते हुए अंत में अपने को बलिदान कर देता है। उपन्यास की कथा रोचक और प्रभावपूर्ण है।

'मनुष्य के रूप' (1949) राजनीतिक उग्रता, बहस और विवाद से दूर हटकर लेखक ने यहाँ यह दिखाने का प्रयत्न किया है कि एक ही मनुष्य परिस्थितियों से प्रताड़ित हो कितने ही रूप धारण करता है। एक ही समाज में एक ही घर में मनुष्य के अनेकों रूप दृष्टिगत होते हैं। बालमुकुन्द मिश्र के शब्दों में 'यशपाल के पहले उपन्यासों में मूल आधार कल्पना का वैचित्र्य रहा है और विकास धरातल के इस छोर पर आकर उपन्यासकार मनुष्य के रूप में यह आधार प्रकट यथार्थ की अंतरंग परीक्षा बन गया है। 'अमिता' से पूर्व यशपाल ने केर्बाबायेव के डिसिसिव स्टेप का अनुवाद 'पक्का कदम' (1949) और पर्ल्सबक के पेवेलियन ऑफ वुमेन का अनुवाद 'जनानी ड्योढ़ी' (1955) शीर्षक से कर इस क्षेत्र में भी अपनी कला का परिचय दिया। सन् 1957 में कमला मार्कण्डेय के 'नेक्टर इन अ सीव' का सफल एवं उच्चकोटि का अनुवाद 'चलनी में अमृत' नाम से प्रकाशित हुआ।

यशपाल की अनवरत साधना ने सन् 1956 में दिव्या की शैली में परन्तु उससे सरल भाषा में अमिता की कहानी लिखी है। एक नन्हीं सी बालिका के हृदय पर मां के विचारों की अमिट छाप ने अशोक जैसे क्रूर वीर को भी नतमस्तक कर दिया। यही इस उपन्यास में दिखाया गया है।

'मेरी तेरी उसकी बात' 1974 में छपा। इस उपन्यास की पृष्ठभूमि 1942 का 'भारत छोड़ो' आन्दोलन का विस्फोट है। परन्तु इस उपन्यास की कथा दो पीढ़ियों से क्रान्ति की वेदना को अदम्य बनाते वैयक्तिक, पारिवारिक, सामाजिक और साम्प्रदायिक विषमताओं का स्पष्टीकरण भी है। यशपाल की दृष्टि में क्रांति का अर्थ केवल शासकों के वर्ण–पोशाक का बदल जाना ही नहीं अपितु जीवन में जीर्ण रूढ़ियों की सड़ांध से उत्पन्न व्याधियों और सभी प्रकार की असहय बातों का विरोध भी है।

यशपाल के उपन्यासों की सबसे बड़ी विशेषता है वे उनकी साम्यवादी और विचारों को सशक्त रूप से प्रकट करने में समर्थ है। दिव्या की शैली जहाँ

संस्कृत–गर्भित है तथा ऐतिहासिक वातावरण प्रस्तुत करने में समर्थ है, वही भाषा 'मनुष्य के रूप' में सड़कों पर घूमने वाले ड्राइवरों की बोली बन गई है। इनके पात्र सजीव और यथार्थ की भूमि पर विवरण करने वाले है।

संक्षेप में तत्कालीन समस्याओं का यथार्थ एवं मार्मिक चित्रण, साम्यवादी विचारधारा, व्यक्तिगत दृष्टिकोण की ओर विशेष झुकाव और मौलिक शैली यशपाल के उपन्यासों की विशेषताएँ हैं।

1.4.2 कहानीकार यशपाल

आज के संघर्षपूण जीवन के लिए कहानी मानव के मस्तिष्क के लिए उसे औषधि का काम करती है जो थोड़े से थोड़े समय में बड़े ही रोचक ढंग से लेखक के दृष्टिकोण से उसे परिचित कराती हुई उसकी आँखें खोलती हैं और चारों ओर देखने और सोचने का अवसर प्रदान करती है। सन् 1940 से लेकर सन् 1955 तक के अपनी साहित्य–साधना के पन्द्रह वर्षों में यशपाल ने अपने बारह कहानी–संग्रहों में लगभग डेढ़ सौ कहानियां हिन्दी साहित्य को प्रदान कीं। यों तो पांचवी–छठी कक्षा में ही 'अंगूठी' शीर्षक कहानी लिखने का प्रथम प्रयास किया था परन्तु नवम्बर 1939 में यशपाल की कहानियों का पहला संग्रह 'पिंजरे की उड़ान' प्रकाशित हुआ। प्रसिद्ध कवि बच्चन ने पिंजरे की पहली कहानी पढ़कर ही कहा था, ''इस एक कहानी को पढ़ने के बाद मुझे इससे मार्मिक कहानी पढ़ने की न इच्छा है और न ही आशा।'' 'पिंजरे की उड़ान' के पश्चात् तो उपन्यासों के साथ–साथ कहानियों की बाढ़–सी आ गई। 'वो दुनिया' (1941), 'ज्ञानदान' (1943), 'अभिशप्त' (1944) 'तरक का तूफान' (1944), 'भस्मावृत चिंगारी' (1946), 'फूलों का कुर्ता' (1949), 'धर्मयुद्ध' (1950), 'उत्तराधिकारी तथा चित्र का शीर्षक' (1951), 'तुमने क्यों कहा था', 'मैं सुन्दर हूँ', 'उत्तमी की माँ', (1954 और 1955), 'ओ. भैरवी' (1958), 'सच बोलने की भूल' (1962), 'खंजर और आदमी' (1963) कहानी–संग्रह प्रकाशित हुए।

प्रसिद्ध आलोचक, विद्वान डॉ. नगेन्द्र उनकी कहानियों की सफलता के विषय में लिखते हैं, ''यशपाल हिन्दी के उन गल्प–लेखकों में हैं, जिनकी पारदर्शी दृष्टि समाज के नाना स्तरों, जीवन की विविध स्थितियों और मानव–मन की गुप्त मनोवृत्तियों का उद्घाटन करने की अद्भुत क्षमता रखती है। समाज के वैषम्य पर प्रहार करते समय प्रखर व्यंग्य उनकी अभिव्यक्ति का मेरूदंड बनता है। धर्म

और नीति के रूढ़िग्रस्त जर्जर खंडहरों को धराशायी बनाकर साम्यवादी अर्थ व्यवस्था के आधार पर नव–निर्माण का आग्रह उनकी कला का अंग बन गया है। सामाजिक तथा राजनीतिक समस्याओं के चित्रण में यशपाल प्रायः मध्य का निम्न वर्ग के पात्रों की अवतारणा कर उनके प्रति करूणा, संवेदन आक्रोश या उद्‌बोधन का भाव व्यक्त किया है। वह अपने प्रभाव में कहीं भी निष्फल नहीं है– यही लेखक की सफलता है।''

जीवन की समस्याओं को यशपाल ने अपनी कहानियों में इस रोचक और कलात्मक ढंग से अपनाया है कि वे प्रेरणादायक बन सकने में समर्थ हैं। भौतिकवाद और प्रगतिवाद दृष्टिकोण होने के कारण कहानियों के अनेक पात्र आर्थिक अभावों की चक्की में पिसते दृष्टिगत होते हैं। 'सन्यासी', 'नई दुनिया' और 'आजादी का बच्चा' आदि कहानियाँ इसके सशक्त उदाहरण हैं।

प्रगतिवादियों के अनुसार पूँजीवादी समाज में रहने वाले लोगों को दो भोगों में बाँटा जा सकता है– (1) परिश्रम करने वाले किसान मजदूर तथा (2) अपनी पूंजी के बल पर उनके परिश्रम का लाभ उठाने वाले पूंजीपति। 'साह और चोर' का नौजवान इसी ओर संकेत करते हुए कहता है– ''धन तो वास्तव में मेहनत करने वाले किसान और मजदूर ही पैदा करते हैं। शेष सब व्यवसाय इस धन को पैदा करने वाले के हाथों से अधिक से अधिक मात्रा में हथिया सकने की चतुरता ही है। एक तरीका साहू का है दूसरा चोर का। आज के समाज का छिछलापन और खोखलापन तथा गंदगी 'सोमा का साहस' में अत्यन्त खूबी के साथ चित्रित किया गया है।

यशपाल की कहानी कला की सर्वप्रथम विशेषता विषय–वस्तु का विस्तार है। प्रेमचन्द की भांति उन्हें जीवन के अनेकानेक पहलुओं की सूक्ष्म और साधारण पकड़ तथा पहचान है। एक ओर मिल मजदूर का सजीव चित्र है तो दूसरी ओर पहाड़ी जीवन की सुन्दर झांकियाँ तथा प्रकृति की रम्यता। उनके पात्रों में विविधता है। प्रेम का सार 'पहाड़ी की स्मृति' या 'सांई' और 'फूलों का कुर्ता' आदि में पहाड़ी जीवन की सुन्दर झांकियाँ देखने को मिलती हैं।

मजदूर–वर्ग की दशा का वर्णन यशपाल की कई कहानियों में मिलता है। शहर में रहने के कारण उनका जितना सम्पर्क मज़दूर मिलों से था उतना किसानों से नहीं, इसलिए आपकी कहानियों में हड़ताल आदि का वर्णन अत्यन्त सजीव है।

प्लॉट गढ़ने में यशपाल को असाधारण सफलता मिली है। कहानियों में कहीं तो घटनाएँ उद्देश्य के अनुकूल हुई हैं और कहीं वे ऐसा नहीं हो पाई, ऐसे स्थलों पर बिना कोई गहरा प्रभाव छोड़े ही कहानी समाप्त हो जाती है।

यशपाल की कहानियों में आरम्भ से अन्त तक पकड़ने की विशेष शक्ति है। कुछ कहानियों का अन्त पाठकों की कल्पना पर छोड़ दिया है। कलात्मक दृष्टि से ये कहानियाँ महत्वपूर्ण हैं। उदाहरण के लिए 'पराया सुख' का अन्तिम वाक्य सिगरेट कम्पनी वाला वह बाबू कितना सज्जन था परन्तु उसने उसे सदा इन्कार ही किया और ..... का यह वाक्य 'स्त्री किसी न किसी की बहन होती है' कहानी के प्राण हैं।

व्यंग्य के साथ–साथ साफ–सुथरे और परिष्कृत हास्य का पुट देने में भी यशपाल सिद्धहस्त हैं। इनमें ज्ञानियों का उपदेश नहीं, यह कहानियाँ परम्परागत अंध–रुढ़ियों पर प्रहार करती हैं। शब्द का जाल बुनकर ही इसमें पाठकों को फंसाना लेखक का उद्देश्य नहीं। उन्होंने काव्यात्मक और इतिवृत्तात्मक दोनों प्रकार की शैलियों का प्रयोग किया है। शैली सरल, सहज, हृदयग्राही, चुटीली, व्यंग्यात्मक और मन को छूने वाली है।

यही कारण है कि स्व.मैथिलीशरण गुप्त ने यशपाल की कहानी 'हलाल का टुकड़ा' को प्रसिद्ध उपन्यासकार कुपरिन के सम्पूर्ण उपन्यास 'यामा दी पिट' से कहीं अधिक सफल और सारगर्भित माना है। यथार्थवाद और बौद्धिकता की बलिवेदी पर इन्होंने कला की हत्या नहीं होने दी।

1.4.3 नाटककार यशपाल

एकांकी संग्रह 'नशे नशे की बात' में संगृहीत तीन एकांकी नाटक 'नशे नशे की बात', 'रूप की परख' और 'गुडबाई दर्दे दिल' के आधार पर कहा जा सकता है कि उपन्यासों तथा कहानियों की भाँति नाटकों में भी वे रूढ़िवाद के प्रति विद्रोह की भावना रखते थे। तीनों रचनाओं को इन्होंने एकांकी अथवा दृश्य–कहानी नाम दिया। इनमें जीवन के विभिन्न पहलुओं पर गम्भीरतापूर्वक विचार किया गया है।

'नशे–नशे की बात' इनका सर्वप्रथम एकांकी है जिसमें लेखक ने आध्यात्मिक नशेबाजों तथा उनके पुजारियों पर तीखे व्यंग्य किए हैं। आध्यात्मिक नशा ओर

शराब का नशा दोनों में ही स्वार्थ प्रधान है इसलिए दोनों ही बुरे हैं।

इस नाटक में कथानक का विकास उद्देश्य के अनुकूल हुआ है तथा समय, स्थल और प्रभाव की एकता की दृष्टि से यह नाटक अपूर्व है। अपने मत को सुदृढ़ करने के लिए नाटक थोड़ा विस्तृत अवश्य हो गया है। राधेमोहन के माध्यम से लेखक ने बार–बार अपने ही दृष्टिकोण का प्रतिपादन किया है। वातावरण की स्वाभाविकता की दृष्टि से यह नाटक महत्वपूर्ण है।

'रूप की परख' साधारण जीवन की पारिवारिक घटना को लेकर लिखा गया है। एक ओर नीच वर पक्ष है जो अपने लड़के की अधिक से अधिक कीमत लेना चाहते हैं। उनके लिए लड़की की योग्यता और रूप से आगे धन ही सब कुछ है। इसमें उस माता–पिता पर भी व्यंग्य है जो लड़की की इच्छा के विरुद्ध भी जवान कुंवारी लड़की का विवाह करना चाहते हैं। समाज की इस कुप्रवृत्ति का अंत कर देना ही इस नाटक का उद्देश्य है।

चरित्र–चित्रण अत्यंत सजीव है। वैषम्य द्वारा ही अधिकतर पात्र उभरे हैं। संवादों में सरलता और सरसता है और अवसर के अनुकूल कठोरता और कोमलता दिखाई देती है। नाटक के अंत तक कौतूहल बना रहता है जो किसी भी नाटक के लिए आवश्यक तत्व है।

'गुड़बाई दर्दे दिल' में भी प्रगतिशील विचारधारा स्पष्ट है। सामाजिक व्यवहार में दिल के दर्द न होने पर केवल मौन आकर्षण में ही दिल के दर्द का दावा करना उपहासप्रद है, प्रेम की विडम्बना है, संकीर्णता है। यह दृष्टिकोण बड़े रोचक ढंग से इस नाटक में चित्रित हुआ है। यशपाल के नारी पात्र केवल भोगविलास की सामग्री नहीं, नारी के गुण उसके रूप से अधिक मूल्य रखते हैं।

भाषा की दृष्टि से यह नाटक अपूर्व हैं। पात्रों के अनुकूल भाषा को मोड़ा गया है। भाषा भावों को व्यक्त करने में सफल सिद्ध हुई है। इन नाटकों में व्यंग्य है। भाषा सुस्पष्ट है तथा पात्र और वातावरण सजीव है। इन नाटकों में यशपाल का क्रान्तिकारी रूप झलकता हुआ दिखाई देता है।

1.4.4 यशपाल के निबन्ध

यशपाल निबन्ध के क्षेत्र में भी पीछे नहीं रहे। 'चक्कर क्लब', 'न्याय का संघर्ष', 'बात में बात', 'रामराज्य की कथा', 'देखा सोचा समझा', 'गांधीवाद की शवपरीक्षा',

'लोहे की दीवार के दोनों ओर' आदि यशपाल के प्रसिद्ध निबन्ध–संग्रह हैं। इन निबन्धों में यशपाल का व्यक्तित्व स्पष्ट झलकता है। उनका मार्क्सवादी रूप भी इन निबन्धों में छिप नहीं पाया है। प्रत्यक्ष व्यंग्य जो कहानियों में अधिक सम्भव न था, निबन्धों में मिलता है।

काव्य की काव्यात्मकता, नाटक की नाटकीयता और कहानी की रोचकता लिए हुए ये अपना अलग अस्तित्व रखते हैं। विवादग्रस्त लेख भी मनोरंजन और विनोद द्वारा सरस हो गए हैं। लेखक ने कल्पना–शक्ति द्वारा भावों और वातावरण को सजीव रूप दिया है।

राजनीतिक निबन्धों में प्रायः विवादों की कथात्मक शैली अपनाई है। इनमें मार्क्स, लेनिन, चेखोव, तुर्गनेव की भांति प्रगतिशील तर्क शैली के अतिरिक्त आरम्भिक जीवन में स्वामी दयानन्द के 'सत्यार्थ प्रकाश' का गम्भीर अध्ययन करने के कारण जीवन में दृष्टान्त और प्रश्नोत्तर शैली का भी उपयोग किया गया है।

मार्मिक और अछूती उपमाओं द्वारा व्यंग्य में और भी सहायता मिली है। रेडियो के समीप खड़ी थी प्याज की गाँठ की तरह, अनेक छिलकों में लिपटकर रहने वाली एक युवती' जैसे आकर्षक भावों से पूर्ण वाक्य स्थन–स्थान पर दृष्टिगत होते हैं।

निबन्धों में यशपाल का बुद्धिवादी रूप अपेक्षाकृत अधिक स्पष्ट है। राम–राज्य की कथा तथा गांधीवाद की शव–परीक्षा कम्युनिस्ट धारा के प्रतीक हैं। इनमें गांधी के सिद्धान्तों से अपना मतभेद प्रकट किया है–

यशपाल के निबन्धों को दो भागों में विभाजित किया जा सकता है–

1) शुद्ध सैद्धान्तिक निबन्ध– जिनमें अपनी प्रतिद्वन्द्वी विचारधाराओं पर खुला प्रहार है, बौद्धिक आक्रमण है।

2) वे निबन्ध जिनमें अपनी विचारधारा का प्रतिपादन संवादात्मक संस्मरणात्मक शैली में किया है। ये निबन्ध अत्यंत रोचक और सरल हैं। 'देखा सोचा समझा', 'लोहे की दीवार के दोनों ओर' में यशपाल के संस्मरण हैं।

साहित्य को जीवन की आलोचना कहा जाता है। मैथ्यू आर्नल्ड आदि प्रसिद्ध

आलोचकों के अनुसार साहित्य वही है जिसमें भली प्रकार से जीवन प्रतिबिम्बित हो। यशपाल का सम्पूर्ण साहित्य अतीत और वर्तमान की आलोचना है जिसका उद्‌देश्य है आदर्श शान्तिमय नूतन भविष्य। क्रान्ति से परिपूर्ण परिपक्व विचारधारा और सजीव भाषा–शैली के कारण उनका साहित्य प्रेमचन्द आदि प्रमुख लेखकों से किसी प्रकार से कम नहीं है।

1.5 निष्कर्ष

निसन्देह यशपाल का व्यक्तित्व बहुआयामी रहा। उन्होंने न केवल साहित्य की सेवा की अपितु अनेक राजनैतिक एवं साहसिक कार्यकलापों द्वारा अपने सशक्त क्रान्तिकारी व्यक्तित्व का भी परिचय दिया। इस संदर्भ में यह कथन द्रष्टव्य है, ''यशपाल के क्रान्तिकारी जीवन की उग्रता और निर्भीकता उनके साहित्यिक कृतित्व में धरोहर बनकर आई जान पड़ती है। इनके साहित्यिक व्यक्तित्व को इनके क्रान्तिकारी व्यक्तित्व से जुदा करके नहीं देखा जा सकता।'' यशपाल की मृत्यु 1976 में हुई। अन्तिम दिन तक ये लेखन कार्य में संलग्न रहे लेकिन साहित्यकार के रूप में वे हमेशा हमारे बीच जीवित रहेंगे।

1.6 कठिन शब्द

1. संत्रस्त
2. ज्वलन्त
3. लब्धप्रतिष्ठ
4. समन्वय
5. अग्रणी
6. अध्ययनार्थ
7. मनोमालिन्य
8. अन्तर्विरोध
9. क्रान्तिकर्मी
10. सूक्ष्मता

1.7 अभ्यासार्थ प्रश्न

प्र1) यशपाल के व्यक्तित्व एवं कृतित्व पर प्रकाश डालें।

———————————————————————————————

———————————————————————————————

———————————————————————————————

———————————————————————————————

———————————————————————————————

प्र2) क्रान्तिकारी रूप में यशपाल के व्यक्तित्व की चर्चा कीजिए।

———————————————————————————————

———————————————————————————————

———————————————————————————————

———————————————————————————————

———————————————————————————————

प्र3) कथाकार के रूप में यशपाल के साहित्यिक अवदान पर लेख लिखिए।

———————————————————————————————

———————————————————————————————

———————————————————————————————

———————————————————————————————

———————————————————————————————

प्र4) यशपाल साहित्यिक बहुमुखी प्रतिभा के व्यक्ति रहे हैं, इस कथन से आप कहाँ तक सहमत हैं ? स्पष्ट कीजिए।

———————————————————————————————

\-

\-

\-

\-

1.8 पठनीय पुस्तकें

1. झूठा सच – भाग–1, भाग–2 – यशपाल
2. यशपाल का औपन्यासिक–शिल्प – प्रो0 प्रवीण नायक
3. यशपाल के उनन्यासों का मूल्यांकन – डॉ0 सुदर्शन मल्होत्रा
4. यशपाल का उपन्यास साहित्य – डॉ0 (श्रीमति) सरोज बजाज
5. यशपाल के उनन्यास – डॉ0 प्रमोद पाटिल
6. भारत विभाजन और हिन्दी उपन्यास – डॉ0 अंजु देशवाल
7. झूठा सच – यशपाल (छात्रोपयोगी संस्कार)
8. मेरा तेरा उसकी बात – यशपाल
9. यशपाल के उपन्यास : सामाजिक कथ्य – चमनलाल गुप्ता
10. यशपाल साहित्य में काम चेतना – डॉ0 शकुंतला चहवान
11. आठवें दशक की हिन्दी कहानी में सामाजिक बोध – डॉ0 नामदेव नान्देडी
12. यशपाल का उपन्यास साहित्य – डॉ0 सरोज बजाज
13. यशपाल – अभिनन्दन ग्रन्थ – श्री महेन्द्र
14. यशपाल का कथा साहित्य – प्रकाशचन्द्र मिश्रा
15. मार्क्सवाद और उपन्यासकार यशपाल – डॉ0 पारस नाथ मिश्रा

****

भारत विभाजन की त्रासदी और झूठा सच

2.0 रूपरेखा

2.1 उद्देश्य

2.2 प्रस्तावना

2.3 'झूठा सच' उपन्यास की कथावस्तु

2.4 भारत पाक विभाजन और झूठा सच

2.5 निष्कर्ष

2.6 अभ्यासार्थ प्रश्न

2.7 पठनीय पुस्तकें

2.1 उद्देश्य

प्रस्तुत अध्याय के अध्ययनोपरांत आप जानेंगे कि यह उपन्यास एक विशाल पृष्ठभूमि पर लिखा गया है। यह उपन्यास यथार्थवादी, राजनीतिक और ऐतिहासिक है। रोचकता, उत्सुकता, आश्चर्य, आकस्मिकता, प्रवाह इत्यादि सफल कथानक के समस्त तत्वों से परिपूर्ण प्रस्तुत विशाल उपन्यास प्रेमचन्द की 'कर्मभूमि' और गोदान की समानता करता है।

2.2 प्रस्तावना

पहले अध्याय में आपने जाना कि यशपाल एक बहुमुखी प्रतिभा के धनी थे। वे रूढ़िवादी परम्परावादी लेखक नहीं अपितु प्रगतिवादी लेखक थे और प्रगतिवादी

लेखक प्राचीन परम्परागत मान्यताओं का तीव्र विरोध कर नवीन नैतिक मूल्यों तथा मान्यताओं की स्थापना करता है। उनका जीवन–दर्शन रुढ़ियों से चली आती हुई खोखली विचारधाराओं से नहीं बना, उसके पीछे विचार और अन्तर्दृष्टि तथा अनुभव जैसे दृढ़आधार हैं जो किसी प्रकार भी त्याज्य नहीं।

'झूठा सच' के प्रथम भाग 'वतन और देश' का आधार 1943 से लेकर 1947 तक के राजनीतिक धरातल पर सामाजिक घटनाएं हैं। मुख्य कथा–प्रसंग 1947 का ही है। यह वह समय था जब देश दो भागों में बांटा गया था। सीमावर्ती प्रदेशों में भी साम्प्रदायिक दंगे हो रहे थे। परिणामस्वरुप वहाँ के सर्वसाधारण का जीवन विषाक्त, त्रस्त और अस्त–व्यस्त हो गया था। काल की दृष्टि से ऐसे उपन्यास की कथावस्तु के लिए इससे अधिक प्रभावपूर्ण और करुण–समय शायद ही और कोई हो सकता। 'झूठा सच' में देश विभाजन की वीभत्स और करुण घटनाओं का सजीव चित्रण हुआ है।

2.3 झूठा सच की कथावस्तु

'झूठा सच' यशपाल जी का प्रसिद्ध उपन्यास है। यह उपन्यास दो भागों 'वतन और देश' तथा 'देश का भविष्य' में पूर्ण हुआ है। प्रथम भाग 'वतन और देश' 1958 में प्रकाशित हुआ था। उस समय अनेक हिन्दी और अंग्रेजी पत्रिकाओं ने उसे सामयिक साहित्य में सर्वोत्तम उपन्यास कहा। दूसरा भाग 'देश का भविष्य' जनवरी 1960 में प्रकाशित हुआ। इस भाग में भी उसी प्रकार सराहना पाई। 1966 के आरम्भ में पंजाब सरकार और उत्तर प्रदेश सरकारों ने 'झूठा सच' को हिन्दी के सर्वोत्तम उपन्यास के रूप में पुरस्कृत किया।

'झूठा सच' राजनीतिक, ऐतिहासिक और सामाजिक तीनों ही दृष्टियों से विशेष महत्व रखता है। 'पूर्वार्द्ध' 'वतन और देश' का आधार सन् 1947 की क्रांति है, जिसके परिणामस्वरुप लाखों हिन्दुओं तथा मुसलमानों को दुःख सहना पड़ा और वे घर–बेघर हो गए। द्वितीय भाग 'देश का भविष्य' देश के विभाजन के पश्चात् पाकिस्तान से आए हिन्दुओं की दशा, उनका रहन–सहन, सम्पूर्ण देश का निर्माण और उन्नति, जनता की आशाओं तथा विचारों की आधार–शिला पर निर्मित स्वस्थ दृष्टिकोण का परिचायक है। 'झूठा सच' के 1250 पृष्ठों में फैली हुई कहानी अत्यन्त संक्षेप में इस प्रकार है–

तारा और शीलो दो भाइयों की पुत्रियां आपस में बहनें हैं। 'शीलो' 'रतन' को हृदय से चाहती है परन्तु किसी दूसरे व्यक्ति से विवाह होने पर भी संतुष्ट है। तारा की रुचि पढ़ाई की ओर अधिक है, वह लाहौर के एक कालेज में लड़कों के साथ पढ़ती है। तारा एम.ए. तक पढ़ना चाहती है। उसके दबे–स्वर में विरोध करते रहने पर भी उसका गठबंधन लाहौर में सोमराज से हो जाता है उसकी सगाई के अवसर पर उसका भाई जयदेव पुरी जेल में था।

घर की आर्थिक स्थिति अच्छी न होने के कारण जयदेव पुरी 'उर्मिला' को पढ़ाना स्वीकार कर लेता है। उर्मिला सुन्दर और चपल है। उसका हृदय पढ़ने में नहीं लगता। वह पुरी की ओर आकर्षित हो जाती है।

उर्मिला की मां एक दिन दरवाज़े के पीछे से अपनी पुत्री को पुरी का चुम्बन करते हुए देख लेती है। इस संबंध से पुरी के हृदय में कोई दुःख नहीं होता। पुरी महत्वाकांक्षी बुद्धिजीवी है। उसके मन में अपने बौद्धिक और कलात्मक जीवनी की संगिनी के रूप में एक विशिष्ट युवती की कल्पना है। वह सोचता है– 'दलदल में फँस जाने से बच गया।'

पुरी की बहन का भावी पति सोमराज परीक्षा–भवन में नकल करते पकड़ा जाता है और इस अपराध में परीक्षा–भवन से निकाल दिया जाता है। यह जानकर पुरी तारा को आश्वासन देता है कि उसका विवाह ऐसे अयोग्य व्यक्ति से नहीं होगा। उसे बहिन का सोमराज से विवाह का विरोध करना संगत जान पड़ता है। तारा एक मुसलमान युवक असद को चाहती है। उसी समय देश के विभाजन से पूर्व हिन्दुओं और मुसलमानों में विरोध उत्कट सीमा तक पहुँच जाता है। इस विरोध का उदाहरण उस समय मिलता है जब दो हिन्दु स्त्रियां तारा की गली में आकर अमरुद बेचने वाले मुसलमान 'गई' को बाहर निकलवा देती है। उन स्त्रियों का तर्क है कि बंगाल में मुसलमानों ने हज़ारों हिन्दुओं का कत्ल कर दिया है, फिर उन्हें जीविका कमाने में सहायता क्यों दी जाय। प्रस्तुत उपन्यास में भोला पांधे की स्त्रियों के विवाद, परस्पर झगड़े और प्रेम इत्यादि सामाजिक स्थिति का चित्रण और वर्णन अत्यन्त सजीव और हृदयग्राही है।

लाहौर के धनी सेठ के पुत्र डॉ. प्राण ने बचपन में पुरी और तारा के पिता मास्टर रामलुभाया से शिक्षा प्राप्त की थी। मास्टर के प्रति विशेष आदर की भावना से वह मास्टरजी के यहां विलायत से लौटने पर भी जाता है। तारा

उसके घर के बच्चों को ट्यूशन पढ़ाती है। डॉ. प्राण के परिवार की स्त्रियां तारा और डॉक्टर को संदिग्ध दृष्टि से देखती है। परन्तु डॉ. प्राण तारा पर किसी प्रकार का लांछन नहीं लगने देना चाहता। एक दिन वह स्नेह और आदर से तारा को अपने कमरे में बुलाता है। असद के विषय में बातचीत करके वह तारा को भविष्य में ट्यूशन करने से मना कर देता है। उसके विचार अत्यन्त स्वस्थ हैं– ''तुम्हारी आयु उन्नीस है, मेरी तीस है यह स्त्रियां यह नहीं सोचती कि उन्नीस साल की लड़की तीस वर्ष के अधेड़ से क्यों ब्याह करेगी? इन स्त्रियों का दोष भी क्या है? वे यह कल्पना भी नहीं कर सकती कि स्त्री के विवाह या उसके उपयोग में उसकी अपनी इच्छा का भी सवाल हो सकता है। ये स्त्रियां ये भी अनुमान नहीं कर सकतीं कि तुम्हें सैक्स (यौन–विचार) के बिना भी लाइक (पसन्द) कर सकता हूँ।''

लाहौर में साम्प्रदायिक उत्तेजना दिन–प्रतिदिन बढ़ती जाती है। नित्य ही परस्पर–विरोधी जुलूस निकलते, संघर्ष के नारे लगाए जाते। पुरी की पार्टी के लोग भी हिन्दु–मुस्लिम एकता के नारे लगाते हुए अंग्रेजों को भारत से निकालने की कल्पना करने लगे। असद तारा को एम.ए. पास करने के लिए प्रोत्साहित करता है। दोनों का विश्वास है कि पुरी उदार विचार वाला है और सांप्रदायिक संकीर्णता का समर्थन नहीं करता।

लाहौर की स्थिति बिगड़ती गयी। 'हिन्दुस्तान–पाकिस्तान' जिन्दाबाद, मुर्दाबाद के नारे लगने लगे। पंजाब के तत्कालीन मुख्य मंत्री और यूनियनिस्ट पार्टी के लीडर सर खिजर ने त्याग–पत्र दे दिया। मुसलमानों द्वारा भोला पाँधे के 'दौलू' मामा की हत्या ने हिन्दू–मुस्लिम विद्रोह की भावना को और भी बढ़ा दिया।

'पैरोकार' में पुरी द्वारा लिखे गए साम्प्रदायिकता–विरोधी लेख से बिगड़कर उसे नौकरी से अलग कर दिया गया। पुरी ने अपने लेख में हिन्दू–मुसलमान दोनों के पक्षपात अंध साम्प्रदायिकता की ओर संकेत किया था। उसने जेल में विशेष परिश्रम से कुछ कहानियां लिखीं। जेल से छूटकर वह उन कहानियों को पत्रों में जहाँ–तहाँ प्रकाशित कराने लगता है। इन कहानियों से उसकी गणना ऊँची श्रेणी के लेखकों में होने लगती है, परंतु इससे उसका निर्वाह नहीं हो सकता। आर्थिक स्थिति से विवश होकर वह उर्दू के एक दैनिक पत्र के सम्पादकीय विभाग में नौकरी कर लेता है। उसे वेतन अधिक नहीं मिलता। आय बढ़ाने के

लिए उसे कुछ फुटकर काम भी करने पड़ते हैं, इसी प्रसंग में 'नया हिन्दू' प्रकाशन के मालिक पं. गिरधारीलाल की बेटी 'कनक' को हिन्दी पढ़ाने के लिए उनके घर जाता है।

पुरी को कनक के यहाँ जाने पर आत्म–सम्मान के विचार से ट्यूशन या तनख्वाह लेना उचित नहीं लगता। वह कनक के योग्यतापूर्ण व्यवहार से बहुत प्रभावित हो जाता है। वह उर्मिला को भूल जाता है। लड़कियों के प्रति उसकी विरक्ति अनुराग में बदल जाती है। पुरी कनक के घर में आदर सम्मान पाता है। वह कनक के प्रति अनुराग और विश्वास से उसे अपनी हीन आर्थिक स्थिति और महत्वाकांक्षाओं से परिचित करा देता है। कनक भी उसके विश्वास और आकर्षण का आदर करती है, उसके प्रति अनुरक्त हो जाती है।

कनक का बहनोई नैयर पुरी को अधिक पसन्द नहीं करता। वह पुरी में हीन भावना अनुभव करता है और समझता है कि पुरी ऐसी भावना के कारण शिष्ट अभिजात–वर्ग से झिझकता है। नैयर पुरी के आने पर उसकी अवहेलना करता है, परिणामस्वरुप पुरी कई दिन तक कनक के घर नहीं जाता। इसी बीच भोला पांधे की गली में मुसलमानों द्वारा आग लगाने का समाचार पढ़ कनक, पुरी के घर जाती है। वहां कनक की भेंट उसकी बहन तारा से होती है।

पुरी की आर्थिक स्थिति से कनक पूर्व परिचित तो थी ही, परन्तु घर की अवस्था देखकर वह अपने पास रखे कुछ रुपये और पिता से भी झूठ बोलकर कुछ रुपये लेकर एक दिन पुरी को देने का प्रयत्न करती है। पुरी रुपये किसी प्रकार भी नहीं लेता।

कनक के पिता पुरी को अनुवाद करने का कार्य देते हैं। पुरी यह कार्य करने के लिए तारा की सहायता लेता है। पंडितजी की पैनी दृष्टि से कनक और पुरी का व्यवहार छिपा नहीं रहता। वे बहुत सहानुभूति से बात करके पुरी को समझा देना चाहते हैं कि पुरी को कनक से बहन का ही संबंध निभाना चाहिए; क्योंकि उनके परिवारों में सामाजिक व आर्थिक विषमता के कारण किसी अन्य संबंध की सम्भावना नहीं हो सकती।

लाहौर की साम्प्रदायिक स्थिति बहुत बिगड़ चुकी थी। उस स्थिति में पुरी की बहन तारा का घर से कॉलेज आना–जाना और कठिन हो गया था। पुरी से अनुनयविनय कर वह एक दिन अपनी सखी सुरेन्द्र से मिलने जाती है। उसे

आशा थी कि सुरेन्द्र के यहाँ असद से भेंट हो जाएगी। पुरी ने भी सोचा तारा को कनक के यहाँ भेजकर वह कनक से मिल सकेगा। परन्तु उस समय कनक अपने घर में मौजूद नहीं थी, वह माडल टाउन में अपनी बड़ी बहन के घर गई हुई थी।

परिस्थिति के संयोग से पुरी कनक से मिलने में सफल न हो सका, परन्तु तारा सुरेन्द्र के साथ कम्युनिस्ट पार्टी के दफ्तर में पहुँच जाती है। तारा असद को अपने घर की पूर्ण स्थिति बताती है कि कुछ ही दिन बाद उसका विवाह सोमराज से हो जाएगा, इससे तो वह आत्महत्या ही कर ले। पुरी भी बेरोजगारी में अपने–आपको प्रभावहीन अनुभव करके उस विवाह का विरोध नहीं कर रहा था। तारा असद के साथ भाग जाना चाहती है। असद उसे समझा–बुझाकर उत्साह तथा हिम्मत से परिस्थितियों का सामना करने के लिए समझाता है।

पुरी कनक को मिल सकने के प्रयत्न में असफल रह जाता है। वह बहन को घर लौटा ले जाने के लिए सुरेन्द्र के घर जाता है। सुरेन्द्र की मां से उसे पता चलता है कि सुरेन्द्र और तारा कम्युनिस्ट पार्टी के दफ्तर में चली गइ थी। पुरी को यह अच्छा नहीं लगता है। वह तारा को खोजता कम्युनिस्ट पार्टी के दफ्तर में पहुँचता है। तारा उसे वहाँ भी नहीं मिलती। जिस समय तारा और असद रैस्टोरेंट के दरवाज़े से निकलते हैं, सामने सड़क पर उनका सामना पुरी से होता है। तारा को असद के साथ देखकर पुरी का क्रोध छिपा नहीं रहता। तारा को स्वप्न में भी अनुमान न था कि पुरी इतनी शीघ्र वापस आ जाएगा। असद स्थिति संभालने के लिए पुरी से इस प्रकार बात करता है... मानो तारा का उससे मिलने चले आना बिल्कुल अनुचित बात नहीं थी। तारा अपनी मानसिक स्थिति में उससे बात करने आ गयी थी। कनक और तारा का व्यवहार देखकर पुरी के हृदय में नारी के प्रति विरक्ति हो जाती है। वह अब तारा के विवाह के विरुद्ध कुछ नहीं कहता, बल्कि तारा का अपमान और अवहेलना करने लगता है। तारा अपमान से क्षुब्ध होकर आत्महत्या का प्रयत्न करती है परन्तु सफल नहीं होती।

कनक के पत्र पुरी तक पहुँचने से पूर्व ही पंडितजी के हाथों में चले जाते हैं, कनक नैयर से स्पष्ट कह देती है कि वह पुरी से विवाह करना चाहती है। नैयर से विवाह के स्वतन्त्रता के विषय में उसका गम्भीर तर्कपूर्ण विवाद होता है। यह

अत्यन्त तर्कपूर्ण, सरस तथा प्रभावपूर्ण विवाद हिन्दी–साहित्य में अनूठा है। नैयर के माध्यम से यशपाल का विवाह–सम्बन्धी स्वस्थ दृष्टिकोण सामने आता है। नैयर पुरी को परीक्षा की कसौटी पर परखना चाहता है। वह कनक को दो महीने के लिए पुरी से मिलने के लिए मना कर देता है। उसकी शर्त है– ''मैं घर से लड़कर तुम्हारा समर्थन करूँ, तो मुझे भी तो विश्वास होना चाहिए कि पद–कामत न सही, धन और सामाजिक स्थिति न सही, परन्तु तुम्हारे चुने आदमी में निष्ठा और व्यक्तित्व तो है।''

इसी बीच जयदेव पुरी आग बुझाने के निमित करयू तोड़ने के अपराध में गिरतार कर लिया जाता है। कनक पूरी के गिरफ्तारी के समाचार से इतनी अधीर और विवश हो जाती है कि नैयर को दिए हुए वचन को भूलकर पुरी से मिलने के लिए कोतवाली में पहुँच जाती है। पुरी को मुक्त करवाने के लिए कनक को नैयर की सहायता लेनी पड़ती है। पुरी आभार प्रकट करने के लिए कनक के यहां जाता है, वहाँ सर्वप्रथम उसकी भेंट नैयर से होती है।

यद्यपि नैयर के हृदय में पुरी के लिए कोई आदर नहीं था, परन्तु वह पुरी से पूर्वापेक्षा सौजन्य और आत्मीयता से बातें करता है। उसके व्यक्तिगत जीवन के सम्बन्ध में अनेक प्रश्न करता है। तारा के विवाह की चर्चा होने पर पुरी चतुराई से झूठ बोल जाता है कि तारा का विवाह स्वयं उसकी इच्छा से हो रहा था। नैयर के चुटीले प्रश्नों से पुरी उत्तेजित होकर कह बैठता है– ''मैंने तो कनक और पण्डितजी के प्रति आदर के कारण उसकी भावना को स्वीकार किया और अपना वचन दिया था। मैंने अपनी परिस्थिति उसके सम्मुख पहले ही स्पष्ट कर दी थी। अब मैं विचित्र परिस्थिति में हूँ।''

नैयर कनक से अन्त में भी यही कहता है कि पुरी किसी भी प्रकार उसके अनुकूल नहीं। कनक नैयर तथा कान्ता के साथ नैनीताल जाती है। वहाँ से कनक पुरी को रेजिस्टर्ड पत्र भेजती है जिसमें पुरी से नैनीताल आने का आग्रह करती है। वह पुरी को यात्रा के लिए रुपये भी भेज देती है। नैनीताल में कनक की भेंट उत्तर प्रदेश कांग्रेस सरकार के सभा–सचिव मिस्टर अवस्थी और मिसेज पंत से होती है। उनके आश्वासन से वह भविष्य के सुनहरे स्वप्न देखने लगती है।

लाहौर में तारा का विवाह सोमराज से हो जी जाता है। भाग्य का खेल समझ

विवश तारा यह विवाह स्वीकार कर लेती है। विवाह के बाद पुरी नौकरी की आशा में कनक के अनुरोध पर नैनीताल चला जाता है। लाहौर की स्थिति और भी अशांत और विकट हो जाती है। नैनीताल में कनक और पुरी स्वतन्त्र रूप से एक–दूसरे से मिलते हैं। नैयर के साथ भी एक–दो बार होटल और क्लब में जाते हैं।

जिस समय कनक और पुरी नैनीताल में थे कि पंजाब पाकिस्तान और हिन्दुस्तान में बंट गया। 14 अगस्त से पूर्व शाहदरा, लाहौर इत्यादि में हिन्दुओं की स्थिति असहन हो गयी। घोषणा हो गयी थी कि 14 अगस्त से जिन्ना साहब पाकिस्तान के गवर्नर–जनरल नियुक्त किए जायेंगे। भारत के गवर्नर–जनरल के पद पर लार्ड–माउण्ट बैटन ही रहेंगे। और बाबू राजेन्द्रप्रसाद की अध्यक्षता में कान्स्टीचुएण्ट असेम्बली भारत के लिए नया विधान तैयार करेगी और शासन–सत्ता संभाल लेगी।

विवाह के पश्चात् तारा पिता के घर से विदा होकर नया जीवन शुरू करने के लिए ससुराल पहुँचती है। ससुराल में, पति से प्रथम परिचय में ही उसके समस्त स्वप्न और विचार चूर–चूर हो जाते हैं। जब मिलन की प्रथम रात्रि में उसका पति उसके घूँघट तथा लज्जा पर व्यंग्य करता है– ''कितने घाटों का पानी पिया है?... बोलती क्यों नहीं?...कितनों के साथ सोयी है, बोल? ...भूखे मास्टर की औलाद, तेरी हिम्मत थी मुझसे शादी के लिए मिज़ाज दिखाये?... बी. ए. पढ़ने का बहुत घमंड हे? तेरी जैसी बीसियों को टाँगों के बीच से निकाल दिया है? देखूंगा तुझे। गली–गली कुत्तों और गधो से न रौंदवा दिया...?''

तारा को पति से मिले अपमान और यातना से भी अधिक दुर्भाग्य उसके भाग्य में बदा था। उसी समय मुहल्ले में बंदूकें छूटने लगती हैं। सोमराज भागकर उधर की ओर जाता है। तारा आत्महत्या के लिए छत पर से पीछे की ओर कूद पड़ती है। मुसलमान पड़ोसी उसके घाव तथा दर्द की अपेक्षा कर उसे बाहर निकाल देते हैं, उन्हें भय था, कि उन पर हिन्दु युवती को भगा ले जाने का इल्ज़ाम लग जाएगा। पड़ोसी मुसलमान तारा को घर से निकाल देते हें। वह नब्बू बदमाश के हाथ पड़ जाती है। नब्बू उसके साथ अमानुषिक व्यवहार करता है। नब्बू के घर में तारा पर जो बीतती है उसे जानकर नब्बू की पत्नी अपने सिर पर सौत लादी जाने के विरोध में मुहल्ले के लोगों को पुकारती है। परिणामस्वरुप तारा

को हाफ़िज जी के यहाँ भेज दिया जाता है।

हाफ़िज जी के यहाँ तारा को स्नेह और प्यार मिलता है। हाफ़िज जी स्नेह व प्यार से तारा को इस्लाम सम्प्रदाय स्वीकार करने को कहते हैं। तारा तार्किक प्रवृति के कारण इस्लाम सम्प्रदाय के विश्वास को स्वीकार नहीं करती। हाफ़िज जी के घर से तारा को ट्रक से हिन्दू शरणार्थी कैम्प में भेज दिया जाता है।

कनक और पुरी को आशा थी कि अवस्थी की सहायता से ये लोग लखनऊ में नौकरी करके सुखी दाम्पत्य–जीवन व्यतीत कर सकेंगे, परन्तु लखनऊ जाकर पुरी दूसरों की स्थिति देखता है और असफल नैनीताल लौट आता है। नैनीताल में 14 अगस्त 1947 की रात को स्वतन्त्रता का आरम्भ मनाया जाता है। रेडियो पर पंडित नेहरु डॉ. राजेन्द्र प्रसाद के हिन्दी में भाषण होते हैं। हिन्दी के भाषणों पर लोगों के विस्मय और उत्साह की चर्चा उच्च–मध्यवर्ग पर अंग्रेजी के प्रभाव की ओर सूक्ष्म, परन्तु वास्तविकता का संकेत है।

तारा को हिन्दू शरणार्थी कैम्प में ले जाने के बहाने एक उजड़े हुए मकान में बंद कर दिया जाता है। उस मकान में पहले से भी कुछ हिन्दु स्त्रियां बंद थीं। उन स्त्रियों के शरीर पर आवश्यक वस्त्र तो क्या पेट भर सकने के लिए सूखी रोटी भी नहीं नसीब थी। भूख ने उन स्त्रियों को पशुवत् बना दिया है। उनकी सांत्वना पाने का एक ही उपाय था– अपने पर हुए अत्याचारों का वर्णन साथियों के सम्मुख करते रहना।

सतवंत, दुर्गा, अमरो, बिशनी, बंती सभी पीड़ित हैं। इन स्त्रियों के चरित्र कुछ ही पृष्ठों में अत्यन्त मुखर हो उठे हैं। तारा भी उनमें से एक बन गई, परन्तु शिक्षित होने के कारण उसके चिंतन और व्यवहार में दूसरी स्त्रियों से बहुत अंतर है। स्त्रियों के दुःखों का वर्णन बहुत अधिक होने पर भी करुणा, घृणा, भय, शोक, ग्लानि आदि का भाव उत्पन्न किए बिना नहीं रहता।

तारा अन्य स्त्रियों के साथ उस काल–कोठरी से निकाली जाती हैं। असद को भारतीय सैनिकों के साथ हिन्दू स्त्रियों को बचाने का काम करते देख तारा को विस्मय होता है। सतवंत, दुर्गा, बंती और तारा हज़ारों हिन्दू शरणार्थियों के काफिले के साथ अपना वतन छोड़ हिन्दुस्तान की ओर चल देती है। उन्हें मार्ग में मुस्लिम शरणार्थियों का काफिला पाकिस्तान की ओर जाता मिलता है।

मुस्लिम काफिले की अवस्था हिन्दू काफिले की उपेक्षा दर्शनीय है। न हिन्दू अपना वतन छोड़कर हिन्दुस्तान जाना चाहते हैं, न मुसलमान अपना वतन छोड़कर पाकिस्तान जाना चाहते हैं। असहाय सर्वसाधारण जनता की इच्छा न होते हुए भी उन्हें असहन दुःख देकर हिन्दुस्तान और पाकिस्तान बन जाते हैं। ड्राइवर की मार्मिक उक्ति द्वारा 'झूठा–सच' के प्रथम भाग का अंत होता है...

''रब्ब ने जिन्हें एक बनाया था, रब्ब के वंदों ने अपने वहम और जुरम से दो कर दिया।''

जयदेव पुरी अपने परिवार की सहायता के लिए नैनीताल के लाहौर जाने के प्रयत्न से जालन्धर से आगे नहीं आ पाता। पुरी रेलगाड़ी में हिन्दु–मुसलमानों के परस्पर वैमनस्य का चित्र देखता है। जालन्धर में पुरी की भेंट उर्मिला के शरणार्थी परिवार से होती है। पूरी उनकी सहायता के लिए उन्हें अपने यहाँ ले जाता है।

पुरी की आर्थिक स्थिति संतोषजनक हो जाती है वह जालन्धर के प्रभावशाली कांग्रेसी नेता सूदजी की सहायता से जालंधर से निकाल दिए गए एक मुसलमान के छापेखाने को चलाने लगता है। विधवा उर्मिला का मौन दुःख पुरी को व्याकुल कर देता है। पुरी उसे पहले की तरह हंसते हुए देखना चाहता है। मन ही मन कनक से उसकी तुलना करता है, और दिन–प्रतिदिन उसकी ओर आकर्षित होता जाता है। उसके आंसू अपने हाथों से पोंछकर, उसकी सलाई को अपने होंठों से दबा दिया– ''क्यों... रोती... हो? क्या मैं नहीं हूँ? मेरे सिर की कसम! हम दोनों हैं तो किसी का क्या डर है?''

लाखों लोगों की भांति पण्डित गिरधारीलाल भी दिल्ली पहुंचते हैं। कनक नैयर के परिवार के साथ नैनीताल में थी। नैयर लाहौर से रुपया न मंगा सकने के कारण आर्थिक कठिनाई में फंस गया था। पंजाब से उसके दूसरे सम्बन्धी भी शरण पाने के लिए उसी के यहां आ टिके थे। स्थान और पैसे की कमी के कारण नैनीताल में नैयर–परिवार का जीवन बहुत क्लेशमय हो गया था। दिल्ली में कनक के पिता ने लाहौर के अपने मकान के कागज देकर बदले में एक मुसलमान का मकान और जायदाद ले ली थी। इस प्रकरण में गांधी जी के भाषण, लोगों के स्थान पाने के लिए संघर्ष, दिल्ली का वर्णन आदि अत्यंत सफलता के साथ किया है। आर्थिक कठिनाई में अनेक हिंदू युवतियों की भांति

कनक भी दैनिक पत्र 'सरदार' के मालिक असीर जी के दफ्तर में नौकरी करना चाहती है, परन्तु असीर जी से मतभेद होने के कारण और दिल्ली के तत्कालीन दूषित वातावरण के कारण शीघ्र ही लखनऊ चली जाती है। तारा और बंती दिल्ली के शरणार्थी कैम्प में पहुँच जाती है। बेचारी बंती असंख्य कठिनाइयों में से भूख–प्यास को सहती अपने परिवार को खोज लेती है। बंती का ससुराल उसे स्वीकार नहीं करता। ससुराल की दहलीज पर सिर पटकती हुई बंती की चीखों से भगवान् का हृदय भले ही पसीज गया हो, परन्तु बंती की सास और उसके पति का दिल नहीं पसीजा। मनुष्य शरीरधारियों का पशु–स्वभाव सामने आ जाता है। बंती सिर पटक–पटककर प्राण दे देती है। मत, विश्वासों और रुढ़ियों के आगे मानव कितना विवश हो जाता है। विभाजन के बाद भी नारी की आस्था का उपहास उड़ाने में मनुष्य की कितनी क्षमता है, इसका सजीव उदाहरण बंती की सुहागिन के रूप में उठती अर्थी है।

बंती को खोकर तारा शरणार्थी कैम्प में दूसरी स्त्रियों के बीच अकेली पड़ जाती है। तारा शिक्षित होने के कारण कैम्प आफ़िस में लिस्टें बनाने में सहायता करती है। शरणार्थियों की सेवा की आड़ लेकर सेवा समितियों में कार्यकताओं के दुश्चरित्रों का वर्णन करने में भी यशपाल पीछे नहीं रहे। तारा यह सब अनुभव बटोरती हुई आगे बढ़ती है। मिसेज़ अग्रवाल, मिस्टर प्रसाद इत्यादि ऐसे ही हाथी के दांत हैं।

अपनी शिक्षा तथा चरित्र के कारण तारा मिसेज अग्रवाल के यहाँ बच्चों की गवर्नेस बन जाती है। अग्रवाल के धनी परिवार के रहन–सहन इत्यादि में दिखावा, बनावट तथा खोखलापन है। वहीं तारा की भेंट मिसेज़ अग्रवाला के सौतेला पुत्र नरोत्तम से होती है। नरोत्तम का चरित्र अग्रवाल के विपरीत है, उसे समाज के खोखलेपन तथा दिखावे से घृणा है। धीरे–धीरे तारा पर घर के पूरे काम का बोझ पड़ जाता है। नरोत्तम की उसके प्रति विशेष सहानुभूति है। नरोत्तम के ये विचार अधिकांश में तारा के साथ की गई बातचीत में ही प्रकट होते हैं। ऐसे विचार–यशपाल के जीवन–दर्शन के परिचायक समझे जा सकते हैं।

उपन्यास के इस प्रकरण में कश्मीर की समस्या पर हिन्दुस्तान–पाकिस्तान के संघर्ष, उस सम्बन्ध में गांधी जी के व्यवहार के प्रति जनता के असंतोष, गांधी

के अनशन और उसके प्रभाव के बहुत सजीव और यथार्थ वर्णन और उनका बहुत बड़ा ऐतिहासिक महत्व है।

पुरी उर्मिला को पाकर कनक को भूल जाता है, परंतु कनक उसे खोजती हुई जालन्धर भी आ पहुँचती है। कनक पुरी और उर्मिला को विचित्र परिस्थिति में देखकर स्तब्ध रह जाती है– पुरी, उर्मिला, तारा सभी अपने–अपने स्थान पर उलझन में पड़ जाते हैं। नाटकीय संदेह का इससे अधिक सुन्दर उदाहरण हिन्दी उपन्यास साहित्य में देखने को नहीं मिलता। पुरी, उर्मिला और कनक दोनों के सामने झूठ बोलकर अपनी स्थिति संभालता है। सूद जी की सहायता से उसका विवाह अत्यंत साधारण ढंग से कनक के साथ हो जाता है। उर्मिला को नर्स का कार्य सीखने के लिए अस्पताल में भेज दिया जाता है।

तारा मिसेज़ अग्रवाल के संदेह और चिड़चिड़ेपन से तंग आकर डॉ. श्यामा और नरोत्तम की सहायता से पुनर्वास विभाग के दतर में नौकरी कर लेती है। वह अग्रवाल के परिवार को छोड़कर नर्स लीला–मर्सी के साथ पड़ोस में रहने लगती है। दतर में उसकी भेंट सीता से होती है। सीता, तारा की पुरानी परिचित लाहौर में भोला पाँधे वाली गली की ही थी। विभाजन के पश्चात् साधारण सीधी लड़कियाँ कम पढ़ी–लिखी होने के कारण तथा वासनाओं का शिकार होने के कारण कितनी शोख और चंचल बन गई थीं– सीता उसका सजीव उदाहरण है। तारा की सहायता से सीता संभल जाती है, तारा का दफ्तर में अपने परिश्रम तथा सरल व्यवहार के कारण आदर है।

शीलो का लड़का वास्तव में रतन का था। शीलो हार मानकर एक दिन यह सत्य अपने पति को कह देती है। तारा शीलो तथा उसके लड़के का जीवन सुधार देती है। रतन और शीलो अपनी गृहस्थी बसा लेते हैं। एकमात्र पुत्र होने के कारण धीरे–धीरे रतन की मां भी शीलो से प्यार करने लगती हैं।

पुरी और कनक का विवाह तो हो जाता है, परन्तु उन दोनों के स्वभाव, शारीरिक प्रकृति और विचारों में भेद के कारण छोटी–छोटी बातों पर घर में क्लेश बढ़ने लगता है। कनक अपने को व्यस्त रखने के लिए पुरी के साप्ताहिक पत्र का कार्य करती है। शीघ्र ही उनके यहाँ कन्या का जन्म होता है, परन्तु कनक वातावरण और परिस्थितियों से संतुष्ट नहीं। उसका अधिकतर समय सहयोगी पत्रकार 'गिल' के साथ ही कटता है। वह गिल के व्यवहार और

विचारों से बहुत प्रभावित होती है।

जयदेव पुरी का सामाचार मिलने पर भी तारा भाई और अपने परिवार के पास नहीं जाती। वह अपने पुराने जीवन को भूलकर अपने नवीन जीवन से संतुष्ट है। डॉ. प्राण के प्रति उसका विशेष आदर था। नरोत्तम को वह भाई की भांति चाहती है।

दिल्ली आने पर कनक से उसकी भेंट होती है। दोनों बहुत सद्भाव से मिलते हैं। तारा से कनक को मालूम हो जाता है कि तारा का विवाह उसकी अनिच्छा से किया गया था और पुरी ने भी उस अन्याय में सहयोग दिया था। कनक तारा के प्रति सहानुभूति के कारण उसे जालन्धर बुलाना चाहती है। नई परिस्थितियों में सोमराज भी जालन्धर में बस गया है। पुरी और सोमराज परस्पर सहायक बन गये हैं। ऐसी आस्था में पुरी तारा को जालन्धर बुलाना उचित नहीं समझता, परन्तु कनक को पुराना इतिहास भी नहीं बता सकता। तारा का प्रश्न दोनों में गलतफहमी का कारण बन जाता है।

शिमला में उर्मिला से पुनः भेंट होने पर पुरी उसके प्रति आकर्षण को पुनजीवित करना चाहता है। कनक से विरक्ति के भाव में उर्मिला से विवाह का प्रस्ताव भी कर देता है। उर्मिला पुरी को फुसलाकर अपना स्वार्थ पूरा कर लेती हे, परन्तु विवाह कर लेती है डॉ. मोंगिया से।

कनक और पुरी के बीच कटुता दिन–प्रतिदिन बढ़ती जाती है। कनक को दाम्पत्य जीवन के यौन–सम्बन्ध से अदम्य विरक्ति हो जाती है। वास्तव में वह पुरी से घृणा करने लगती है। पुरी के साथ सहवास असम्भव हो जाने से कनक दिल्ली चली जाती है। कनक दिल्ली में तारा की सहायता से ग्राम–सुधार विभाग में नौकरी कर लेती है।

पुरी सामाजिक सम्मान के विचार से पत्नी का अपने साथ रहना आवश्यक समझता है। वह कनक के पिता को अनेक पत्र लिखता है कि कनक जालन्धर वापस आ जाए। गिरधारीलाल भी कनक को समझाते हैं, परन्तु अन्त में कनक के प्रति उनका वात्सल्य और कनक का हठ उन्हें चुप करा देता है। कनक के पिता सोचते हैं कि विचारों और प्रकृति–भेद के कारण कनक और पुरी का गृहस्थ–संबंध असंभव है, तो सामाजिक आडम्बर के लिए उन्हें एक साथ रहने

के लिए विवश करना, पाखण्ड और अन्याय है। कनक स्वयं जालन्धर जाकर यह निर्णय कर आती है कि वह पुरी के साथ एक क्षण भी नहीं रहेगी। पुरी के मान को ठेस लगती है, वह मन ही मन कराह रह जाता है, परन्तु डायवोर्स किसी प्रकार नहीं लेता। पुरी के मन में कनक के लिए प्रेम न होने पर भी वह अपने सामाजिक सम्मान के लिए कनक को अपने घर में ही रखना चाहता है। शनैः—शनैः तारा और डॉ. प्राण की मित्रता ने दूसरा ही रूप धारण कर लिया। डॉ. प्राण तारा के सम्मुख विवाह—प्रस्ताव रखते हैं, परन्तु हृदय से स्वीकार करके भी तारा रो पड़ती है। डॉ. प्राण से स्पष्ट कह देती है कि ससुरल से भागते समय उस पर जो अत्याचार किया गया उसके परिणामस्वरूप उसका शरीर रोगी हो चुका था। अपने आपको कुमारी कहकर वह उस रोग का उपचार नहीं करा सकती थी। डॉ. प्राण स्पष्ट स्वर में बोला— ''ठीक है, जो रोग कुमारी को नहीं हो सकता, उसका इलाज कुमारी नहीं करा सकती, लेकिन मेरा अधिकार और कर्तव्य है कि अपनी पत्नी का इलाज करवाऊँ। मिसेज नाथ को इलाज करवाना पड़ेगा...।''

सूदजी डॉ. प्राण से राजनीतिक मतभेद के कारण असन्तुष्ट हैं। उन्हें समाचार मिलता है कि डॉ. प्राण ने सोमराज की पत्नी तारा से विवाह करके गैरकानूनी काम किया। सूदजी के दबाव से सोमराज और पुरी डॉ. प्राण के विरुद्ध अनाचार की शिकायत कर देते हैं। डॉ. प्राण और तारा दोनों ही उच्च सरकारी अफसर होने के कारण विकट अपमान और अपराध की परिस्थिति में फंस जाते हैं, परन्तु नैयर कानूनी पैतराबाजी से स्थिति को पुरी और सोमराज के विरुद्ध कर देता है। सोमराज और पुरी को वह कानूनी कार्यवाही करने की धमकी देते हैं। तारा और प्राण तथा गिल और कनक के मार्ग से कठिनाइयाँ दूर हो जाती हैं। उपन्यास का अन्त डॉ. के मंगलमय वाक्य से होता है— ''गिल, अब तो विश्वास करोगे, जनता निर्जीव नहीं है। जनता सदा मूक भी नहीं रहती। 'देश का भविष्य' नेताओं और मंत्रियों की मुट्ठी में नहीं है, देश की जनता के ही हाथ में है।'' इस प्रकार से द्वितीय भाग का अपना पृथक् महत्व है।

2.4 भारत विभाजन की त्रासदी और झूठा सच

मनुष्य समाज में रहता है, दूसरे व्यक्ति के सुख में सुखी होना व दुख में दुखी होना उसकी सहज व स्वभाविक प्रवृति है। दूसरे के दुख को जानकर जब दुख

की अनुभूति होती है तो उसे करुणा, दया आदि नामों से पुकारा जाता है। इस संसार में मानव मात्र के जीवन का एक ही लक्ष्य होता है और इसी के लिए वह सारी उम्र प्रयास करता रहता है। वह है– सुख की उपलब्धि और दुख का निराकरण। अतः संसार का उद्देश्य सुख की संस्थापना और दुख की निवृति हैं। जो कर्तव्य संसार के इस उद्देश्य हेतु साधन रूप ही है। अरस्तु के अनुसार, ''त्रासदी का उद्देश्य प्रशान्त और गम्भीर आनन्द की निष्पति करना होता हैं।'' त्रासदी के वर्तमान स्वरूप का सम्बन्ध यथार्थवाद से है। यथार्थवाद के साथ उसमें आदर्श मर्यादावाद का भी समावेश हो। जहाँ यथार्थवाद हमें अपने वास्तविक समाज से जोड़े रखता है वहीं आदर्शवाद उस समाज को आगे बढ़ने के लिए प्रेरित करता है।

त्रासदी किसी गम्भीर, स्वतः स्फूर्त तथा निश्चित आयाम से युक्त कार्य की अनुकृति का नाम है। अर्थात् त्रासदी किसी गम्भीर विषय से ही सम्बद्ध होती है। हमारे इतिहास के घटनाक्रम में भारत–विभाजन ऐसी ही त्रासदीयुक्त घटना थी जिसने देश के वर्तमान की ही नहीं वरन् भविष्य को भी अपनी चपेट में ले लिया। उस समय भारत में जो साम्प्रदायिक उन्माद व जघन्य अपराध देखने को मिलते हैं, वे अशोभानीय थे। पंजाब व पश्चिमी बंगाल साम्प्रदायिक लपटों में धू–धू करके जल उठे, इन प्रान्तों में कब्जा जमाने के लिए लोग मार–मार करने लगे। करोड़ों की सम्पत्ति लूट ली गई, औरतों के साथ बलात्कार किया गया, उन्हें सरेआम नंगा करके घुमाया गया। क्रूरता का ताण्डव चारों ओर नजर आता था। 1946–47 में लाहौर व कलकत्ता में मानों गृहयुद्ध छिड़ गया हो। माउण्टबेटन द्वारा 3 जून, 1947 को विभाजन का निर्णय लेते ही नोआरवाली, बम्बई व पंजाब में साम्प्रदायिक दंगे भड़क उठे। विभाजन की घोषणा तो हो गई किन्तु दोनों देशों का सीमा–निर्धारण नहीं हो सका। पंजाब व पश्चिम बंगाल के जिलों वे देहातों का बँटवारा किस प्रकार होगा, इसको लेकर चारों तरफ अफवाहों का तूफान चलने लगा। कलकत्ता व लाहौर को मुसलमान पाकिस्तान में मानते और हिन्दू हिन्दुस्तान में, इसीलिए खून, लूटमार, आगजनी व बलात्कार की जितनी भयावह स्थितियाँ इन क्षेत्रों में देखी गई, वे अवर्णनीय हैं। विभाजन के पूर्व व पश्चात् त्रासदी के कई पहलू उद्घाटित हुए जिनमें प्रमुख थे– विस्थापन की त्रासदी, शरणार्थियों के पुनर्वास की समस्या, सांस्कृतिक समन्वय की प्रतिष्ठा।

हिन्दू–मुस्लिम वैमनस्य या भारत के विभाजन का आधार कोई भौगोलिक राजनैतिक कारण नहीं था वरन् धार्मिक था, जो आस्था व विश्वास से जुड़ा हुआ था। इसी के तहत विभाजन के समय जिस क्षेत्र में मुसलमान अधिक थे, उसे पाकिस्तान बना दिया गया व जहां हिन्दू व्यापक स्तर पर थे, उसे हिन्दूस्तान नाम दिया गया। दोनों देशों में आज़ादी के समय घोषणा की थी कि दोनों देशों में रह रहे हिन्दू–मुस्लिम उस राष्ट्र के नागरिक माने जाएँगे, उन्हें राष्ट्र छोड़कर जाने की आवश्यकता नहीं। किन्तु धार्मिक कट्टरता, आपसी अविश्वास, लूटमार, हत्या, बलात्कार जैसी घटनाओं ने मानव को भयभीत कर दिया। जो हिन्दू परिवार पाकिस्तान में स्थापित थे, वे अपने जान–माल की रक्षा हेतु अपना सब कुछ छोड़कर हिन्दूस्तान चले आए और यही स्थिति भारत में रहने वाले मुसलमानों की थी। अपनी तमाम उम्र की पूँजी, घर बार, जन्मभूमि सब कुछ छोड़कर असंख्य लोग विस्थापित हुए।

उपन्यास 'झूठा सच' में लेखक यशपाल ने विभाजन की इस त्रासदी का यथार्थ अंकन किया है। 'झूठा सच' मुख्य रूप से उन पीड़ितों की कथा है जो विभाजन के समय हिन्दू–मुस्लिम वैमनस्य का शिकार हुए। राजनैतिक स्वार्थों को धर्मान्धता के सहारे सिद्ध करने में मानवता की बलि किस प्रकार दी जाती है, उसका आबादी परिवर्तन एक करुणतम चित्र है, जिसमें निरपराध जन–मानस कितनी यातनाओं का शिकार हुआ।

बटवारे का दर्द भारत की धरती पर लकीर खींचकर बनाये गए दो हिस्सों की आबादी की अदला–बदली का ही दर्द नहीं है, बल्कि धर्म और जाति के नाम पर खेली जाने वाली राजनीति के जुनून तथा परिस्थितियों से उपजी विवश बौखलाहट का भी दर्द है। बीसवीं शती के मध्य में स्वतंत्रता की कीमत मांगने वाले उस रंजित इतिहास ने मानवता के विस्थापन और उच्छेदन को एक को एक अमिट लकीर में बदल डाला।

1958 में रचित यशपाल का वृहद उपन्यास 'झूठा सच' दो भागों में 1941–42 से 1957 तक के घटनाक्रम को अपने में समेटे है। यह कालखंड अवधि की दृष्टि से बड़ा नहीं है किन्तु सदियों की गहरी धसी जड़ों को उखाड़कर किसी संस्कृति के बरगद को पुनः स्थापित करने की जद्दोजहद में सामाजिक, राजनैतिक और आर्थिक नक्शा ही बदल डाला गया है। यशपाल लिखते हैं–

''यह इतिहास नहीं है। सच है, यदि यह केवल इतिहास होता तो बीत चुके काल में घटित एक हादसे की सूचना मात्र होता। यह उपन्यास उस जीवन की घड़कन है, जो कभी घटित हुआ था किन्तु उसकी पीड़ा और मानवीय अस्मिता के चीत्कार आज भी एक भयंकर साय के रूप में चेतना को झकझोर जाते हैं।''

हिन्दू–मुस्लिम वैमनस्य का भयावह रूप बंटवारे की घोषणा के साथ ही बढ़ गया था, जिसने सामान्य ज़िन्दगियों को अपनी जड़ों से उखाड़ दिया और शरणार्थी बनकर हिन्दुस्तान की धरती पर असहाय बना दिया। अनेक हृदय–विदारक परिस्थितियों में भारत विभाजन स्वीकार किया गया था उसके बाद भी एक दम शान्ति नहीं हुई बल्कि दूसरे शब्दों में उनसे कहीं अधिक हिन्दू–मुस्लिम झगड़े, दोनों ओर से लूटपाट, नारी निर्यातन, बलपूर्वक विवाह, बलात्कार, जबरन धर्म परिवर्तन, घरों में आग लगा देना आदि सभी कुकृत्य हुए। इसका बहुत मार्मिक चित्रण करने में यशपाल सफल हुए हैं। 'झूठा सच' प्रथम भाग में यह सब बिडम्बना देखी जा सकती है।

'झूठा सच' के पात्र नारंग जी द्वारा यशपाल सिद्ध करना चाहते हैं कि हिन्दू मुसलिम झगड़ों के बीच दोनों ही दलों के जान–माल की अपार हानि हुई, ''भाई कमी किसी तरह की नहीं रही। यहां भी इतना मुसलमान कटा हैं। अमृतसर की सड़कों पर जहां देखो, लाशें ही लाशें हैं।'' वतन और देश 'झूठा सच' का प्रथम भाग है जिसके अनत में ड्राइवर के कहे शब्द मानो सम्पूर्ण हिन्दुस्तान की व्यथा है, ''वह काफिला भी वतन छोड़कर अपने देश को जा रहा था। मनुखों के देश धर्मों के देश बन गये। रब्ब ने जिन्हें एक बनाया था, रब्ब के बन्दों ने अपने वहम और जुल्म से उसे दो कर दिया।''

इस उपन्यास में विस्थापन की पीड़ा को झेलने वाला प्रमुख परिवार था– लाहौर की भोलापाँधे की सघन गली में स्थित मास्टर लुभाया का। मास्टर राम लुभाया के पुत्र जयदेव व उनकी पुत्री तारा उपन्यास के केन्द्रीय पात्र के रूप में उभरते हैं। बंगाल व पंजाब को हिन्दू–बहुल व मुस्लिम–बहुल भागों में बाँट देने की शर्त के विकट संघर्षों को जन्म दिया। लाहौर में अस्सी फीसदी जायदाद हिन्दुओं की होने के कारण भोले पाँधे गली के लोग मानते थे कि लाहौर तक हिन्दुस्तान की सीमा निर्धारित की जाएगी। इसके बाद भी घसीटालाल, पन्नालाल जैसे के परिवार अनजानी आशंका से पहले ही लाहौर छोड़कर मथुरा–वृन्दावन

की तीर्थयात्रा पर निकल गए। लेकिन उस गली के अधिकांश परिवारों ने एकमत होकर यह निश्चय किया कि वे लोग अपने परम्परागत स्थान लाहौर को नहीं छोड़ेंगे। लेकिन जुलाई आते–आते लाहौर का पाकिस्तान में विलय सा हो गया तब ये लोग पाकिस्तान में बसने को तैयार हो गए। किन्तु अपना घर–बार छोड़कर जाने की सलाह किसी की भी नहीं थी किन्तु मुहल्ले पर किए गए आक्रमण से विवश होकर उन्हें अपना घर–बार छोड़ना पड़ा। तारा व उस जैसी हज़ारों स्त्रियों की रिफ्यूजी कैम्प भिजवाने के स्थान पर एक मकान में कैद कर लिया जाता है और वह उस कैद को बाहर से अधिक सुरक्षित मानती है। वहीं बन्ती तारा को आप–बीती सुनाते हुए कहती है कि कैसे मुसलमानों ने उन्हें स्टेशन तक केवल बदन के कपड़े और ज़ेवर एवं सफर का खर्च लेकर एक जगह एकत्र होने का हुक्म दिया और बन्दूकों की नोंक पर उनकी अस्मत लूट ली। यही हाल पंजाब में था, जहाँ भागते मुसलमानों को रेलों से उतारकर काट दिया गया व उनकी स्त्रियों को निर्वस्त्र कर नीलाम किया जा रहा था। भागते समय किसी की बहू बेटी पीछे रह गई थी, तो किसी का कारोबार, जमीन, जायदाद, हेवली। इस उपन्यास में अपने वतन से, अपने स्थान से विस्थापित होने वाले लोगों के हृदय–विदारक चित्र भरे पड़े हैं। जब तारा ने उन सभी स्त्रियों को पुलिस द्वारा उस कैद से छुड़वाकर अमृतसर की ओर रवाना किया जाता है तो रास्ते में तारा खिड़की से देखती है– ''सड़क के दोनों ओर थोड़े बहुत अन्तर पर लाशें, कटे हुए अंग या ध्वंस के दूसरे चिह्न दिखाई देते जा रहे थे।'' अमानुषिक अत्याचार, मानवीय बर्बरता के नग्न दृश्य, असहाय नारी के नारीत्व की दुर्दशा, शारणार्थियों के दुख–दर्द भी काफिले कुछ भी तो यशपाल जी के नज़र से ओझल नहीं हो पाया।

उन दिनों पंजाब का वातावरण इतना हृदय विदारक व वीभत्स हो गया था कि हर एक स्थान पर लाशें दिखाई देती थी। उन लाशों से दुर्गन्ध–उठने लगी थी। पाकिस्तान से हिन्दू व भारत से मुसलमान काफिले के रूप में अपने–अपने देश को जा रहे थे। इन लोगों की स्थिति अत्यधिक दयनीय व दरिद्र थी पाकिस्तान से तारा व अन्य अपहरण नारियों को लाने वाली बसों के ''दोनों ओर लंगडाती बढ़ती आ रही थी। कतरी हुई और जली हुई दाढ़ियाँ, दबी हुई टोपियाँ, रस्सी की तरह लपेटी हुई मैली पगड़ियों में से झाँकते मुँड़े हुए सिर काले–नीले चीथड़े कपड़े। स्त्री–पुरुषों के चेहरे आसुओं और पसीनों में जमी

हुई मिट्‌टी से ढके हुए थे। उबकाई पैदा करने वाली भयंकर दुर्गन्ध, मानों वे शरीर चलते फिरते भी सड़ते गलते जा रहे हों।''

नारी की जितनी मिट्‌टी पलीत विभाजन के समय हुई उतनी दुर्गति भारतीय इतिहास में पहले कभी नहीं हुई होगी। अपमान, ग्लानि, उपेक्षा, शारीरिक–मानसिक कष्ट हिन्दू व मुसलमान दोनों धर्मों की स्त्रियों को सहना पड़ा। उनका अपहरण, बलात्कार, उनके कोमल अंगों को काटना, पूर्ण नग्न करके नीलामी पर बैठाना, उन्हें निर्वस्त्र करके जुलूस निकालना आम बात हो गई थी। तारा जब शेखपुरा के मकान में बेचने के लिए बन्द कर दी गई तब वहां उसे अनेक औरतों की व्यथा–गाथा सुनने को मिलती है। वहीं फिरोजपुर में पुरी अपने माँ–बाप की खोज में गया हुआ था, वह देखता है कि भीड़ के एकदम बीच में एक आदमी चोटी से पकड़–पकड़कर निर्वस्त्र लड़कियों को बेच रहा है। दंगाइयों द्वारा नारी की दुर्गति होती है और स्वयं उनके परिवार वाले व पति भी उनका तिरस्कार कर देते हैं। बन्तों का अपने देश आना, परिवार को ढूंढना, फिर पति व सास द्वारा अस्वीकार कर देना किसी भी प्रकार क्षम्य नहीं है। नारियों की इस शोचनीय अवस्था पर ही एक स्त्री कहती है– ''हिन्दनी हो चाहे मुसलमानी, जो अपनी इज्जत के लिए मर गई, वही सबसे अच्छी रही। औरत के शरीर की तो बरबादी है। औरत तो ढोर बकरी है, जो चाहे छीन ले जाए।''

आधुनिक युग में एक–दूसरे के बीच युद्ध, विश्व युद्धों, देशों के बटवारे इत्यादि से जन्मी परिस्थितियों में भारी संख्या में जनसमूह का विस्थापन एक विकराल समस्या बनकर समाने आया है। घर बार छोड़कर केवल जान बचाकर भागे हुए ऐसे जनसमूह के पास खाने–पहनने, ओढ़ने की दृष्टि से कुछ भी नहीं होता है और न ही उनका पुनर्वास लक्षित रहता है। उन्हें कभी–कभी बरसों विविध केम्पों अथवा यहाँ से वहाँ भटकते हुए जीवन व्यतीत करना पड़ता है। शरणार्थियों की भौतिक, बाहरी जीवन–यापन, जान की रक्षा, भूख की समस्या इत्यादि समस्याएँ तो स्पष्ट दिखाई पड़ती हैं परन्तु इन समस्याओं के साथ उनके अन्तर्मन में बहुत सारी उथल–पुथल, अहापोह, आशा–निराशा, अवसाद, पश्चाताप, निर्दोष होते हुए भोगी जा रही सजा के प्रति आक्रोश, सबकुछ खो देने का दुख, अनिश्चित भविष्य इत्यादि को लेकर न जाने कितना कुछ घटित होता रहता है। एक स्थान से उखड़कर दूसरे स्थान पर पुनः स्थापित होना एक दुष्कर कार्य है, इसमें मनुष्य को अनेक प्रकार की सामाजिक, धार्मिक, राजनैतिक, सांस्कृतिक

एवं मनोवैज्ञानिक कठिनाइयों का सामना करना पड़ता है। पुर्नवास सामान्य परिस्थितियों में तो सरल हो सकता है किन्तु विभाजन जैसी घटना के उपरान्त जब सभी मानवीय व रागात्मक मूल्य नष्ट हो गए थे, परम्पराएँ व संस्कृति खण्डित हो गई थी, ऐसे माहौल में बसना अपने आप में एक चुनौतीपूर्ण कार्य था।

'झूठा सच' का प्रथम भाग (वतन और देश) दंगों, आगजनी, लूटपाट, विस्थापन की त्रासदी से जुड़ा है, वहीं दूसरा भाग शरणार्थी समस्या, पुनर्वास व जीवन के मानवीय मूल्यों के ह्रास से सम्बद्ध है। शरणार्थी स्त्री–पुरुषों की समस्याओं ने सम्पूर्ण व्यवस्था को झकझोर डाला था। अर्थ की महत्ता ने सभी मानवीय मूल्यों को समाप्त कर दिया था। इस दूसरे खण्ड में यशपाल जी ने शरणार्थी कैम्पों व शिविरों की अव्यवस्थाओं का चित्रण किया है। उसमें विभाजन के तुरन्त बाद दिल्ली के कुछ वर्षों के विच्छृंखलित जीवन का विस्तृत चित्रण है। उपन्यास का नायक जयदेव पुरी अपने माता–पिता की खोज में शरणार्थी शिविरों में भटकता फिरता है। शिविरों की स्थिति शोचनीय थी। असीर के शब्दों में, ''इस समय हज़ारों रिफ्यूजी मस्जिदों, मकबरों में, मस्जिदों में क्या पुराने किले के खंडहरों में भी जहां गीदड़ जमगादड़ भरे रहते थे, सिर छिपाए हैं। गरीबों ने कब्रें उखाड़–उखाड़ कर किस तरह सिर पर साया बनाया है'' बहावपुर में पचास हज़ार हिन्दुओं को जबरदस्ती निकालकर कैम्पों में भर दिया गया। उन्हें दो–दो दिन में प्रति दो रोटी मिल रही थी। जल की भी सुविधा नहीं थी। सौ से अधिक शरणार्थी भूख से मर चुके थे। शारणार्थियों का जमावड़ा एक स्थान पर कई–कई महीनों वर्षों तक टिका रहा, क्योंकि उनके आगे और कोई रास्ता ही नहीं था। उपन्यास में चित्रित किया गया है कि जब 31 मार्च की शाम को जब दिल्ली में चालीस हज़ार शरणार्थियों से भरे किंग्जवे कैम्प और दस लाख शरणार्थियों से भरे देश के सभी कैम्पों को समाप्त करने के आदेश दिए गए, उन लोगों पर मुसीबतों का पहाड़ टूट पड़ा। वे क्या करेंगे कहां जाएंगे? इस देश के लोग उन्हें अविश्वास व संशय की दृष्टि से देखते थे। जीविका निर्वाह के लिए, पेट भरने के लिए ये लोग मानवीय मूल्यों को नैतिक मान्यताओं को तिलांजलि देते जा रहे थे। चारों ओर अराजकता का वातावरण दिखाई देता था। अर्थाभाव की पीड़ा ने स्त्रियों को देह–व्यापार करने के लिए मजबूर किया। क्षण भर में खाते–पीते घर की लक्ष्मियाँ सड़क पर आ गई थी, गद्दी पर बैठने

वाले साहूकार दो वक्त की रोटी के मोहताज हो गए। बेरोजगारी ने बेघरबार हुए शरणार्थियों को दुस्साहसी बना दिया था, क्योंकि अब उनके पास खोने को बचा ही क्या था। 'दिल्ली में ऐसे नए–नए रोज़गार दिखाई देने लगे थे जो पहले कभी नहीं सुने गए थे। जहां कभी दस आदमियों के आने की सम्भावना थी, एक दुकान बन गई थी। गलियों में छोटे–छोटे ठेले लेकर कपड़े पर इस्त्री करने वाले घूमने लगे थे। लोगों को बिजली, टेलीफोन और पानी के बिल चुकाने के लिए जाने की जरूरत नहीं रहीं। शरणार्थी द्वार पर आकर बिल ले जाते थे और रसीद पहुँचा देते थे। बाज़ार में जो चीज खरीदिए, कागज की थैली में मिलने लगी थी। दिल्ली में आ बसे पंजाबी 'शरणार्थी' पुकारे जाने पर आपत्ति करते थे, उन्होंने अपने लिए 'पुरुषार्थी' नाम रख लिया।

2.5 निष्कर्ष

वस्तुतः विभाजन के बाद इतनी बड़ी त्रासदी का यथार्थ अंकन और शरणार्थियों के पुरुषार्थी बनने की प्रक्रिया सरल नहीं कही जा सकती उपन्यासकार यशपाल का मानना है कि विभाजन के समय देश के दोनों भागों में होने वाली पैशाचिक लीलाओं का निर्मम तथा हृदय को दहलाने वाला चित्रण भारत के इतिहास का काला पृष्ठ है। लोग अपने–अपने घरों को छोड़ भागने के लिए विवश किये गए। वतन को छोड़कर भागने वालों को भूखा–नंगा, अनेक रोगों से पीड़ित होकर नारकीय जीवन बिताना पड़ा। इस पीड़ा के अनेक दृश्य यदि करुणापूर्ण हैं तो अन्य अनेक आतंकित और रोंगटे खड़े कर देने वाले हैं। जहाँ भूख से बेहाल लोगों का चित्रण द्रवित कर देता है वहीं भीड़ के बीच निर्वस्त्र जवान लड़कियों को नीलाम करने के दृश्य रोंगेटे खड़े कर देने वाले हैं। जानबचाकर भागने के लिए बेचैन और उतावले विस्थापितों के काफिले, रेलवे प्लेटफार्म तथा रेलगाड़ियों में भूखी तबाह भीड़, वहां छोटी–छोटी बात के लिए लड़ाई–झगड़े, गाड़ियों पर होने वाले आक्रमण, यात्रियों को बांह पकड़कर बाहर निकालना स्त्रियों की दुर्दशा, बालकों बूढ़ों की निर्मम हत्या आदि के पैशाचिक दृश्यों के साथ–साथ पाव भर आटा और छटांक–भर दाल बांटने वाले खद्दरधारी व्यक्तियों के निस्पृह उदार कार्यों का विवरण भी मिलता है। लेखक ने निर्मम सत्य को बेलाग होकर अत्यन्त समर्पित भाव से अंकित किया है।

2.6 अभ्यासार्थ प्रश्न

प्र1) 'झूठा सच' की कथावस्तु पर प्रकाश डालें।

____

____

____

____

____

प्र2) भारत पाक विभाजन की त्रासदी का चित्रण उपन्यास 'झूठा सच' में हुआ है, स्पष्ट कीजिए।

____

____

____

____

____

प्र3) भारत पाक विभाजन का यथार्थ अंकन उपन्यास में हुआ है, इससे आप कहाँ तक सहमत हैं?

____

____

____

____

____

2.7 पठनीय पुस्तकें

1. झूठा सच – भाग–1, भाग–2 – यशपाल
2. यशपाल का औपन्यासिक–शिल्प – प्रो0 प्रवीण नायक
3. यशपाल के उपन्यासों का मूल्यांकन – डॉ0 सुदर्शन मल्होत्रा
4. यशपाल का उपन्यास साहित्य – डॉ0 सरोज बजाज
5. यशपाल के उपन्यास – डॉ0 प्रमोद पाटिल
6. भारत–विभाजन और हिन्दी उपन्यास – डॉ0 अंजु देशवाल
7. झूठा सच – यशपाल (छात्रोपयोगी संस्कार)
8. मेरा तेरा उसकी बात – यशपाल
9. यशपाल के उपन्यास : सामाजिक कथ्य – चमनलाल गुप्ता
10. यशपाल साहित्य में काम चेतना – डॉ0 शकुंतला चहवान
11. आठवें दशक की हिन्दी कहानी में सामाजिक बोध – डॉ0 नामदेव नान्देडी
12. यशपाल – अभिनन्दन ग्रन्थ – श्री महेन्द्र
13. यशपाल का कथा साहित्य – प्रकाशचन्द्र मिश्रा
14. मार्क्सवाद और उपन्यासकार यशपाल – डॉ0 पारस नाथ मिश्रा

****

'झूठ सच' में नारी चित्रण

3.0 रूपरेखा

3.1 उद्देश्य

3.2 प्रस्तावना

3.3 'झूठा–सच' उपन्यास में नारी चित्रण

3.3.1 साम्प्रदायिकता की आग में झुलसती नारी

3.3.2 पुरूष द्वारा प्रताड़ित नारी

3.3.3 नारी का विद्रोही रूप

3.3.4 प्रगतिशील नारी

3.4 सारांश

3.5 अभ्यासार्थ प्रश्न

3.6 पठनीय पुस्तकें

3.1 उद्देश्य

प्रस्तुत पाठ के अध्ययनोपरान्त आप

– विभाजन के समय नारी की त्रस्त स्थिति से अवगत होंगे।

– विभाजन के दौरान सबसे अधिक नारी का शोषण हुआ, इस तथ्य को समझ सकेंगे।

– नारी किस प्रकार पुरूष से प्रताड़ित हुई है यह जान सकेंगे।

– अपने साथ हो रहे शोषण का नारी विरोध करना भी सीख गई है इस सत्य का ज्ञान प्राप्त कर सकेंगे।

– नारी के प्रगतिशील रूप से अवगत होंगे।

3.2 प्रस्तावना

यशपाल के उपन्यासों में नारी–पात्र अपनी यथार्थ स्थिति को लेकर सामने आते हैं। मर्यादाओं की शृंखला में बंधी हुई नारी की दशा दयनीय हो रही है, परन्तु प्रगतिवादी साम्यवाद से प्रभावित नारियां समाज की रूढ़ियों एव मर्यादाओं की उपेक्षा करती हुई समाज से संघर्ष करती हैं। सामान्य नारियों के चरित्र का उत्थान–पतन परिस्थितियों की पष्ठभूमि में हुआ है। अगर बात 'झूठा–सच' उपन्यास की करें तो इस उपन्यास में यहां शोषित एवं प्रताड़ित नारी का चित्रण हुआ है, वहीं विद्रोही एवं प्रगतिशील नारी का रूप भी देखने को मिलता है। नारी–पुरूष सम्बन्धों के संदर्भ में यशपाल ने वास्तव में इस रिश्ते के सच और झूठ को अच्छे से परखा है और इसका सुझाव शादी तथा तलाक में खोजा है। वह संबन्ध–विच्छेद का समर्थन करते हैं क्योंकि जब दोनों में आपसी अलगाव अधिक हो जाए या नारी को पुरूष द्वारा प्रेम की अपेक्षा अलगाव व प्रताड़ना मिले तो ऐसे सम्बन्ध को तोड़, जीवन की नई शुरूआत करना ही सही निर्णय होता है। इसलिए उपन्यास में यशपाल ने नारी पात्रों द्वारा विवाह बन्धन को तोड़ने का प्रयास भी किया है।

3.3 झूठा सच उनन्यास में नारी–चित्रण

भारतीय नारी–जवीन की विकृति से सम्बन्ध रखने वाले अनेक प्रश्न इस उपन्यास में आए हैं– आर्थिक दृष्टि से वह स्वतंत्र नहीं है, भोग–विलास की वस्तु समझी जाती है, अशिक्षा के अभिशाप से पीड़ित है, सामाजिक जीवन में पिछड़ी हुई है, समाज में न उसका अस्तित्व है और न गौरव वह तथाकथित शील, मर्यादा और परम्पराओं का बोझढोते–ढोते अपनी जवीन लीला समाप्त कर देती है। दूसरी और लड़कियों के स्वावलंबी, अधिक जागरूक और साहसी

होने के फलस्वरूप बदलते परिवेश का चित्र भी प्रस्तुत किया गया है। 'झूठा सच' में चित्रित नारी को निम्नलिखित बिन्दुओं से समझा जा सकता है।

3.3.1 साम्प्रदायिकता की आग में झुलसती नारी

नारी की जितनी मिट्टी पलीत विभाजन के समय हुई उतनी दुर्गति भारतीय इतिहास में पहले कभी नही हुई होगी। अपमान, ग्लानि, उपेक्षा, शारीरिक–मानसिक कष्ट हिन्दू व मुसलमान दोनों धर्मों की स्त्रियों को सहने पड़े। उनका अपहरण, बलात्कार, उनके कोमल अंगो को काटना, पूर्ण नग्न करके नीलामी पर बैठाना, उन्हें निर्वस्त्र करके जुलूस निकालना आम बात हो गई थी। तारा जब शेखपुरा के मकान के बेचने के लिए बन्द की गई। तब वहां उसे अनेक औरतों की व्यथा–गाथा सुनने को मिलती हैं।

वहीं फिरोज़पुर में पुरी अपने मां–बाप की खोज में गया हुआ था, वह देखता है कि भीड़ के एकदम बीच में एक आदमी चोटी से पकड़–पकड़कर निर्वस्त्र लड़कियों को बेच रहा है। सभी मुस्लमान लड़कियां थी। दंगाइयों द्वारा नारी की दुर्गति होती है और स्वयं उनके परिवार वाले व पति भी उनका तिरस्कार कर देते हैं। बन्तो का अपने देश आना, परिवार का ढूंढना, फिर पति व सास द्वारा अस्वीकार कर देना किसी भी प्रकार क्षम्य नहीं है। नारियों की इस शोचनीय अवस्था पर ही एक स्त्री कहती है– ''हिन्दनी हो चाहे मुस्लमानी, जो अपनी इज्जत के लिए मर गई, वही सबसे अच्छी रही। औरत के शरीर की तो बरबादी है। औरत तो ढोर बकरी है, जो चाहे छीन ले जाए।

बन्तो तारा को आप–बीती सुनाते हुए बताती है कि कैसे मुसलमानों ने स्टेशन तक केवल बदन के कपड़े और जेवर एवं सफर का खर्च लेकर एक जगह एकत्र होने का हुक्म दिया और बन्दूकों की नोक पर उनकी अस्मित लूट ली। यही हाल पंजाब में था, जहां भागते मुसलमानों को रेलों से उतारकार काट दिया गया व उनकी स्त्रियों को निर्वस्त्र कर नीलाम किया जा रहा था। भागते समय किसी की बहू–बेटी पीछे रह गई थी! तो किसी का करोबार।

समाज की धर्मिक व्यवस्था व रीति–रिवाजों के मानवीय मूल्यों के निष्क्रिय हो जाने का उदाहरण बन्तो के जीवन में देखते है। बन्ती बड़ी मुश्किल से ढूंढ–ढूंढकर अपने पति के घर पहुंची तो पति कहता है कि तुम्हारा धर्म नष्ट

हो गया है। बन्ती को घर में नहीं घुसने दिया। वह वहीं दहलीज पर माथा पटक–पटक कर प्राण दे देती है। जब वह मर गई तो उसे सती मान लिया जाता है, इसके लिए गुमराह व बेदर्द हिन्दू समाज ही जिम्मेदार है, नारियां परम्परा व रीति–रिवाजों से विमुख नहीं होना चाहती, इसलिए पुरूषों को अपना सुधारवादी आन्दोलन, जिसमें हवन व ईश्वर भजन का कार्यक्रम था, स्थागित करना पड़ा। उनके इस सुझाव के प्रति औरतों ने विस्मय प्रकट किया–''हाय! यह कैसे हो सकता है। कर्मों वाली बुढ़िया थी, पोते–पोतियों का, पोते की बहू का मुंह देखकर मरी है; इसका विमान नहीं सजेगा, इसके लिए संग स्यापा नहीं होगा तो फिर किसी जवान के मरने पर यह सब होगा''।

उपन्यास में विभाजन के समय पुलिस की नृशसंता का चित्रण लेखक ने किया है। पुलिस ने जबरदस्ती घरों में घुस कर लूटमार की। स्त्रियों का सतीत्व लूटा। अमानवीयता की चरम सीमा तो यह है कि प्रत्येक स्त्री, कुवारी लड़की, गर्भवती स्त्री के साथ चार–चार पांच–पांच आदमियों ने मिलकर बलात्कार किया। जिनमें से बहुत–सी स्त्रियां मर गयी, बहुत–सी जवीन पर्यन्त के लिए बीमार हो गयीं। मां–बाप के सामने स्त्रियों के जुलूस निकाले गये। क्या नहीं हुआ उस समय? सरकारी अफसरों और पुलिस ने ऐसे कृत्यों को बढ़ावा ही दिया। 'झूठा–सच' में भी यशपाल ने ऐसी वीभत्स घटनाओं को ज्यों का त्यों चित्रित किया है। उन्हीं में से एक घटना यहां प्रस्तुत है, ''कुछ हिन्दु, मुसलमान लड़कियों को नंगा करके नीलाम कर रहे थे। भीड़ के बीचोबीच नीलाम करने वाला जवान, लड़की को चुटिया से खीच कर खड़ा किये था, लड़की के शरीर पर कोई कपड़ा न था। माल ग्राहकों को अच्छी तरह दिखाने के लिए उसने लड़की की कमर के पीछे अपने घुटने से ठेस देकर उसके सब अंगों को उभार दिया था, लड़की के आंसुओं से भीगे, पलकें मुंदे चेहरे पर से उसके हाथ को खींच कर हटा दिया। लड़की के सूर्य की किरणों से अछूते शरीर के भाग छिले हुए संतरे की भांति बहुत गोरे और कोमल थे। भीड़ के बीच धरती पर कुछ और भी लड़कियां चेहरे बांहों में छिपाये घुटनों पर सिर दबाये बैठी थी, उनके कपड़े भी धरती पर पड़े थे।'' यह कुछ लड़कियों और स्त्रियों की वेदना नहीं है अपतिु हज़ारों लड़कियों का भोगा हुआ कटु सत्य है। एक पक्ष के लोगों ने पाशविक प्रवृतियों को बढ़ावा देने में वीरता दिखाई तो दूसरे पक्ष के लोग कैसे स्वीकार कर लेते कि वे कम पशु हैं। पशुता की होड़ में वे पीछे क्यों रह जाते। 'झूठा

सच' में कुछ लोग, ऐसे शर्मनाक दृश्य को देख कर, सबको प्रताड़ित करते हुए कहते है; ''तुम मुसलमानो से किस बात में अच्छे हो? उन्होंने क्या बुरा किया जो तुम नहीं कर रहे हो। इनकी इस तरह की बेइज्जती करोगे तो कोई भला आदमी इन्हें घर में कैसे बसा सकेगा? इनका अपराध यह होगा कि इनके साथ अनाचार किया गया है। पशुता और अनाचार तुम करो और उसका दण्ड भोगे बेचारी स्त्री? यह बेचारी भुगतने और भोगी जाने के लिए ही है।''

3.3.2 पुरूष द्वारा प्रताड़ित नारी

'झूठ–सच' में तारा की मनःस्थिति भी तारा से संबंधित है। पिछले कुछ दिनों में तारा ने जो कुछ देखा और भोगा है वह किसी का भी दिल दहला देने को काफी है। उसकी इच्छा के विरुद्ध हुए विवाह के तत्काल बाद, पति सोमनाथ के अनाचार से बचने के विचार से, जैसे ही वह कमरे से बाहर निकलकर पड़ोस के मकान में कूदती है, तो आगजनी शुरू हो जाती है। नब्बू हो या फिर हाफिज़ जी, उसकी यातना का कोई अंत नहीं है। इसके पूर्व आत्महत्या का उसका प्रयास भी विफल हो चुका है। हाफिज जी जब उसे इस्लाम में दाखिल कराने का सबाब हासिल नहीं कर पाते है तो उसकी ओर से उदासीन हो जाते है। हिंदू कैंप में भिजवा देने का आश्वासन देकर, पुलिस में नौकर उनका बेटा उसे गुंडों के हाथ बेच देता है। पुलिस की वर्दी में, जीप में बिठाकर वे लोग उसे हिंदू कैंप में पहुंचा देने के बहाने ले जाते हैं। जीप का ड्राइवर भी पुलिस की वर्दी वाली कमीज़ पहने है। एक रोयंदार टोपी पहने व्यक्ति उसकी बगल में बैठा है जिस की मूंछे बिच्छू के डंक की तरह चढ़ी है। कैंप के बहाने वे लोग उसे वस्तुतः उधोदास के कब्जा किए गए मकान में कैद करके रखी गई कुछ और हिन्दू लड़कियों के पास ले जाना चाहते हैं। तारा की दुर्दशा का कोई अंत दूर–दर तक दिखाई नहीं देता। उसकी स्थिति जीप में रखी गई टोकरी में बंधी उन मुर्गियों से बहुत भिन्न नहीं है जिन्हें तारा और उसी की तरह उनके हिन्दू लड़कियों की तरह कहीं से उड़ाया गया है और कभी और कहीं उन्हें जिबह किया जा सकता है। मुर्गियों की लाल–लाल बूंदों जैसी– गोल–गोल आंखें एकटक तारा की ओर लगी है– शायद बचाव की मूक और अधीर प्रतीक्षा में मुर्गियों की वह कातरता तारा के हदय में कील की तरह गड़ती है। टोकरी में बंधी पड़ी इन मुर्गियों से भिन्न स्थिति पीठ के पीछे बंधे हाथ वाली तारा की भी नहीं है।

उपन्यास में लेखक ने विभाजन के समय हुई नारी की दुर्गति का चित्रण तो किया है जो इन पंक्तियों में द्रष्टव्य होता है:–

''एक प्रौढ़ा और जवान स्त्री बहुत ज़ोर से चीख कर एक दूसरे से लिपट गयी थी। बर्छा हाथों में लिए आदमी ने बर्छा बाये हाथ में लेकर दायें हाथ से जवान स्त्री के दुपट्टे में से केसों को पकड़ कर उसे दरवाज़े की ओर लुढ़का दिया और लात के धक्के से नीचे गिरा दिया। बर्छा उठा और दोनों हाथ उठाये, भय से रंभाती हुई बुढ़िया के खुले मुंह और गले को फाड़कर निकल गया। सफेदपोश मुसलमान ने कायरता से गिड़गिड़ाकर प्राणों की भिक्षा के लिए तलवार उठाये जवान के घुटने पकड़ लिये। तलवार उसकी पसलियों के नीचे धंस कर उठ गयी। उसके समीप बैठी स्त्रियां भय से लुढ़क कर गिर पड़ी।''

यशपाल जी के 'झूठा सच' उपन्यास की बंती देश–विभाजन के समय अपने परिवार से बिछुड़ जाती है। जब वह शेखपुरा मंडी में एक हवेली में पहुंचाई जाती है तब वहां और भी स्त्रियां होती है जिनके शरीर पर पूरे वस्त्र भी नहीं। एक बुढ़िया को कुछ रूखी रोटियां दिन में एक बार दी जाती थी। कभी–कभी वह भी नहीं। उन्हीं में से एक बंती नामक नारी अपने घर में वापिस जाने की आस लगाये बैठी थी। उनका कहना था कि ''महाराज जी चाहें तो क्या नहीं हो सकता? सीता माता रावण की कैद में रह कर भी भगवान रामचन्द्र जी के पास पहुंच गई थी।'' दुर्गा नाम की औरत भी इनके समान वहां कैद थी उसे बंती की बात पसंद नहीं आई, वह बोल उठी ''घर से एक बार निकली, दर–दर रूसवार हुई तीमी (अबला) को फिर कौन रखता है? घर से निकल तीमी और डाल से टूटा फल, उनका फिर मेल क्या?'' दुर्गा के माध्यम से यशपाल ने यह स्पष्ट किया है कि नारी के एक बार दूसरों के हाथ में पड़ जाने से वह पति द्वारा स्वीकार नहीं की जाती फिर भी बंती आस लगाए बैठी थी उसे क्रोध आ गया तथा वह कहने लगी–''मै घर से निकली हूं''... सब कुछ सभी की आंखों के सामने हुआ है। घर से हम निकली हैं या वे लोग हमें डर से छोड़ गये या उन्होंने जबरन छीन लिया? जो हुआ, उसमें कोई क्या कर सकता था? किसे दोष दें?

लेकिन नारी का कितना शोषण किया जाता है परिवार वालों ने उसे अपनाया नहीं। जैसा दुर्गा ने बंती से कहा था वही होकर रहा। यशपाल जी यहां यह

स्पष्ट करना चाहते हैं कि नारी ही यह अन्याय चुपचाप क्यों सहन कर लेती हैं। अगर पुरूष घर से बाहर रहकर आए तो पत्नी को अपने पति को स्वीकार करना ही पड़ता है। पत्नी को स्वीकार पति क्यों न करे?

यहां तक कि बंती अपने बच्चे को भी नहीं उठा सकती। वह सास से झपट कर बच्चे को ले लेती है और सीने से लगा लेती है परन्तु जैसे ही वह बैठती है तो सास चुपचाप उसकी गोदी से बच्चे को लेकर भीतर चली जाती है और बंती को घर में घुसने नहीं देती। उसका कहना है – हट जा, दूर रह! बाहर निकल!''... दूर रह, तुझे कह दिया! तू अब हम लोगों के किस काम की।'' पास पड़ोस वाले भी कुछ बंती का साथ देते हैं कुछ उसकी सास का।

जब बंती का जेठ तथा उसका पति बाहर से आते हैं वह भी उसे स्वीकार करने से इन्कार कर देते हैं। उस समय का चित्रण अत्यंत दर्दनाक है। विभाजन के समय का यह वास्तविक चित्रण है। उसके पश्चात बेचारी बंती दहलीज पर सिर पटक–पटक कर प्राण दे देती है तब उसे पवित्र सती तथा सुहागिन समझा जाता है।

वास्तव में देखा जाए तो बंती का क्या कसूर था वह अपनी मर्जी से कहीं नहीं गई थी फिर भी उस समय की विकट परिस्थितियों से जूझ कर अपने परिवार को ढूंढ निकालती है तो भी समाज के लोागें का यह अन्याय जो उसे आत्महत्या करने के लिए विवश कर देता है।

यशपाल ने बंती के जीवन की मर्मान्तक घटना द्वारा मानों समूची नारी जाती के प्रति किये गए सामाजिक अन्याय को मुखरित कर दिया है। घर के पुरूषों द्वारा मुस्लमानों के पास छूट गई बंती कई महीनों की कैद, भूख और यंत्रणा सहकर जब हिन्दुस्तान पहुंचती है तो तारा के साथ अमृतसर दिल्ली और अम्बाला तक धक्के खाती हुई अपने परिवार को खोज लेती है किन्तु पति, जेठ और सास द्वारा अस्वीकृत कर दिये जाने पर पति के दरवाजे पर ही सिर पटक–पटक कर प्राण देती है। मरणोपरांत सुहागिन के रूप में उसका अंतिम संस्कार किया जाता है। यह छोटी सी घटना बेहद मर्मिक और सामाजिक विद्रपत्ताओं की गवाही देती है। तारा के मन पर पड़े प्रभाव के कारण वह अपना एक नया स्वतंत्र व्यक्तित्व ग्रहण कर पाती है। तारा की सामाजिक और आर्थिक पोजीशन का विकास चौंकाता अवश्य है किन्तु विभाजन से पहले भोला पांछे की गली में

रहने वाली मास्टर जी की वह निम्न मध्यवर्गीय लड़की अपने जीवन का अभिशाप सहकर भी भारत सरकार के सचिवालय में अतर–सचिव के पद पर पहुंच कर डॉक्टर प्राणनाथ जैसे विद्वान और प्रतिष्ठित व्यक्ति से विवाह करती है। यह विकास क्रम जीवन के उखाड़–पछाड़ में सामाजिक मूल्यों, परिस्थितियों और परिवेश में परिवर्तन के समानान्तर चलता है।

यशपाल जी ने 'झूठा–सच' की अपहृत नारी की भी चर्चा की है। 'झूठा–सच' की तारा सोमनाथ के साथ विवाह नहीं करना चाहती थी लेकिन पारिवारिक परिस्थितियां कुछ ऐसी थीं कि विवाह हो ही जाता है और तारा भी अपने मन को समझा बुझाकर पति–गृह की ओर विदा हो जाती है। सुहाग रात को भी सोमनाथ तारा को पीट भी रहा है और उस पर तरह–तरह के आरोप लगा रहा है क्योंकि वह सोमनाथ के साथ विवाह करने के लिए तैयार न थी। इसी बीच उनके मोहल्ले में मुसलमान आकर लूट–मार करते हैं तथा घरों मे आग लगा देते हैं। घर को आग की लपटों से घिरा हुआ देखकर तारा छत के रास्ते घर से भाग जाती है। सब यह सोचते हैं कि वह आग में ही जलकर खत्म हो गई होगी। परन्तु 'वह रे, नारी तेरा दुर्भाग्य!' भागती हुई तारा नब्बू नामक मुसलमान के पंजे में फंस जाती है और वह उसका अपहरण कर लेता है।

इससे सम्बन्धित उदाहरण एक और भी है। विभाजन के समय नारियां जब मुसीबतों से बचती–बचाती किसी ऐसे स्थान पर पहुंच जाती हैं। जहां पर वह अपने आपको सुरक्षित समझती हैं लेकिन वहां भी दुर्भाग्य उनका साथ नहीं छोड़ता।

मंडी के पीछे के मुहल्ले में उधोदास के मकान में दस–बारह हिन्दू स्त्रियां कैद थीं। वहां से उन्हें हिंदुस्तान भिजवाने का प्रबन्ध किया जा रहा था लेकिन औरतें वहां भी निश्चिन्त नहीं थीं। तारा भी वहीं पहुंचाई गई बंसी ने तारा को बताया कि ''जब उसे यहां लाया गया था तो लक्खी के साथ तीन और भी लड़कियां थीं। दूसरे दिन सुबह ही भरा–मूछों वाला कसाई दो मर्दों को लेकर आया और उस तीनों को ले गया।'' 'झूठ सच' में आद्यन्त पुरूष नारी की उपेक्षा करके उसके प्रति भोग दृष्टि रखता हुआ दिखाई देता है। नारी इनका शिकार होकर अपादाओं को झेलती है और आगे बढ़ती है। तारा को सोमराज साहनी से प्रताड़ित होकर मुसबितों के झंझावत में भटकना पड़ता है। उर्मिला परिस्थितियों

से जूझकर पुरी की रखैल बनकर रहती है। परिस्थितियों का शिकार होकर बन्ती के प्राणें का उत्सर्ग करना पड़ता है। अन्ततः यह कहा जा सकता है कि विभाजन के समय स्त्रियों–पुरूषों बच्चों–बूढ़ों सब की दुदर्शा हुई। लोगों के घर तबाह हो गये लेकिन अगर बारीकी से देखा जाए तो नारी ही इस विभाजन के शिकंजे में बुरी तरह फंसी है और प्रताड़ित होती रही।

3.3.3 नारी का विद्रोही रूप

मानवता की नज़र से नारी एक स्वतंत्र व्यक्तित्व है। आर्थिक स्वतंत्रता उसके लिए एक अहमियत रखती है इसी आर्थिक स्वतंत्रता पर नारी अधिक आत्मनिर्भर होती है, पूँजीवादी वैश्विक प्रवृति नारी को भोग्य वस्तु समझती है परन्तु गत्यात्मक वैज्ञानिक समाजवाद के समर्थक उसे स्वतंत्र व्यक्तित्व मानते हैं, उसे सहचारिणी मानते हैं, मात्र अनुगामिनी नहीं। समाजवादी संस्कृति इस तरह मानवता की दृष्टि रखता है। वह नारी को अर्थार्जन की पूर्ण स्वतत्रता देकर समाजवादी शासन व्यवस्था की पूर्णतः सहयोगिनी बनाता है। ऐसी अवस्था में उसे अपने पूर्ण विकास का अवसर प्राप्त होता है! इसकी व्यक्तिगत विकास के साथ वह सामाजिक विकास में भी सहयोग देती है। यशपाल के नारी पात्र प्रायः इसी प्रकार के हैं, वे अपने बारे में ही नहीं अपितु अन्यों के बारे में भी मानवता का दृष्टिकोण रखते हैं। परस्पर विरूद्ध विशेषों के बारे में वे रहने की प्रवृति का उन्मूलन तथा चित्रण करते हैं। पुरूष पर अवलम्बित रहने की प्रवृति का उन्मूलन तथा जीवन के प्रति स्वालम्बन। इसमें अर्थाजर्न की स्वतत्रंता और मन की निर्णायक शक्ति अनुस्युत हैं... ऐसे विशिष्ट नारीपात्र उनके हैं उनका प्रयत्न रहा है कि नारी अपना अस्तित्व एवम् स्वतंत्र व्यक्तित्व रक्षा के लिए रूढ़ सामाजिक कुव्यवस्था के विरूद्ध हमेशा विप्लवी भूमिका ले और प्रगतिशील बनें। न मात्र अर्थार्जन बल्कि हर तरह से होने वाला नारी का शोषण वे तिरस्करणीय मानते हैं। धर्म की आड़ लेकर नारी पर लादी गयी पतिव्रत्य की झूठी कल्पना, निश्ठा के नाम पर उसकी मानसिक और संचार विशयक बन्दी, सुरक्षा के नाम पर लादा गया एकान्तवास या फिर गृहस्थ जीवन आदि की तरफ भी उनका इशारा है। ये सभी इन्सानियत, मानवता के नाते वास्तविक बातें नहीं है ऐसा उनका कहना है।

भारतीय व्यवस्था में नारी उत्पीड़ित एवं शोषित है। उसकी निर्णय शक्ति उसका

आचार स्वातंत्र्य, विचार स्वातंत्र्य निर्णयस्वातंत्र्य, उसकी सुरक्षा इन सभी पर जो पाबन्दियां हैं उनका धरातल या तो पुरूष का थोपा हुआ या धर्म की अन्धरूढ़ियों सामन्ती पारम्परिक विचारों का थोपा हुआ है। इन सबसे मुक्ति का एहसास स्वातंत्र्य की संवेदना नारी को मानव होने का सार्थक अभिमान प्रदान करती है तभी तो मानवता संवेद्य होने के नाते यशपाल ऐसे पात्रों का आयोजन करते हैं जो चाहे राजकुलीन शोषित सर्वहारा वर्ग के साधारण, किसान, मजदूर दास, अशिक्षित शासित पात्रों का आयोजन करते हैं।

'झूठा–सच' की तारा हो या कनक पुरूष के वर्चस्व को उखाड़कर फेंक देने का प्रयास करती है। पारम्पारिक रूढ़ियों की शृंखलाओं, पुरातन, क्रूर, नैतिक धारणाओं को और पुरूष प्रधान समाज से लादे गए अन्धविश्वासों को तोड़ देना उनका प्रयत्न रहता है विप्लवी रूप धारण कर वे अपने शारीरिक, मानसिक, सामाजिक, आर्थिक शोषण के विरूद्ध संघर्ष करती हैं। ऐसे संघर्षशील स्वभाव उन्हें अच्छा लगता था। उनके स्त्रीत्व के बारे में उदात्त विचार उनके पात्रों द्वारा प्रकट हुए है। जयदेव पुरी उर्मिला के विवाह की बात चलने पर सोचता है, ''मेरे लिए विवाह का मतलब केवल शारीरिक सम्बन्ध नहीं है।'' शारीरिक सम्बन्धों के ऊपर ही पति–पत्नी बन जाने का और तारा की उदण्डता पर शारीरिक दण्ड देने वाले सोमराज को तारा के रोकने पर यशपाल लिखते हैं, ''तारा ने आत्मरक्षा और आत्मसम्मान की रक्षा के लिए हाथ–पावँ से यथा–शक्ति काम लिया। तारा का उसके प्रति उसके सम्मुख पूर्ण आत्मसमर्पण न कर देना ही उसका घोर अपमान था।''

जयदेवपुरी पत्रकार होने के नाते प्रगल्भ बुद्धि का है परिस्थितियों की चोटें सहते हुए उसकी विवेचक बुद्धि अधिक सतर्क बन गयी है। कार्य कारण भाव की विवेचना करने की पुरूष की मूलभूल प्रवृत्ति का निर्देश यशपाल ने यहां कर एक स्वभाव विशेष की मिसाल तथा सद्विवेक बुद्धि का उदाहरण प्रस्तुत किया है। कनक मिलने की असम्भावना पर वह सोचता है, ''कनक जैसी अभिजात वर्ग की पत्नी को वर्तमान अवस्था में रखना क्या उसके अपने सम्मान के अनुकूल होगा? फूलों को सजाने के लिए फूलदान ना हो तो फूलों को तोड़कर लाया ही क्यों जाये?'' यशपाल के यहां आयोजित शब्द 'उसके अपने सम्मान' विशेष महत्व रखते हैं उनकी मानवता की संवेद्य विचारधारा यहां प्रकट हुई है। मातृत्व को यशपाल वंदनीय मानते हैं। नारी के हदय की महन्मंगल प्रेरणा

मातृत्व के साथ अधिक आभामय बन जाती है। माता न होने का दुख इसलिए प्रभा तारा से बताती है।''

उपन्यास के दूसरे भाग 'देश का भविष्य' में भी नारी के विद्रोही रूप के दर्शन होते हैं। डॉ. प्राणनाथ के सामाजिक कार्य में उत्कृष्ट संगिनी बनने के लिए तारा उनसे विवाह करती है परन्तु उसकी सहेलियां जिनके साथ सेवा दल का काम करते समय उसकी पहचान हुई थी उसमें श्यामा, प्रभा, बन्ती... सभी ऐसा निर्णय न लेकर अपनी जगह पर बन्धित रहकर दु:ख ही सहती है... समाज रीति के विरूद्ध जाने का साहस नहीं कर पाती। जितना हो सके जुल्मों का प्रतिकार करती है या फिर आत्महत्या का मार्ग खोजती है। स्त्री को आत्मनिर्भर बनाने के कार्य का श्यामा विरोध नही करती परन्तु उसी स्वतंत्र ख्यालों की स्त्री पर पत्नी बनने के बाद मानसिक या शारीरिक अत्याचार करना उसे अमान्य है। अपनी हृदय की भड़ास तारा के साथ बतियाते हुए वह उगल देती है। ''स्त्री को बांधकर रखना है तो उसका व्यक्तित्व जगाने उसे आत्मनिर्भरता की बातें लिखाने की जरुरत ही क्या थी।'' पुरुष पर अधिकार जताने की बात तो दूर रही, समाज से स्वीकृत हो जाने की बात में भी पुरूष प्रधानता अपनी हीनता मानती है तारा भूली नहीं है कि शरणार्थी कैम्प में अत्याचार पीड़ित रावण के पास रहकर भी सुरक्षित रुप में राम के पास सीता के पहुंच जाने का दृष्टांत देकर अपने आगमन का भी अपने घरवाले स्वागत करेंगे बुरा नही मानेंगे इसका विश्वास दिलाती है। जातीय दंगों में विभाजन के समय भगाई गयी नारियां में से वह एक है। परन्तु दुर्गा उसका यह भ्रम तोड़ देती है यह कहकर कि ''घर से एक बार निकली दर–दर रूसवार हुई तीमी (अबला) को फिर कौन रखता है? घर से निकली तीमी और डाल से टूटा फल उनका फिर मेल क्या? इनके साथ होता भी ऐसा ही है कठोर वास्तविकता का परिचय पात्रों द्वारा पाठकों को कराकर मनुष्यता की संवेदना उद्वेलित करना यशपाल सहजता से करते हैं तारा की सहेली प्रभा अपने अविवाहित रह जाने की निराशा व्यक्त करती है, ''किसी ने अपनी समझकर कोई अधिकार नहीं जताया, न कभी किसी के सामने मान किया, न किसी के सामने रोयी... कभी किसी के लिए प्रतीक्षा नहीं की। मेरा नारीत्व तो केवल धूप में सूखकर ही समाप्त हो गया।'' जिसके मन में मानवता का अंशमात्र हो वह पाठक प्रभा के कथन पर अन्तर्मुख हो जाता है। इसी निराशा से ग्रस्त शिवानी जब तारा से मिलती है, अपना दुखड़ा रोती है तब

तारा को प्रभा की तुलना में शिवानी की जिन्दगी असहय, दुर्दम्य, अपमानित सी लगती है शिवानी अमीर सेठानी है घर की मालकिन है, बच्चों की माता है, बंगला, कोठी, नौकरी–चाकर, लाखों के जेवर सामाजिक स्तरीय स्थिति और आदर भी है परन्तु पति से जब–तब पिटती रहती है। ''स्त्री का जीवन मर्दों के जुल्मों का शिकार होने के सिवा और क्या है?''

समय की चपेट तारा के व्यक्तित्व को निखारती है साथ ही डॉ. प्राणनाथ की पत्नी बन तारा स्वाभिमान से जीना सीख जाती है। लेखक जहां तारा के माध्यम से नारी के सफल वैवाहिक जीवन का चित्रण करता है वहीं कनक और जयपुरी के माध्यम से विघटित हुए वैवाहिक जीवन का भी उल्लेख करता है। लेखक के विचारों से पाठक वर्ग यह जान जाता है कि यशपाल आपसी समझ–बूझ वाले वैवाहिक बन्धनों को बनाए रखने की प्राथमिकता देते हैं। जिन वैवाहिक सम्बन्धों में नारी उन्हें पिसती या प्रताडित दिखाई देती है उन वैवाहिक सम्बन्धों से वे नारी को निजात दिलाते दिखाई देते हैं उदाहरणतः कनक! जयदेव की प्रताड़ित जहां तक हो सके कनक सहती है परन्तु असहनीय होने पर वह जयदेव से तलाक ले लेती है। और मि. गिल से विवाह कर सुखी जीवन व्यतीत करती है।

कनक आधुनिक स्वतंत्र विचारों की लड़की है। वह पुरी को हृदय से प्यार करती है। पुरी को उर्मिला के साथ एक ही कमरे में पाकर भी वह उसके साथ विवाह कर लेती है। विवाहोपरांत उसे मालूम पड़ता है कि दोनों के विचारों में ज़मीन–आसमान का अन्तर है। घर में सास भी बहू के प्रति विरक्त है। कनक का गृहस्थ जीवन असफल सिद्ध होता है। कनक इस विवाह के लिए पश्चाताप करती है। पुरी से किसी–न–किसी बात पर हर रोज़ उसका झगड़ा हो ही जाया करता था। परिणामस्वरूप वह पुरी से सम्बन्ध–विच्छेद की बात सोचती है। वह गिल (पुरी का मित्र) के व्यक्तित्व तथा विचारों से प्रभावित होकर पुरी से सम्बन्ध–विच्छेद करके गिल से नाता जोड़ लेती है। अपनी लड़की तथा गिल के साथ सुखी जीवन व्यतीत करती है।

कनक नारी स्वतंत्रता की प्रतीक है। वह अपने आत्म सम्मान पर होने वाले प्रहारों को नहीं सह सकी और अपने आत्म–निर्णय से जयदेव पुरी से सम्बन्ध–विच्छेद कर लेती है। कनक के इस व्यवहार को उद्‌घाटित करने के संदर्भ में स्वयं लेखक का

कहना है–'' मैंने पहले कनक को निर्भय चित्रित किया और फिर उसकी पृष्ठभूमि में यह दिखाया है कि गृहस्थी की वर्तमान परिस्थितियों में पति के चुनने में भूल हो जाने पर नारी के सम्मुख कैसी समस्या आ सकती है और उस परिस्थिति में सचेत आत्म सम्मान युक्त नारी की क्या भावना होगी?

3.3.4 प्रगतिशील नारी

यशपाल ने नारी के सामाजिक जीवन को प्रगतिशील दृष्टि से चित्रित किया है। कनक और पूरी का पति–पत्नी के रूप में रहना, पुरी के अत्याचारों से पीड़ित होकर उसे छोड़ना व फिर गिल को आत्मसमर्पण कर देना इसी के उदाहरण हैं। लेखक विधिवत विवाह को उतना महत्व नहीं देता जितना मन के मन से साम्य हो इसलिए उर्मिला–पुरी, रतन व शीलो बिना विवाह कर के पति–पत्नी रूप में रहते हैं। लेखक ने नारी पात्रों के चरित्रांकन में 'आधुनिकता' को महत्व दिया है और इस दृष्टि से जागरूक नारी का परिचय साम्यावादी विचारों के पुरूष से करवा कर अपनी समाजवादी चेतना का प्रमाण दिया है।

पहले भाग में स्त्रियों की दिनचर्या, जीवन और रूढ़िगत सोच को सदियों की मानसिकता माना जा सकता है। किन्तु युवा पीढ़ी की लड़कियों का स्कूल कॉलेज जाना तथा राष्ट्रीय आंदोलन के दौर में कॉलेज में लड़के लड़कियों की परस्पर मित्रता एवम् विचार विमर्श तथा विभिन्न आंदोलनों में भागीदारी उनके जीवन के परिवर्तन को सूचित करते हैं। विभाजन के दौर में साम्प्रदायिक विद्वेश की सर्वाधिक शिकार स्त्री रही है। उसके देह शोषण में पाशविकता अट्टहास करती है– वहां शिक्षित–अशिक्षित, उच्चा–निम्न का कोई भेद नही है। उपन्यास की केन्द्रीय पात्र तारा पिता, भाई द्वारा उपेक्षित होकर पति द्वारा भी प्रताड़ित होती है और साम्प्रदायिकता की आग में अमानवीय गुंडों द्वारा भी शोषित है किन्तु इसी आग और शोषण की विभीषिका में से उसका एक स्वाभिमानी और आत्मविष्वासी व्यक्तित्व उभरता है। नितांत एकाकी, अजनबियों के बीच उसकी शिक्षा उसे संबल देती है और तब वह आत्मीय जनों को निर्ममतापूर्वक अपने जीवन से अलग कर देती है। सदियों से हाशिये पर जीने वाली नारी का यह रूप कतई अस्वभाविक नहीं है। कई बार तो ऐसा प्रतीत होता है कि 'झूठा–सच' के ये नारी पात्र अपने समय में बंधे रहकर भी समय से आगे निकल गए हैं। अमिता जोशी का मानना है कि 'यशपाल की नयी नैतिकता स्त्री की गुलामी की

जंज़ीरों को तोड़ने उसे बंधनो से मुक्त करने और पुरूष के समकक्ष लाने के लिये थी। इसलिए उनके सेक्स वर्जनाओं को बनाये रखने का कोई मतलब नहीं था। बल्कि वे सबसे पहले उन्हें ही ध्वस्त कर रहे थे, क्योंकि सेक्स वर्जनाओं काफी हद तक अन्य वर्जनाओं का कारण बनती हैं, जैसे कि सेक्स की कुंठा मनुष्य के अन्दर अन्य तमाम कुंठाओं और विकारों को जन्म देती है।

तारा की तर्क शक्ति और सोच का पूरा लाभ उसे बहुत बाद में मिलता है। घर से बेघर होकर वह जब दिल्ली में शरणार्थी शिविर में जाती है तब उसकी साथिन का बलिदान उसको नयी दिशा देता है। उपन्यास में कनक का जीवन थोड़ा अलग गति से चलता है। बड़े और प्रतिष्ठित परिवार की कनक सभी सुविधाओं से युक्त होकर भी जयदेवपुरी की दयनीय आर्थिक स्थिति को जानते हुए भी उससे एकनिष्ठ प्रेम करती है और सारी बाधाओं को पारकर उससे विवाह करती है किन्तु विभाजन के बाद पुरी की आर्थिक और राजनैतिक महत्वकांक्षाओं के बढ़ते विस्तार में उसकी संवेदनाएं मरने लगती हैं। और पुरी के चरित्र की दोहरी नीति से दंशित होकर न केवल वह उससे तालाक ले लेती है बल्कि पुनर्विवाह भी कर लेती है। आजादी के तुरन्त बाद के भारतीय समाज में युवा पीढ़ी की नारी ने अपने जीवन के फैसले खुद लेने शुरू कर दिए थे। यशपाल ने लिखा है– जो लड़कियां जीविका कमाने का साहस कर रही हैं, वे अपना भाग्य दूसरों के हाथ में क्यों दे दें? अब तो दिल्ली में लड़कियां सभी जगह काम करती दिखाई दे रही हैं... विभाजन से पहले मैं नौकरी कर लेने की कल्पना करती थी, तो खास साहस की जरूरत पड़ती थी पर अब तो साधारण बात है। यशपाल इसका कारण विभाजन को मानते हैं 'विभाजन से बहुत ध्वंस हुआ परन्तु समाज को जकड़े दबाये रखने वाली मजबूत परतें भी ऐसे टूट गयी हैं, जैसे जेल में बन्द लोगों को भूड़ोल में जेल की दिवारों के गिरने से लोगों को चोटें तो लगें, परन्तु बन्द लोग स्वतंत्र हो जाये।

उस समय की आत्म निर्भर लड़कियों में संयुक्त परिवार की अपेक्षा एकाकी परिवार के प्रति आकर्षण बढ़ने लगा था, जहां पति–पत्नी दोनों कमाते हों और आवश्यकता हो तो पत्नी खाना बना ले और पति बर्तन धो दे। सामाजिक आचरणों, रूढ़ियों और बंधनों में घुटने वाली नारी ने आर्थिक रूप से आत्मनिर्भर होते ही जैसे समानता का डंका बजा दिया हो।

तारा की चचेरी बहन शीलो की आज़ादी एक दूसरे स्तर पर साहसिक है। वह पति को छोड़कर अपने प्रेमी के पास चली जाती है। उसका बच्चा उसके प्रेमी का है। विवाहेत्तर संबंधों में बंधन नहीं, बल्कि मन की खुशी महत्वपूर्ण है।

यशपाल ने चार पांच साल के बदले माहौल में ही सारी रूढ़ियों और अवधारणाओं को नये रूप में देख लिया है। आजकल की लड़कियां हमारे ज़माने की लड़कियां तो है नहीं कि अपने ब्याह–शादी की बात होती देखती थी तो शरम से उठकर चली जाती थी अब तो सामने से लड़ती हैं। कहती हैं कि ब्याह से आराम नहीं मिलता तो ब्याह क्यों करें?

उन सारी दलीलों में यशपाल अपने समय से कहीं आगे दिखलाई देते हैं। इन स्त्रियों के जीवन के निर्णयों में भी वे काफी बोल्ड हैं।

विभाजन ने जो उलट पुलट किया था, उसमें तारा की बहन उमा का विवाह वकील नैयर के भाई राजेन्द्र नैयर और नरोत्तम अग्रवाल का विवाह कनक की बहन कंचन दत्ता से हो जाता है। यहां न केवल आर्थिक स्थितियां और स्तर बदले हैं, बल्कि अन्तर्जातीय और अन्तर्वर्गीय स्वीकृतियां भी हैं।

स्त्री के स्वातंत्र्य का समर्थन करने वालों की तरह स्त्री के अबला होने का, उसके लिए किसी न किसी का आश्रय लेकर रहना ही उचित मानने वाले पात्र भी यशपाल ने निर्मित किए है। स्त्री की आत्मनिर्भरता उन्हें जंचती नहीं है। ऐसे प्रतियोगियों का प्रतिनिधित्व कान्ता करती है, वह सोचती है, ''सभी अपने माता–पिता की बुद्धि को अपनी ही वस्तु समझते हैं'' उसी तरह जयदेव पुरी के साथ विवाह होने में कई रूकावटें उत्पन्न हो जाने पर कनक को लगता है, ''उसका लड़की होना, स्त्री होना ही सबसे बड़ी आपत्ति थी।'' ठीक ऐसा ही विचार तारा व्यक्त करती है, समाज के साथ समाज की बुरी नज़रों के साथ–साथ समाज के फिज़ूल सवाल पूछे जाने की प्रवृत्ति के कारण तारा को नौकरी नही मिल रही है, तब ऊबकर स्वयं से तारा सोचती है, औरत होना पाप है।'' कनक का सहजोद्‌गार भी यह मन्तव्य प्रस्तुत करता है, ''मिसेज पन्त के कमरे में बैठी कनक सोचती है, ''सचमुच नारी रक्षक पुरूष के बिना अपूर्ण और असहाय है।'' कॉलेज की शिक्षा ले रही तारा का आत्मसम्मान सहपाठियों तथा फैडरेशन के साथियों के संग उठने बैठने में बढ़ता रहता है, खाने–पीने के मिथ्या संस्कारों से मुक्ति का एहसास उसे होने था। ऐसा लिखकर यशपाल

आगे लिखते हैं, ''वह आत्मसम्मान अनुभव करने लगी।

यशपाल के उपन्यासों में नारी का एक रूप वह भी है जो जागृत होकर पैरों पर खड़ा हो रहा है। वह अपने अधिकारों के लिए सजग है। स्वतन्त्रता के पश्चात पुरूषों के समान ही नारी भी कार्य क्षेत्र में उतरी है। तारा अंडर सेक्रेटरी के पद पर कार्य करती दिखाई पड़ती है। कनक, मिसेज तारा, अग्रवाल, डॉ. श्यामा के रूप में नारी का आधुनिक स्वछंद और स्वेच्छाचारी रूप सामने आया है।

3.4 निष्कर्ष

यशपाल के समूचे साहित्य में नारी समाज का अविभाज्य अंग होते हुए भी अधिकार और सत्ता के आधार पर सदा हाशिए पर ही रही है।

यशपाल ने अपने समस्त साहित्य में नारी को उसकी विभिन्न स्थितियों, वर्गों, श्रेणियों में अंकित किया है। यशपाल के सामाजिक यथार्थ के परिप्रेक्ष्य में 'झूठा–सच' उपन्यास में नारी सामंती–पूंजीवादी दबावों को झेलते हुए भी उनसे बाहर निकल कर एक स्वतंत्र अस्तित्व के लिए निरंतर प्रयासरत है। डॉ. राम विलास शर्मा को शिकायत है कि यशपाल के उपन्यास नारी की पराधीनता के सवाल को यथार्थवादी ढंग से छूते ही नहीं। लेकिन 'झूठा–सच' के संदर्भ में यह कहा जा सकता है कि इतिहास, समाज, संस्कृति परम्परा रूढ़ि और इन्सानी जुनून का सच नारी को सबसे अधिक दबाता है।

विभाजन के समय जो कुछ घटित हुआ, जो कुछ घटता रहा है और जो मानसिकता रही है, वहां सदा नारी दलितों के साथ शोषित उत्पीड़ित और उपेक्षित रही है। समय के साथ जो परिवर्तन हुए सामाजिक, मानसिक और भौतिक उन सबको यशपाल ने यथार्थवादी स्वरूप में एवम् द्वंद्वात्मक स्वरूप में 'झूठा सच' में प्रस्तुत किया है। 'झूठा–सच' में नारी की त्रासदी के संदर्भ में डॉ. रामविलास शर्मा का यह मत उल्लेखनीय है। वर्तमान समाज में नारी की पराधीनता, उसकी घुटन और अपमान, व्यक्तिगत सम्पति की पुरूष संज्ञात्मक समाज में नारी ने समस्त उत्पीड़न के बावजूद अपने अस्तित्व के लिए संघर्ष किया है और आर्थिक रूप से आत्मनिर्भरता की तरफ कदम बढाये हैं। शिक्षा ने उसमें आत्मविष्वास भरा है।

3.5 अभ्यासार्थ प्रश्न

प्र.1 'झूठा–सच' उपन्यास में नारी की त्रासदी का चित्रण हुआ है। सोदाहरण स्पष्ट करें।

———————————————————————————————————

———————————————————————————————————

———————————————————————————————————

———————————————————————————————————

———————————————————————————————————

प्र.2 'झूठा–सच' में यशपाल ने नारी का जो चित्रण किया है। उस पर विस्तार पूर्वक चर्चा करें।

———————————————————————————————————

———————————————————————————————————

———————————————————————————————————

———————————————————————————————————

———————————————————————————————————

प्र.3 'झूठा–सच' के संदर्भ में पुरूष द्वारा प्रताड़ित नारी के रूप को स्पष्ट करें।

———————————————————————————————————

———————————————————————————————————

———————————————————————————————————

———————————————————————————————————

———————————————————————————————————

प्र.4 'झूठा–सच' उपन्यास में चित्रित साम्प्रदायिकता की आग में झुलसली नारी की

स्थिति को स्पष्ट कीजिए।

प्र.5 'झूठा–सच' में चित्रित नारी के प्रगतिशील रूप पर चर्चा करें।

प्र.6 नारी अपने साथ हो रहे शोषण का विरोद्ध भी कर रही है, 'झूठा–सच' में यह बात कहां तक सत्य है सोदाहरण स्पष्ट कीजिए।

3.6 पठनीय पुस्तकें

1. झूठा सच – भाग–1, भाग–2 – यशपाल
2. यशपाल का औपन्यासिक–शिल्प – प्रो0 प्रवीण नायक

3. यशपाल के उपन्यासों का मूल्यांकन – डॉ0 सुदर्शन मल्होत्रा

4. यशपाल का उपन्यास साहित्य – डॉ0 सरोज बजाज

5. यशपाल के उपन्यास – डॉ0 प्रमोद पाटिल

6. भारत–विभाजन और हिन्दी उपन्यास – डॉ0 अंजु देशवाल

7. झूठा सच – यशपाल (छात्रोपयोगी संस्कार)

8. मेरा तेरा उसकी बात – यशपाल

9. यशपाल के उपन्यास : सामाजिक कथ्य – चमनलाल गुप्ता

10. यशपाल साहित्य में काम चेतना – डॉ0 शकुंतला चहवान

11. आठवें दशक की हिन्दी कहानी में सामाजिक बोध – डॉ0 नामदेव नान्देडी

12. यशपाल – अभिनन्दन ग्रन्थ – श्री महेन्द्र

13. यशपाल का कथा साहित्य – प्रकाशचन्द्र मिश्रा

14. मार्क्सवाद और उपन्यासकार यशपाल – डॉ0 पारस नाथ मिश्रा

****

M.A. HINDI	UNIT-I	Lesson No. 4
COURSE CODE : HIN-402		Semester-IV

'झूठा सच' के प्रमुख पात्र

4.0 भूमिका

4.1 उद्देश्य

4.2 प्रस्तावना

4.3 झूठा सच के प्रमुख पात्र

4.3.1 जयदेव पुरी

4.3.2 डॉ. प्राण नाथ

4.3.3 सोमराज

4.3.4 पंडित गिरधारीलाल

4.3.5 महेन्द्र नैयर

4.3.6 तारा

4.3.7 कनक

4.3.8 उर्मिला

4.4 निष्कर्ष

4.5 कठिन शब्द

4.6 अभ्यासार्थ प्रश्न

4.7 पठनीय पुस्तकें

4.1 उद्देश्य

प्रस्तुत अध्याय के अध्ययोनपरांत आप जानेंगे कि 'झूठा सच' उपन्यास में पात्रों की संख्या अधिक है किन्तु उससे उपन्यास बोझिल नहीं बनता अपितु लेखक ने इन पात्रों को घटनाओं के साथ ऐसा मिलाया है कि इनमें से किसी का भी महत्व कम नहीं होता। हर एक पात्र उपन्यास में अपनी महत्वपूर्ण भूमिका निभाता है। यह भी जानेंगे कि उपन्यास के पात्र सजीव, चैतन्य, कर्मठ, गतिशील, जागरुक, जुझारू और महत्वाकांक्षी हैं। वे विषम परिस्थितियों से टक्कर लेते हैं, संघर्ष करते हैं और आगे बढ़ते हैं।

4.2 प्रस्तावना

'झूठा सच' का आधारफलक महाकाव्य के समान अत्यन्त विस्तृत होने के कारण इसमें पात्रों की अधिकता का अवकाश था। साहित्यकार ने इस अवसर का पूर्ण लाभ उठाया है और प्रायः तीन दर्जन पात्रों का सफल निर्माण किया है। प्रेमचन्द के 'रंगभूमि' को छोड़कर हिन्दी साहित्य में शायद ही कोई उपन्यास हो जिसमें पात्रों की इतनी अधिक संख्या हो और लेखक ने उनका संतुलित निर्वाह किया हो। 'झूठा सच' के प्रायः सभी पात्र किसी न किसी वर्ग के प्रतिनिधि हैं। कथा में प्रत्येक का अपना महत्व है, वे निरर्थक प्रतीत नहीं होते।

4.3 'झूठा सच' के प्रमुख पात्र

'झूठा सच' के पात्रों को घटनाओं से विलग करके नहीं देखा जा सकता। घटना प्रधान उपन्यास होने के कारण पात्रों का चरित्र घटनाओं के घातों–प्रतिघातों द्वारा ही आगे बढ़ता है। चरित्र घटनाओं के बीच ही स्फुटित तथा पल्लवित हुए हैं। 'झूठा सच' के पात्रों के चरित्र–विकास में चरित्र–चित्रण की तीनों पद्धतियाँ अपनाई गई हैं, अर्थात् कहीं तो पात्र स्वयं ही अपने विषय में कुछ सोचता है जिसे अन्तर्द्वन्द्व अथवा आन्तरिक संघर्ष एवं स्वगत–चिन्तन कहा जा सकता है, दूसरी कहीं पात्रों के कार्य–कलाप भी उसके चरित्र का परिचय देने में सहायक हैं। तीसरी कहीं–कहीं पर दूसरे व्यक्ति द्वारा किसी पात्र विशेष के विषय में कहलवाया गया है। इस उपन्यास में उक्त तीनों ही पद्धतियों का सफल प्रयोग हुआ है। परन्तु इस आलेख में प्रमुख पात्रों का विश्लेषण कर लेना ही उपयोगी होगा।

4.3.1 जयदेव पुरी का व्यक्तित्व

जयदेव पुरी मास्टर रामलुभाया का पुत्र था। एक निर्धन अध्यापक का पुत्र होने के कारण वह भी आर्थिक कठिनाइयों का सामना करने वाला युवक था। सन् 1941 में वह एम.ए. के दूसरे वर्ष में पढ़ रहा था। युद्ध विरोधी आन्दोलन में भाग लेने के कारण वह जेल भेज दिया गया था। ''उसका हृदय युद्धकाल में अपने परिवार की आर्थिक दशा से विदीर्ण था परन्तु वह देश की स्वतंत्रता के लिए बलिदान से मुँह न मोड़ सका। जेल जाते समय जयदेव पुरी को विश्वास था कि वह शीघ्र ही स्वतंत्र देश में जेल से स्वतंत्र होगा। उस समय देश के दुःखों के साथ उसके अपने दुःख भी दूर हो जायेंगे।''

मुलतान जेल में रहकर पुरी ने अपना समय पढ़ने लिखने में व्यतीत किया। जेल जाने से पूर्व वह प्रथम श्रेणी में एम.ए. कर किसी कॉलेज में प्रोफेसर होने की मधुर कामना किये बैठा था। साहित्य के क्षेत्र में भी वह प्रसिद्ध होने का इच्छुक था। विद्यार्थी काल में ही उसकी कुछ रचनाएँ, विशेष रूप से कहानियाँ, पत्र–पत्रिकाओं में प्रकाशित होने लगी थीं। जेल में पुरी अपना समय व्यर्थ की बातों में नष्ट न कर अध्ययन करता रहता। उसने अपनी 13 कहानियों का एक संग्रह भी तैयार कर लिया था। 1945 में वह जेल से छूटा। वह अंग्रेजों की विजय के उपलक्ष्य में जेल से छूटा था। देश को स्वतंत्रता नहीं मिली किन्तु जेल से मुक्ति पाकर जयदेव को संतोष और उत्साह का ही अनुभव हुआ।

जेल से छूटने पर उसने अपने घर की दयनीय दशा देखी। घर की आर्थिक स्थिति ठीक न थी। महँगाई और कंट्रोल ने अलग दुःखी कर रखा था। चीनी खरीदने दो घण्टे में खड़ा होना उसे बुरा लगा। वह देश की स्वतंत्रता के लिए जूझने वाला युवक आज सेर भर चीनी के लिए भीड़ के धक्कम–धक्कों में कैसे खड़ा रह सकता था?

जयदेव ने बचपन से निर्धनता देखी थी। जेल से लौटकर दारिद्रय का वह भयंकर रूप उसे असह्य लगा। उसने आगे पढ़ने का विचार त्याग दिया। राजनीतिक अपराध में जेल जाने से उसे सरकारी नौकरी मिलना भी संभव न था। वह अपने पाँव पर खड़े होने की चिन्ता करने लगा।

जयदेव पुरी बुद्धि और प्रतिभा पाकर भी कद में कुछ छोटा था। चौदह–पन्द्रह की आयु तक भी वह आधे टिकट में सफर करने का लाभ उठा सकता था।

उसका चेहरा अब भी लड़कों की तरह कोमल था। अपनी बहिन (तारा) से वह आध इंच से अधिक ऊँचा न हो सका था। बहिन भाई साथ चलते तो बराबर कद में लगते। पुरी को सत्रह–अठारह की आयु में अपने कद की न्यूनता की चेतना हुई। इस हीनता की भावना से बचने के लिए वह कन्धे ताने और रीढ़ अकड़ाकर चला करता था। यह अभ्यास उसकी प्रकृति बन गया था। देखने में वह अपनी आयु से कम लगता था। लड़का ही न समझ लिया जाने के लिए अपने होठों पर लकीर सी, छटी हुई मूँछे भी रख ली थीं।

पुरी में चारित्रिक दुर्बलता नहीं थी उर्मिला की ट्यूशन करते समय वह अपने को संयत रखता था। उसके हाव–भाव और कटाक्षों से बचकर रहता। उसके कारण उर्मिला की माँ ने जब उर्मिला को बुरी तरह पीटा तो वह आत्मग्लानि के कारण पढ़ाना छोड़कर अपने घर चला आया था। उर्मिला के प्रति उसका यह व्यवहार उसकी स्वयं की परिस्थिति भी थी। वह उर्मिला का वेतन भोगी टयूटर था। अतः उसकी ओर आकर्षित होकर भी उसे प्राप्त करने का दुस्साहस उसमें नहीं था। घर लौटने पर वह मौन रहकर सोचा करता। ''मन में उर्मिला की याद प्रतिक्षण बनी रहती, क्या यह मेरी कामपुरूषता नहीं थी? उसका प्रेम कितना तन्मय है?... नौकर होकर क्या प्रेम करता? ...मेरे लिये विवाह का मतलब केवल शारीरिक सम्बन्ध नहीं है। वह लड़की तो प्रबल शारीरिक आकर्षण के अतिरिक्त और कुछ है नहीं। कैसे गले पड़ गयी?''

अपनी इस भावना के साथ वह अपने सफल जीवन की कल्पना में अपने बौद्धिक कलात्मक जीवन की उचित संगिनी के विषय में की हुई कल्पना को याद करने लगता। उर्मिला के सम्बन्ध को वह दलदल में फँसना समझता था।

लेखक और पत्रकार पुरी :– 'परोकार' पत्र में प्रकाशित पुरी की कहानी के सम्पादक की टिप्पणी का भाव था, ''हमारे पत्र को गौरव है कि हम उदीयमान कलाकारों में अग्रणी, मानव प्रकृति के अनुपम चित्रकार, कला शिल्पी श्री जयपुरी की कहानी अपने पाठकों के मनोविहार के लिए प्रस्तुत कर रहे हैं। जयपुरी नवयुवक है परन्तु उनकी कलात्मक प्रौढ़ता विश्व साहित्य को दैदीप्यमान कर रही है... आदि–आदि।''

कहानीकार के अतिरिक्त पुरी एक अच्छा अनुवादक भी था। उसने मुनब्बर प्रकाशन के एक उपन्यास को अनुवादित करने का कार्य किया जिससे उसका

कुछ खर्च चल सकता था किन्तु समस्या यह थी कि पत्र और प्रकाशन संस्थाओं वाले पुरी की आर्थिक स्थिति और आवश्यकताओं पर ध्यान न देकर अपनी सुविधा देखते थे। पुरी एक अच्छा अध्यापक भी था। वह उर्मिला के बाद कनक को हिन्दी पढ़ाने लगा था। इस पढ़ाने में वह कनक की ओर आकर्षित भी हो गया। कनक उसे अपने हृदय के बहुत समीप लगी। कनक के पिता उसकी प्रशंसा करते थे किन्तु उसे अपने जमाई के रूप में देखने को तत्पर न थे।

पुरी ने अपनी रूचि तथा आर्थिक स्थिति ठीक करने के कारण 'पैरोकार' में उप–सम्पादक का कार्यभार सँभाल लिया था। वह जी तोड़ परिश्रम करता और अच्छे–से–अच्छे सम्पादकीय लिखता था। उनके लेखों की बड़ी प्रशंसा होती किन्तु कांग्रेस के विषय में एक लेख लिखने पर प्रधान सम्पादक 'कशिश' जी से उसकी कहा–सुनी हो गयी। पुरी को 'पैरोकार' की नौकरी छोड़नी पड़ी। वह अपने सिद्धान्त और आदर्श नहीं छोड़ सकता था, नौकरी छोड़ सकता था। 'पैरोकार' की नौकरी छूटने से पुरी फिर आर्थिक संकट का अनुभव करने लगा। उसमें काम करने की शक्ति थी और काम करने का उत्साह भी था। काम करने का अवसर उससे छीन लिया गया था। वह कभी–कभी लेख कहानी आदि पत्रों में भेजता रहता। उसकी रचनाओं की प्रशंसा तो बहुत होती किन्तु परिश्रम बहुत कम मिलता। वह मन ही मन कोई नौकरी करने की सोचता किन्तु नौकरी भी तो कोई अच्छी उसे नहीं मिलती थी। रुपयों के लिए वह एक प्रोफेसर शाह की इतिहास की तीन अंग्रेजी पुस्तकों का अनुवाद उर्दू के तीन सौ पृष्ठों में करने को तैयार हो गया। अपनी इच्छा के विरुद्ध उसे पुस्तक पर प्रोफेसर शाह का नाम देना स्वीकार करना पड़ा।

सूद के सहयोग से आगे चलकर उसने 'नाजिर' पत्र का संचालन और प्रकाशन किया। इस पत्र की लोकप्रियता उसकी लेखनी के बल पर ही बढ़ी थी।

स्वाभिमानी युवक :– गरीबी और संकटों में पड़कर भी पुरी ने आत्मसम्मान और स्वाभिमान की भावना नहीं छोड़ी थी। वह समाचार पत्रों में लेखक और कहानियाँ भेजता था किन्तु कम पारिश्रमिक मिलने अथवा कुछ पारिश्रमिक न मिलने पर भी वह किसी के आगे हाथ नहीं पसारता था। पं. गिरधारी लाल द्वारा दिए गये अनुवाद के कार्य को अपने ऊपर उनकी कृपा समझकर वह संकुचित हो गया था। 'पैरोकार' में तो वह दृढ़ता से अपने सिद्धान्तों का समर्थन करता

रहा। वह बोला, ''कम्यूनल डिस्टरबेंस की आग शान्त करने की अपील की है। मुझे कांग्रेस की पालिसी के मुताबिक यही मालूम हुआ।... मैंने फैक्ट्स की बिना पर लिखा है। ...मैंने घुटने टेक देने के लिए हरगिज नहीं लिखा। मैंने लीग की भी गलती बतायी है।'' और जब कशिश जी ने उससे कड़े शब्द कहे तो वह दृढ़ता से बोला, ''तुम कांग्रेस को धोखा दे रहे हो, मुल्क को धोखा दे रहे हो, अवाम को धोखा दे रहे हो। लानत है तुम्हारी नौकरी पर।''

पुरी में चारित्रिकता थी। वह असम्भ्यता और कुस्सित कृत्यों से अलग रहता था। उर्मिला ने उसे बहुत रिझाया, आकर्षित करना चाहा, अपने रूप की मादकता से प्रभावित करना चाहा किन्तु वह अविचलित रहा ''आकर्षक, चपल युवा लड़की से विनोद और खेल के अवसर की उपेक्षा कर देने के लिए पुरी को कम आत्म–दमन न करना पड़ता परन्तु पुरी को अपने पिता और अपने प्रति नारंग परिवार के विश्वास और आदर का भी ध्यान था।'' ''पुरी अपनी स्थिति के प्रति सचेत था फिर भी उर्मिला की आँखों में छलक आये रस में आँखें भरे बिना न रह पाता। ऐसा केवल उर्मिला के साथ बाजार जाने पर या बेजी की पीठ पीछे आँखें चार जो जाने पर ही होता। पढ़ाई के समय वह बिल्कुल गम्भीर रहता था।''

कनक के प्रति प्रेम की भावना उत्पन्न होने पर भी पुरी संयमित रहा। यद्यपि उसके युवा मन में रूप–लावण्य के प्रति आकर्षण होता ही रहता था किन्तु वह अपने भावुक मन को वश में रखना भी जानता था। कनक में उसने एक सौम्य और शान्त युवती का रूप देखा था। इसीलिए उसकी ओर वह आकर्षित हुआ था– ''पुरी ने कनक को दो सप्ताह ही पढ़ाया था कि संध्या समय ग्वाल मण्डी जाने के समय की प्रतीक्षा उसके मन में दिन भर बनी रहने लगी। उर्मिला के व्यवहार से पुरी के मन में लड़कियों के प्रति जो विरक्ति अनुभव हुई थी उसे कनक की प्रतिभा और संयमित सहज व्यवहार ने पुरी के मन से ऐसे दूर कर दिया जैसे मई–जून में झुलसे हुए मैदान की विरूपता को सावन–भादों की वर्षा दूर कर देती है। यह नहीं कि उससे पूर्व पुरी किसी लड़की के रूप–लावण्य के प्रति आकर्षित हुआ ही नहीं था परन्तु कनक के सामीप्य से वे ओछी स्मृतियाँ ऐसे धुल गई, जैसे सूर्योदय हो जाने पर ऊषा का धुँधलका लोप हो जाता है।''

एकान्त पाकर उसने कनक के सामने अपना पवित्र प्रेम प्रकट कर दिया उस

प्रेम में वासना अथवा छल नहीं था। उसने कनक को अपनी आर्थिक दशा बता दी थी।

परिवर्तनशील युवक :– आरम्भ में पुरी एक दृढ़, साहसी और कर्मठ युवक के रूप में दिखाई देता है। वह विभिन्न कठिनाइयों में पड़कर भी अपने आपको पतित नहीं होने देता। नैनीताल से लाहौर लौटते समय वह बड़ी कठिनाइयों का सामना करता है, अपने परिवार की खोज में लगा रहता है, मेहनत–मजदूरी तक करने लग जाता है। हमें आभास होता है कि पुरी के चरित्र में अच्छाइओं की ओर झुकाव है। किन्तु जब वह सूद जी के सम्पर्क में आता है तो उसका चरित्र स्वार्थ, लालच और झूठे मोह में बिगड़ने लगता है। लुधियाने में जब कनक ने उसे उर्मिला के साथ रहते देख लिया तो वह स्वयं को बचाने के लिए झूठ बोला। उसने अपने विषय में एक झूठी कहानी कनक को सुना दी... नैनीताल से आ रहा था तो लुधियाना से पहले गाड़ी पर हमला हो गया। सहारनपुर, अम्बाला से गाड़ी में मुसलमान ही मुसलमान मर गये थे। खून और कत्ल के लिए पागल लोग किसी को भी नहीं छोड़ना चाहते थे। मुझ पर भी कितने बर्छे मारे गये...।'' पुरी ने कनक के शरीर की सिहरन देखी और कहता गया, परन्तु डिब्बे के अंत में होने के कारण पीछे हटते लोगों के बीच में दब गया था। आक्रमणकारियों के बर्छे–भाले मुझ पर गिरे हुए शरीरों को ही बेध कर रह गये। लाशों के बोझ के नीचे से निकल पाना भी आसान नहीं था। सुध आने पर यही विश्वास नहीं हो पा रहा था कि जीवित हूँ। विश्वास था कि पागल नहीं हो गया हूँ।''

यहीं से पुरी के चरित्र में गिरावट दिखाई देती है। वह पग–पग पर स्वार्थ और छूठे मोह में फँसने लगा। उसने कनक से विवाह कर लिया किन्तु स्वभाव से ही चिड़चिड़ा और प्रवंचक बन गया। कनक ने उसके पत्र के प्रकाशन में बड़ी सहायता की किन्तु पुरी अब धन और राजनीतिक सम्मान पाने के चक्कर में था। विधानसभा का सदस्य होने पर उसमें और अधिक अहंकार तथा स्वार्थ की भावना भर गई थी। उसके इस कटु व्यवहार से ही कनक ने उसे त्याग दिया। वह असफल प्रेमी और परित्यक्त पति बनकर रह गया। उर्मिला ने भी उसकी ओर से मुँह फेर लिया था। उसने पुरी को अपना बनाया था, उस पर विश्वास किया था किन्तु पुरी ने जब उसे धोखा दिया तो उर्मिला उससे दूर हो गई। उसने किसी दूसरे व्यक्ति से विवाह कर लिया और पुरी से सदैव के लिए अलग

हो गई।

सोमराज की चरित्रहीनता के कारण पुरी उसे पसन्द नहीं करता था किन्तु फिर भी तारा के विरुद्ध उसका साथ देने को तैयार हो गया। अपने स्वार्थ में उसने सूद जी की हाँ में हाँ मिलायी। एक प्रकार से उसने अपना व्यक्तित्व ही समाप्त कर दिया। तारा के मामले में उसे हार खानी पड़ी। सूद जी चुनाव हार गये और पुरी अपना जीवन हार बैठा।

इस प्रकार पुरी के चरित्र का विश्लेषण करने के उपरान्तु पुरी के चरित्र को विकासशील, परिवर्तनशील, उतार चढ़ाव से युक्त और मानवीय तो कहा जा सकता है किन्तु वह नायकत्व के पद पर पहुँचते–पहुँचते गिर जाता है। वह सम्पूर्ण उपन्यास पर छाया हुआ है। वह अनेक घटनाओं को प्रभावित करता है और अनेक घटनाएँ उसे प्रभावित करती हैं, उपन्यास उसके चारों ओर घूमता रहता है किन्तु वह नायक फिर भी नहीं कहा जा सकता। अपनी चारित्रिक दुर्बलताओं, स्वार्थमय प्रवृत्ति और अवसरवादी भावनाओं से वह एक साधारण, हीन और व्यक्तित्व रहित जीव रह जाता है।

संक्षेप में पुरी अस्थिर विचारों का आदर्शवादी युवक है। वह बुद्धिमान होकर भी अत्यंत साधारण अथवा दुर्बल चरित्र का व्यक्ति है। प्रारम्भ में वह पाठक की सहानुभूति का पात्र बनता है, परन्तु उपन्यास जैसे–जैसे आगे बढ़ता है कनक के प्रति उसका व्यवहार देख पाठक उससे घृणा करने लगता है।

4.3.2 डॉ. प्राण नाथ

डॉ. प्राणनाथ को मास्टर रामलुभाया ने बचपन में आठ वर्षों तक पढ़ाया था। बाद में डॉ. प्राणनाथ आक्सफोर्ड से राष्ट्रीय अर्थशास्त्र में पीएच.डी. की उपाधि लेकर 1919 में लौटा था। 'ब्रिटिश इकानामिस्ट' में उसके लेख प्रकाशित होते रहते हैं। ''बड़े–बड़े ब्रिटिश अर्थशास्त्रियों ने उसे 'जीनियस' कहकर उसकी सूझ की, प्रसिद्ध अर्थशास्त्रियों 'टोरी' और 'डंकिन' आदि से तुलना की थी। पंजाब यूनिवर्सिटी ने उसे यूनिवर्सिटी में प्रोफेसर नियुक्त कर लिया था। डॉ. प्राण जयदेव से केवल छः सात वर्ष ही बड़ा था परन्तु जयदेव एम.ए. की तैयारी के लिए उसके लेक्चर सुनने जाता था। युद्ध काल में पंजाब के गवर्नर ने प्रोफेसर प्राण को आर्थिक विषयों के लिए सरकारी परामर्शदाता नियुक्त कर दिया था।''

उदार, सरल और विनम्र व्यक्ति :– डॉ. प्राणनाथ एक उदार हृदय वाला व्यक्ति है। वह विद्यार्थियों, राजनीतिक कार्यकर्त्ताओं तथा साधारण लोगों के प्रति उदार भाव रखता है। वह पुरी की आर्थिक रूप से मद्द करता है। उसकी बहिन तारा को अपने यहाँ बच्चे पढ़ाने के बहाने आर्थिक सहायता देता है, असद को सही परामर्श देता है। उच्च शिक्षा प्राप्त करने पर भी वह स्वभाव का सरल और व्यवहार में अति विनम्र है। अपने पूर्व गुरू मास्टर रामलुभाया के प्रति उसके हृदय में बड़ा सम्मान है। वह इंगलैंड से लौटने पर उनके घर प्रणाम करने और आशीर्वाद लेने जाता है। तारा के विवाह पर वह अपनी स्नेह–भेंट देने स्वयं जाता है। तारा के प्रति प्रेम–भाव रखकर भी उसे असद की ओर आकर्षित होते देखकर अपने मन पर अधिकार रखता है।

भावुक पुरुष :– वह भावुक अवश्य है किन्तु चरित्रहीन और कामुक नहीं। तारा की सहायता तारा के प्रति आकर्षण रखने के कारण भी करता है और अपनी उदारता के कारण भी। प्रेम के विषय में उसका स्पष्ट मत है– ''टु बी इन लव इज ए प्लेजेन्ट फीलिंग (प्रेम में होने की अनुभूति आनन्ददायक होती है) यू फील अलाइव (उससे उमंग अनुभव होती है)।''

वह तारा को स्नेहभरी आँखों से देखकर बोला, ''मुझे गलत न समझना। आशा है फिर भी मुलाकात होगी।'' उसके इस कथन में उसकी सरलता, भावुकता और विवशता प्रकट होती है। वह अपने मन में कुछ छिपाकर नहीं रखना चाहता। वह तारा से कह भी देता है, ''आई लाइक यू।'' तारा भी सोचती है– ''कितने भले आदमी हैं!''

राजनीतिक एवं आर्थिक ज्ञान :– डॉ. प्राणनाथ को गवर्नर ने अपना आर्थिक परामर्शदाता उसकी योग्यता के कारण ही तो बनाया था। वह एक श्रेष्ठ अर्थशास्त्री है। राजनीति का ज्ञान भी उसे पर्याप्त है। उसकी राजनीतिक विचारधाारा भी स्पष्ट और उदारवादी है। वह कूटनीतिक नहीं। असद से बातें करते हुए कहता है– ''गर्वनर भी जानता है कि यूनियनिस्ट मिनिस्ट्री के दिन लद गये।... यदि लीग और कांग्रेस आपस में नहीं लड़ेंगे तो सरकार के लिए इनमें से किसी एक को भी दबाना सम्भव नहीं है। जेंकिन्स तो कैबिनेट मिशन को दिखा देना चाहता है कि हिन्दुस्तानियों को शासन का अधिकार सौंपना व्यवहारिक नहीं है। अगर यह योजना सफल हो जाये तो अंग्रेज गवर्नर की

जरूरत ही नहीं रह जायेगी। ...ब्रिटेन में बैठे अंग्रेज तो अपनी स्थिति के कारण अपने आपको भारत का बोझ उठा सकने में असमर्थ समझने लगे हैं किन्तु हिन्दुस्तान में मौजूद अंग्रेज–व्यूरोक्रेसी अन्तरराष्ट्रीय स्थिति और ब्रिटेन की वर्तमान आर्थिक स्थिति जानती नहीं। वे हिन्दुस्तान के शासन का मोह नहीं छोड़ना चाहते...।'' डॉ. नाथ के इस कथन से उसकी राजनीतिक दूरदर्शिता, स्पष्टता और निडरता ही प्रकट होती है।

देश स्वतंत्र होने पर जब वह कांग्रेस शासन में योजना से सम्बन्धित अधिकारी बनाया जाता है तो वह राजनीतिक नेताओं की गुटबाजी, चालों और दूषित प्रवृत्तियों से अप्रभावित रहकर सही और अनुकूल कार्य करता है। सूद जी द्वारा प्रभाव डालने, अप्रत्यक्ष धमकी और लालच देने पर भी डॉ. नाथ अपने निश्चय पर अडिग रहता है। भारत के बँटवारे के पक्ष में भी डॉ. नाथ का दृढ़ मत है– ''यदि पाकिस्तान बनाने वाले हमें शत्रु समझते हैं तो हम उन्हें जबरदस्ती अपने साथ बाँधकर नहीं रख सकते। हम, मेरा अभिप्राय है सामूहिक सामाजिक रूप से जिनसे छू जाना असत्य समझते रहे हों, आज उन्हें अपना अंग बताकर बहलाने का यत्न करना धोखा नहीं है? हमने चाहे जिस कारण ऐसा व्यवहार किया हो, उसकी कीमत देनी होगी।''

डॉ. प्राणनाथ को उपन्यास के आरम्भ में लाकर फिर पर्याप्त समय तक अदृश्य में रखा गया है। उपन्यास के अन्तिम अंश के निकट आने पर यकायक डॉ. नाथ से फिर भेंट होती है। वह प्लानिंग कमीशन के औद्योगिक विभाग के आर्थिक–परामर्शदाता के रूप में दिखाई देता है। तारा से उसकी भेंट बड़े नाटकीय रूप में होती है

सच्चा प्रेमी :– डॉ. नाथ एक सच्चे प्रेमी के रूप में प्रकट होता है। वह तारा को ह्रदय से चाहता है। असद की ओर उसका सम्मान देखकर उसके मार्ग से हट जाता है। सोमराज से उसका विवाह होने पर भी वह अपने ह्रदय को वश में किये रहता है। उसे अपनी स्नेह–भेंट देकर जीवन से हट जाता है। उसकी इस प्रवृत्ति को पलायनवादी प्रवृत्ति कहा जा सकता है। उसमें अपना अधिकार रखने की क्षमता नहीं। किन्तु वास्तव में उसे तारा से प्रेम था, तारा तो उससे प्रेम नहीं करती थी। उसके 'आई लाइक यू' कहने पर भी जब तारा चुप रहती है तो डॉ. नाथ आगे किस मुँह से बढ़ता। बाद में जब वह तारा से दिल्ली में मिलता है

तो तारा भी उसकी ओर धीरे–धीरे आकर्षित होने लगती है और एक दिन वह अपने मनोभाव प्रकट कर ही देता है। वह उससे कहता है– ''...तुमने कहा था, समय आने पर तुम्हारे विवाह के विषय में मैं ही निर्णय करूँगी। ...मेरी आयु अधिक न लगे तो मुझसे विवाह करना स्वीकार करोगी?''

तारा द्वारा रहस्य खोलने पर भी कि उसे गुप्त रोग है डॉ. नाथ उसे अपना लेता है। वह कहता है– ''ठीक है, तुम खुद रोग का इलाज नहीं करा सकीं। लेकिन मेरा अधिकार और कर्तव्य है कि वह अपनी पत्नी का इलाज करवाऊं। मिसेज नाथ को इलाज कराना पड़ेगा...।''

यही नहीं, वह तारा को इलाज कराने स्विटजरलेंड ले जाता है। उसे पूर्ण स्वस्थ कर उससे विवाह कर लेता है। सोमराज, पुरी और सूद जी के सम्मिलित प्रयासों का भी वह दृढ़ता से सामना करता है। अन्त में उसकी विजय होती है। उसका वाक्य उपन्यास का अन्तिम और उद्देश्यपूर्ण वाक्य बनता है। वह कहता है ''गिल, अब तो विश्वास करोगे, जनता निर्जीव नहीं है। जनता सदा मूक भी नहीं रहती। 'देश का भविष्य' नेताओं और मंत्रियों की मुट्ठी में नहीं है, देश की जनता के हाथ में है।''

डॉ. नाथ को एक आदर्श व्यक्तित्व वाले महापुरुष के रूप में प्रस्तुत किया गया है। वह धनवान होते हुए भी घमंडी–अहंकारी नहीं, विद्वान होकर भी वह विनम्र है, उच्च सरकारी अधिकारी होकर भी वह भ्रष्टाचार और अनुचित प्रभाव से रहित है। प्रेम करने में वह शालीनता, गम्भीरता, धैर्य, स्थिरता और चारित्रिकता का निर्वाह करता है। सम्पूर्ण उपन्यास में वही सर्वश्रेष्ठ व्यक्ति कहा जा सकता है।

4.3.3 सोमराज

लाला सुखलाल साहनी का पुत्र सोमराज बिगड़े हुए, आवारा ढंग के अमीर घरानों के लड़कों का प्रतिनिधित्व करता है। बी.ए. में बार–बार फेल होने के बाद फिर वह परीक्षा में नकल करता हुआ पकड़ा गया। उसकी एक पत्नी मर चुकी थी। उसके दूसरे विवाह के लिए उसकी माँ जयरानी ने प्रयत्न किया और तारा से उसकी सगाई हो गई।

वह मक्कार, चरित्रहीन और उद्दण्ड युवक था। लड़कियों को छेड़ना, ताक–झाँक

करना, धमकियाँ देना उसका नित्य का कर्म था। उसके इन कुकृत्यों के कारण ही तारा ने उससे विवाह करना अस्वीकार कर दिया था। जयदेव भी उसे नहीं पसंद करता था। डॉ. प्राणनाथ उसे मूर्ख और अयोग्य समझते थे।

वह चरित्रहीन होने के अतिरिक्त नृशंस और अभद्र भी था। तारा से विवाह होने पर पहली रात्रि को ही उसे अश्लील गालियाँ देकर लातों–घूसों से मारा। ''उसने तारा को चोटी से पकड़कर पलंग के नीचे गिरा दिया। दो लातें मारकर दाँत पीसते हुए वह गाली दी जो तारा ने कभी किसी भद्र पुरुष के मुख से नहीं सुनी थी– ''भूखे मास्टर की औलाद, तेरी यह हिम्मत कि मुझसे शादी के लिये मिजाज दिखाये? ...बी.ए. पढ़ने का बहुत घमण्ड है? तेरी जैसी बीसियों को मैंने देखा है। देखूँगा तुझे! गली–गली कुत्तों और गधों से न रौंदवा दिया...।'' सोमराज घुटे हुए स्वर में बोल रहा था।

सोमराज अवसरवादी, चालाक और मक्कार भी था। नेताओं और अधिकारों को मिलाकर अपना स्वार्थ सिद्ध करने में वह चतुर था। स्वयं को स्वतंत्रता–संग्राम का सैनिक और राजनीतिक पीड़ित बताकर वह लाइसेंस परमिट आदि लेने में सफल हो जाता था। तारा को अण्डर सेक्रेटरी के रूप में उच्च सरकारी अफसर बनी देखकर वह अवाक् रह गया था किन्तु अपना काम न बनने पर सूद से मिलकर उसने तारा को नौकरी से निकलवाने और अपमानित करने का षड्यन्त्र रचा।

सोमराज में निकृष्ट पात्र की समस्त बुराइयाँ हैं। वह इस उपन्यास का खलनायक है। उसके लिए धूर्व, मक्कार, अभद्र, अश्लील, चाटुकार, अवसरवादी, षड्यन्त्रकारी, बेईमानी आदि शब्द प्रयोग कर भी उसके पूरे चरित्र को स्पष्ट नहीं किया जा सकता।

सोमराज लम्बा–छरहरा जवान था। देखने में सुन्दर और कभी–कभी बड़ा सरल तथा हंसमुख भी बन जाता था। तारा से विवाह के समय सालियों के परिहास में और अधिक वृद्धि करने में उसने पूरा सहयोग दिया था। सालियों ने कहा– ''जीजा–जीजा लाची (इलायची) दे, नहीं तो सक्की (सगी) चाची दे!'' सोमराज ने कोट की जेब में हाथ डाला। सालियों ने और सबसे आगे शीलो ने हँसते हुए इलाइची के लिए उसके सामने हाथ फैला दिया। सोमराज ने बन्द मुट्ठी कोट की जेब से निकाल उनके हाथों पर खाली मुट्ठी खोल कर उन्हें झुठला

दिया।''

उसकी हँसमुख आदत से प्रभावित होकर शीलो ने तारा से कहा था– ''देखा, कितना हँसमुख है! कितना अच्छा है। अब सम्भालना तेरा काम है।''

तारा स्वीकृति में आँखें गूँदे सोचने लगी– ''पुरानी सब बातें समाप्त! यह ही मेरा भविष्य और संसार है। सम्भालूँगी ही, जितनी और जैसी संभावनाएँ होंगी, यत्न से क्या नहीं हो सकेगा।''

यदि सोमराज तारा से अच्छी तरह बातें करता, उस पर प्रेम प्रकट करता तो तारा मुसलमानों का आक्रमण होने पर भी छत से कूद कर नहीं भागती। वह उसके साथ सुखी जीवन व्यतीत करने को तत्पर थी। सोमराज के दुर्व्यवहार से ही घटनाएँ आगे बढ़ी और तारा के जीवन में विषम परिस्थितियाँ आयी। सोमराज का चरित्र उपन्यास की घटनाओं को सर्वाधिक प्रभावित करता है। तारा के जीवन की कहानी उसी के कृत्यों से आगे बढ़ती है।

4.3.4 पंडित गिरधारीलाल

कनक के पिता पंडित गिरधारीलाल अनुभवी, चतुर, तीक्ष्ण–बुद्धि तथा व्यावहारिक, प्रेस के मालिक, अच्छी आर्थिक स्थिति के व्यक्ति हैं। वे अपनी दोनों लड़कियों कंचन और कनक को बहुत प्यार करते हैं। कनक की बड़ी बहन कांता का विवाह सफल वकील नैयर से करके वे संतुष्ट हैं। नैयर भी गिरधारीलाल का बहुत आदर करता है। संध्या समय शीघ्र ही कार्य समाप्त करके पंडितजी कनक और कंचन को चाय के लिए बुला लेते थे।

पंडित गिरधारीलाल लड़कियों की स्वतंत्रता के समर्थक हैं। यही कारण है कि ''गिरधारीलाल जी लड़कियां, कांता, कनक और कंचन बचपन से मुक्त वातावरण में पली थी। उन्हें लड़कों के सामने सिमिट, सकुचाकर चुप हो जाने का अभ्यास न था। दूसरे घरों में लड़कियों को युवक अध्यापक पढ़ाने आते थे तो लड़की को भयभीत न होने देने के लिए या चौकसी के लिए किसी बड़ी–बूढ़ी के समीप बैठे रहने का कायदा था, वैसा रिवाज पंडितजी के यहाँ न था। साढ़े पाँच बजे कभी–कभी पंडितजी भी बैठक में एक ओर आ बैठते थे पर चौकसी के लिए नहीं, ब्रजभाषा के दोहों या दूसरी कविता का रस लेने के लिए...'

पंडित गिरधारीलाल जयदेव पुरी का आदर करते हैं। उसकी लिखी कहानियों तथा लेखों की सराहना करते हैं। कनक एक बहाने से पुरी की सहायता के लिए रुपये लेकर जाती है, यह जान लेने पर भी वे कनक पर क्रोध प्रकट नहीं करते। जयदेव उनकी कन्या को पढ़ाता रहा है। वह कर्ज़ा पुरी की सहायता करके उतारना चाहते हैं। उनकी अनुभवी आँखें देख लेती है कि कनक पुरी की ओर आकर्षित है। उस पर भी वे कनक को डांटते–फटकारते नहीं, मन ही मन नादान लड़की के चरित्र का विश्लेषण करते हैं। यह विश्लेषण एक ओर जहाँ अनेक चरित्र की गुरूता पर प्रकाश डालता है दूसरी ओर कनक के प्रति अत्यधिक वात्सल्य और चिन्ता का भी परिचायक है। ''गिरधारीलाल जी का अनुमान अल्हड़ नव युवा बेटी की चतुरता के आच्छादन को सहज ही बेध गया। उन्होंने सोचा, मुझसे छिपाकर यह सब करने की आवश्यकता क्या थी। कनक जयदेव को पहले की तरह पुरी भाई भी नहीं कह रही थी। पंडित जी अपनी इस तेज़ बेटी की ओर कुछ अधिक ध्यान रखना ही उचित समझते थे। उसके कुछ बन सकने की संभावना थी तो उसके धक्का और चोट खा जाने की आशंका भी थी। तीन वर्ष पहले ही वह क्रिश्चियन कालेज के एक लैक्चरार को अपना सब कुछ समझ लेना चाहती थी।''

पंडित गिरधारीलाल जयदेव पुरी को आर्थिक सहायता देते हैं। उसे अनुवाद का काम भी देते हैं, परन्तु कभी अपमान नहीं करते बल्कि अपनेपन से कहते हैं' ''हाँ, यदि रुपये की जरूरत हो तो अनुवाद की ऐसी कोई फिक्र नहीं है। बिना हिचक के यू कम टु मी। स्पष्ट हो गया कि अनुवाद देने का प्रयोजन केवल पुरी की सहायता करना था परन्तु पंडितजी का ढंग अपमानजनक नहीं अपनेपन का था।'' इसी अपनेपन के अधिकार से पुरी को कनक के प्रति सतर्क कर देते हैं तथा अत्यंत चतुराई से उसे यह कहते हैं कि कनक पुरी की बहन की भांति है, इस संबंध को सुरक्षित रखने का उत्तरदायित्व भी पुरी पर है तथा उसकी आर्थिक स्थति की ओर संकेत भी कर देते हैं– ''दिमाग अच्छा है, कुछ लिख भी लेती है। उसके लिए तुम्हें भी क्रेडिट है, लेकिन यह सब किताबी ज्ञान है। जानते हो इस आयु में भावुकता की प्रधानता रहती है और बाद में पछतावा होता है।''

''और फिर विवाह तो एक सामाजिक और आर्थिक समस्या भी है। वह सामाजिक और आर्थिक चौखटे के बाहर जाकर बिखर जाएगी। जीवन के अभ्यासों का भी

बहुत महत्व होता है, समझते ही हो।''

पंडित गिरधारीलाल सामाजिक व्यवहार में अस्वाभाविक प्रतिबंध लगाने के पक्ष में नहीं है, परन्तु उन्हें अपनी स्थिति और स्तर का पूर्ण ध्यान है। निम्न उक्ति से यह बात स्पष्ट हो जाती है– ''मैं सामाजिक व्यवहार में अस्वाभाविक प्रतिबन्ध लगाने के पक्ष में नहीं हूँ, तुम जानते ही तो, तुमने स्वयं देखा है। मैं व्यथा में संकोच का वातावरण उत्पन्न करना उचित नहीं समझता, परन्तु यदि कोई भ्रम हो जाने या भ्रम बढ़ने की संभावना हो तो समझदारी से काम लेना चाहिए और ऊटपटांग बातों के फैलने से क्या लाभ? तुम्हें लोग जानते हैं। तुम्हारी प्रतिष्ठा है। ऐसे ही कनक को काफी लोग जानते–पहचानते हैं। लोग उंगलियाँ उठाए तो अच्छा नहीं।''

परन्तु जब पंडितजी जान लेते हैं कि कनक को किसी प्रकार भी समझना उनके वश की बात नहीं है, वे चुप हो जाते हैं। इसी बीच देश का विभाजन हो जाता है। विभाजन के पश्चात् उनकी आर्थिक स्थिति बिगड़ जाती है। अब वे आर्थिक संकट में पड़ जाते हैं परन्तु उनके विचार स्वतंत्र रहते हैं। लड़कियों का काम करना उन्हें बुरा नहीं लगता। कनक किसी कार्यालय में काम करेगी इस बात पर उन्हें प्रसन्नता होती है। देश का भविष्य तो तभी सुधर सकता है जब लड़कियाँ भी लड़कों के साथ कन्धा मिलाकर काम करें, पर अपनी विनम्रता और सुशीलता को खोकर नहीं।

पंडित जी का अन्तिम समय अत्यंत संयम और शांति से व्यतीत होता है। कनक और पुरी के संबंध–विच्छेद का वे समर्थन करते हैं। झूठे सम्मान के लिए वे यह नहीं चाहते कि शेष जीवन भी कनक लड़ते–झगड़ते बिताए। वे विचारों से क्रांतिवादी हैं और न्याय की भावना मनुष्यों को क्रांतिवादी बना देती है। कनक और गिल के विवाह का भी वे इसी कारण विरोध नहीं करते। अपनी दोहती जया से प्यार करते हैं, बचपन से ही उसमें अच्छे गुण और संस्कार भरने की चेष्टा करते हैं। बुढ़ापे में मांस खाना भी छोड़ देते हैं और सात्विक जीवन व्यतीत करते हैं। राजनीतिक कारणों से भी सिद्धान्त से च्युत नहीं होते। राजनीति को क्षणिक और सिद्धांत को स्थायी समझते हैं। 'झूठा–सच' के पात्रों में पंडित गिरधारीलाल का चरित्र भी विशेष सम्मान और आदर का पात्र है जिसका चित्रण अत्यंत स्वाभाविक, यथार्थ और सफल बन पाया है।

4.3.5 महेन्द्र नैयर

'झूठा–सच' में महेन्द्र नैयर का चरित्र अत्यन्त आकर्षक और स्वाभाविक है। नैयर कनक का बहनोई है। वह सफल वकील है। नैयर तीव्र–बुद्धि, स्पष्टवक्ता, गहरी दृष्टि का व्यक्ति है। उसके तर्क सुलझे हुए मस्तिष्क के परिचायक है।

नैयर को अपनी साली कनक के प्रति विशेष ममता है। कांता से विवाह हो जाने पर नैयर कनक और कंचन के लिए भाई, जीजा और मित्र सभी कुछ बन गया था। विवाह के डेढ़ वर्ष बाद जब कांता के लिए कई मास तक कहीं आना–जाना असुविधाजनक रहा, कनक अपने जीजा के लिए सहचरी और विश्वासपात्र भी बन गई थी। कितनी ही ऐसी बातें थीं जो वे दोनों आपस में ही कर सकते थे। उन्हें आपस में बात करने को सदा ही कुछ न कुछ रहता था। पुरी के बीच में आने के बाद से कनक नैयर को न तो उतना समय और साथ दे सकती थी, न उसे नैयर की संगति में उतना संतोष मिलता था। कनक प्रायः ही पुरी की प्रशंसा करके समर्थन की आशा भी करती थी। समर्थन न मिलने पर बात न करना चाहती थी। इसलिए पुरी के प्रति नैयर के मन में विशेष ममता नहीं थी।''

कनक जयदेव पुरी से प्रेम करती है और उससे विवाह करना चाहती है। नैयर उसके हित के लिए ही पुरी की उपेक्षा करता है। उसकी दृष्टि में पुरी किसी प्रकार भी कनक के योग्य नहीं। पुरी की हीन–भावना के कारण नैयर कभी उससे बोलने के लिए उत्सुक नहीं होता। महेन्द्र ने पुरी के प्रति वैसा ही उपेक्षा से मुँह मोड़ लिया था जैसे बंगले पर पला कोई अभिजात कुत्ता गली में निर्वाह करने वाले कुत्ते की ओर देखकर चल देता है, लड़ने के लिए भी नहीं रूकता। नैयर ने कनक से पुरी के 'पैरोकार' में उपसंपादक बन जाने की बात सुनकर केवल उसकी तनख्वाह के बारे में प्रश्न किया था। उसके बाद पुरी से सामना हो जाने पर नैयर केवल सिर के हल्के–से संकेत से ही परिचय की स्वीकृति दे देता था। पुरी की चर्चा चलने पर उसने कंचन से परिहास किया, जैसे कंचन के सितारे सिखाने वाले मुद्दू बाबा हैं, यह तुम्हारा उस्ताद है।''

विवाह के प्रति भी नैयर का दृष्टिकोण स्वस्थ है। जीवन–भर के साथ को खेल समझने वाले व्यक्ति बिना सोचे–समझे क्षणिक आकर्षण से प्रेरित होकर ही विवाह कर लेते हैं और बाद में मानसिक समझौता न होने पर सिर पकड़कर

पश्चाताप की अग्नि में जलते हैं। विवाह से पूर्व ही मानसिक समझौता होना आवश्यक है। यही कारण है कि पुरी के न चाहने पर भी कनक की भावना की दृढ़ता की परीक्षा लेना चाहता है और कनक को कुछ समय के लिए पुरी से मिलना–जुलना बंद करने के लिए कहता है। पुरी को न चाहते हुए भी उसको परखने के लिए उससे बातचीत करता है, उसके व्यक्तिगत जीवन के प्रति जिज्ञासा दिखाता है और एक अच्छे वकील की भांति पुरी के पारिवारिक जीवन के संबंध में सब कुछ जान लेता है। कनक और पुरी का विवाह उग्र यौवन के उद्दाम प्रवाह का ही परिणाम है, ऐसा विवाह कभी सफल नहीं हो सकता। उसके शब्दों में– ''मेरे–तुम्हारे करने से कुछ नहीं होगा। दोनों बिल्कुल भिन्न प्रकृति के हैं। ऐसी अवस्था में कनक आदर और श्रद्धा के भाव से ही वश में रह सकती थी, परन्तु स्वयं कनक की तुलना में इस आदमी का व्यक्तित्व वैसा नहीं है। उसे यह आदमी यौवन की उग्र–उमंग में मिल गया था। अनुरक्त हुई तो निष्ठा और आत्म–सम्मान की धारणा में, प्रेम की स्वतंत्रता की धारणा में उसने कुछ भी सुनने सोचने से इनकार कर दिया। उस समय उन्हें एक–दूसरे को परखने–समझने का अवसर कहाँ था? हम दोनों ने विरोध करके कनक की उग्रता को और भी बढ़ा दिया था। वे विवाह हो जाने से पहले एक दूसरे से कितनी बार मिल सके होंगे? छिप–छपकर मिलते भी थे तो आवेश की मूढ़ता में, हम लोगों के अन्याय का विरोध करने की उत्तेजना में। वह अवस्था चिरस्थायी तो नहीं हो सकती थी। अब ऐसे ही लड़ते झगड़ते इन लोगों की जिंदगी कटेगी।''

कनक और नैयर के परस्पर वाद–विवाद अत्यंत रोचक हैं। उनमें नैयर का व्यक्तित्व निखर आया है। वह अत्यंत संयम से कनक को समझाता है। उसके उत्तेजित होने पर भी धैर्य से काम लेता है– ''तुम यह तो मानती हो कि पिताजी और हम लोग केवल तुम्हारा हित ही चाहते हैं और पिताजी और हम लोगों को थोड़ा बहुत अनुभव और समझ है।'' कांता ने बात आरम्भ की। कनक बोली– ''ऐसी बातें तो वे लोग भी कहते हैं जो लड़कियों का ब्याह पंद्रह बरस की उम्र में कर देते हैं और इस विषय में लड़की का मुंह खोलना अनुचित समझते हैं।''

''पर तुम जानती हो हम ऐसा नहीं समझते।'' नैयर ने बात अपने हाथ में ली, हम लोग तो तुम्हारे विवाह में तुम्हारी इच्छा को मूल वस्तु मानते हैं और तुम्हारे हित की चिंता से अपनी अनुमति भी आवश्यक समझते हैं।''

''यदि आप लोग मेरी इच्छा को नामंजूर कर दे सकते हैं तो मेरी इच्छा का प्रश्न क्या हुआ?'' ''नहीं, यह बात नहीं है, प्रमुख तुम्हारी इच्छा ही है। तुम्हारी इच्छा न होने पर हमारी अनुमति या इच्छा का कोई प्रश्न नहीं उठता।'' नैयर ने स्पष्ट किया। ''मेरी इच्छा आप जानते हैं परन्तु आपकी अनुमति न होने से आप उसका कोई मूल्य नहीं समझते।'' कनक ने आवेश में कहा– ''आपका अभिप्राय तो यह है कि आप लोग चुन लें और मैं हाँ कर दूँ और आप कहें, तेरी ही इच्छा से सब–कुछ हो रहा है।''

नैयर उत्तेजित नहीं हुआ– ''अच्छा यही सही। हमारा अभिप्राय है कि हमारा चुनाव तुम्हारी स्वीकृति पर निर्भर करता है और तुम्हारा चुनाव हमारी अनुमति से होना चाहिए। तब तो दोनों ओर एक स्थिति है न!...''

उपरोक्त बातचीत नैयर की तार्किक शक्ति का भी सुन्दर उदाहरण है। नैयर अपने ससुर पंडित गिरधारीलाल का हृदय से मान करता है। पंडित गिरधारीलाल जब कनक और पुरी के तलाक का सुझाव देने के लिए नैयर को पत्र लिखते हैं कि अब उन दोनों का साथ किसी प्रकार भी संभव नहीं तो वह पुरी से अपना संबंध और भी बढ़ाता है ताकि वह पूर्ण रूप से वास्तविकता जान सके तथा एक समझदार व्यक्ति की भांति कहता है– नखों पर उंगलियाँ फेरता हुआ कई पल विचार में डूबा रहा और फिर अंग्रेजी में बोला– ''कंती, एक बात है– तुम चाहे तो कहो, बुढ़ऊ का मैं बहुत आदर करता हूँ। बात तो वे न्याय की ही कह रहे हैं। हमें तो ख्याल है न कि हम लोगों को मुंह कैसे दिखायेंगे। उन्हें बेटी के वास्तविक दुख–सुख का ख्याल है। वह जवानी में ही क्रांतिकारी नहीं थे, अब भी विचारों से क्रांतिकारी हैं। जब भी इंसान भय और स्वार्थ की चिंता न करके न्याय की बात सोचता है तो क्रांति की शक्ति का स्फुरण होता है। निस्वार्थ और निर्भय हुए बिना न्याय की बात सोची ही नहीं जा सकती...''

इतना होने पर भी कनक के आने पर वह उसे अन्तिम बार समझाता है– ''हाँ, पिताजी ने लिख दिया है, पर पुरी डाइवोर्स नहीं चाहता। वह समझेगा, हम और पिताजी ही यह सब कर रहे हैं। तुम्हें स्वयं भी तो उसे कहना चाहिए। अपनी इच्छा का कारण बताना चाहिए, उसकी बात सुननी चाहिए। उसे बात कहने का तो हक है। उसकी बात सुनकर ही तो अन्तिम निर्णय कर सकती हो। दो–चार मिनट में आता होगा। उसके पास गाड़ी है। कन्नी, हम दोनों का अनुरोध है,

पुरी में जो भी न्यूनताएं हों, उसका तुम पर वास्तविक अनुराग है। जया के भविष्य का प्रश्न है। तुम संयम से बात करना, उसे दुतकारना नहीं। तुम्हारा जो भी निश्चय हो, बात नम्रता से ही करना।''

कनक से सहानुभूति तथा स्नेह और संबंध होने पर भी नैयर उसे स्पष्ट यह कह देता है कि कानूनन पुरी और कनक का तलाक संभव नहीं है, इसलिए यह इच्छा त्याग ही देनी चाहिए। ''कन्नी, मैं तुम्हारे भाव समझता हूँ। मन में तुम्हारे साहस की सराहना करता हूँ कि तुम व्यर्थ आडम्बर और छलना का विरोध कर रही हो। परन्तु इस काम में तो चाहने पर भी तुम्हारी सहायता नहीं कर सकूंगा। तलाक का एक कानूनन है। कानूनन तलाक तुम तभी दे सकती हो जब यह साबित कर सको कि या तो पति नपुँसक है या वह तुम्हें मारता–पीटता रहा है या उसका किसी अन्य स्त्री से अवैध संबंध है या उसे कोई ऐसा असाध्य रोग है जिससे तुम्हारे स्वास्थ्य को आशंका हो या वह तुम्हें छोड़कर चला गया हो या उसने तुम्हें घर से निकाल दिया हो। इनमें से कोई भी बात तुम साबित नहीं कर सकती... ।''

''पुरी के पास अलबत्ता और भी कारण हो सकते हैं। उदाहरणतः तुम्हारा उसके घर में रहने से इनकार करना। उसने तुम्हें घर में रखने से इनकार नहीं किया। तुम उसके साथ रहना संभव नहीं समझती, इस बात का कानून की दृष्टि में कोई महत्व नहीं है। पुरी की जिस अजीब प्रकृति की बात काँता ने मुझे बताई है, वह जरूर असह्य होगी परन्तु उसके लिए अदालत में गवाही के रूप में कोई प्रमाण पेश नहीं किया जा सकता। अदालत तथ्यों को गवाही के प्रमाण से ही मान सकती है। तलाक की इच्छा करना व्यर्थ है।''

नैयर का गृहस्थ–जीवन संतुष्ट और सुखी है। यद्यपि देश के बंटवारे के बाद बहन इत्यादि के आ जाने पर घर में कुछ लड़ाई–झगड़ा होता है परन्तु इससे नैयर तथा कांता के पारस्परिक भावों पर कोई प्रभाव नहीं पड़ता। वे शीघ्र ही परिस्थिति संभाल लेते हैं। नैयर के व्यक्तित्व का विकास कनक, पंडित गिरधारी तथा तारा और पुरी के संपर्क में ही हुआ है। उसकी अपनी स्वतंत्र कहानी उपन्यास में नहीं है परन्तु उसके चरित्र–चित्रण में लेखक को चमत्कारिक सफलता मिली है इसमें कोई संदेह नहीं।

4.3.6 तारा

तारा मास्टर रामलुभाया की पुत्री और जयदेव पुरी की बहिन है। उसके रूप–रंग के विषय में शीलो की माँ (तारा की ताई) का कथन दृष्टव्य है– ''. .. सच मानो लड़की के नैन–नक्श हज़ारों में एक हैं, हाथ लगे से मैली होती है। आँखें मानो आम की फाँकें हैं... बिल्कुल छमक सी, दसवीं में पढ़ रही है। पढ़ाई में सदा अव्वल आती है। मेरी देवरानी तो, बेचारी...।''

तारा ने 1943 में मैट्रिक फर्स्ट डिवीजन में पास किया था। तारा दयाल सिंह कालेज में आगे की पढ़ाई करने लगी। पहिले वह भाई जयदेव के साथ जाती थी किन्तु जयदेव के जेल चले जाने पर वह अकेली ही कालेज जाने लगी। स्वभाव से ही वह सुचज्जी (सुधरी) थी। ''बचपन से मास्टर जी के धार्मिक विश्वासों का वह अनुशासन सहती आई थी। मास्टर जी उसे और बड़े भाई जयदेव को प्रातः काल खूब तड़के उठकर स्नान कर लेने के लिए विवश करते थे। समीप बैठाकर संध्या–भजन कराते थे। ऐसी ही बात पोशाक और दूसरे व्यवहारों के बारे में थी। जयदेव को सिर के केश मशीन से छोटे कटवाने पड़ते थे, कोट बन्द गले का पहनना पड़ता था। कालेज में चले जाने के बाद जयदेव इन नियमों से मुक्त हो गया था। तारा कालेज में भरती हो गयी तो उस पर भी नियन्त्रण कुछ शिथिल हो गया था परन्तु उससे पहले तारा को भी केशों की एक ही चोटी बनाने की आज्ञा थी। वह दूसरी लड़कियों की तरह कमर पर फिट जम्पर और खुले पहुँचे की सलवार पहनना और बहुत महीन चुन्नी ओढ़ना चाहती थी पर उसे ढीला जम्पर, तंग पहुँचे की सलवार पहननी पड़ती और चुन्नी मोटे कपड़े की मिलती थी। गली मुहल्ले में सब लोग सिनेमा के गीत और गज़लें गाते रहते थे पर मास्टर जी के घर में वह निषिद्ध था।''

इस प्रकार तारा एक सीधी, सरल और सलज्ज लड़की थी। सगाई हो जाना लड़कियों में साधारणतः सौभाग्य और प्रसन्नता की बात समझी जाती है किन्तु तारा केवल पढ़ाई में मन लगाती थी। विवाह के लिये वह तैयार ही नहीं थी। कालेज में तारा कुछ समय तो लड़कियों से अलग–अलग रही, लड़कों से उसने कभी बात नहीं की, फैशन की ओर भी ध्यान नहीं दिया किन्तु बाद में उसका विचार और व्यवहार बदल गया। वह उन लड़कियों के साथ रहने लगी जो राजनीति और फैडरेशन में भी भाग लेती थी। उसे सभाओं में जाना और दूसरे

महायुद्ध के बारे में तर्क–वितर्क करना अच्छा लगने लगा।

तारा का आधुनिक रूप :– 'झूठा सच' की नायिका 'तारा' मध्यवर्ग की आदर्श, चतुर, तीव्र–बुद्धि और गम्भीर नारी की प्रतीक है जिसका जीवन–कंचन अनेक कठिनाइयों की अग्नि में तपकर अंत में प्रदीप्त हो सबको प्रकाश दिखाता है। लेखक की पूर्ण सहानुभूति मानो वही प्रधान पात्र है।

कालेज में तारा एम.ए. पढ़ने का विचार करती है। उसकी तीव्र आकांक्षा है कि पढ़–लिखकर विद्वान और योग्य पुरुष से विवाह करे। उसके विचार में स्त्री अपने से कम योग्य अथवा हीन व्यक्ति के प्रति कभी श्रद्धा या प्रेम नहीं कर सकती। ''विवाह कभी करूंगी तो खूब विद्वान, प्रतिभावान व्यक्ति से ही!... अपनी अपेक्षा हीन आदमी से क्या विवाह? ...स्त्री अपनी शोभा अपने से बढ़कर पुरुष को पाने में ही समझ लेती है, स्त्री स्वयं अपने योग्य पुरुष से हीन क्यों रहना चाहती है? स्त्री जिसे अपने से बढ़कर नहीं समझ सकती उसे अपने योग्य कैसे समझे, उसके प्रति श्रद्धा और प्यार क्या...?''

सीधी–सादी तारा धीरे–धीरे कॉलेज के वातावरण में घुलने मिलने लगी। उसे अच्छे और बुरे सभी प्रकार के लड़के मिलते थे। लड़कियों द्वारा स्टुपिड, रूड और गर्ल–गेजर कहे जाने वाले लड़के तारा को बुरे तो लगते थे किन्तु उन लड़कों का अनायास और कोमल व्यवहार उसे अच्छा लगता था। डिबेट्स और फैडरेशन में भाग लेने वाले लड़कों में क्रिश्चियन कालेज का एक लड़का असद भाई उसे बहुत अच्छा लगने लगा था। तारा को पिता के आदेश अरूचिकर लगने लगे थे। अपनी रुचि से भी वह सशंकित हो जाती थी। वह डरती थी कि कहीं वह पाप की ओर तो नहीं जा रही किन्तु फैडरेशन में जाने से वह समझने लगी कि वह अपराध नहीं कर रही। वह आत्म–सम्मान का अनुभव करने लगी। ''रेस्टोरेन्ट में कभी जुबेद असद या जुबेर के साथ बैठकर निःसंकोच कुछ खा–पी लेने से मिथ्या संस्कारों से मुक्ति का संतोष होता था। इनमें से किसी लड़के से निःसंकोच बात करते हुए साथ–साथ चलने पर समता और आत्म–विश्वास की अनुभूति होती थी।''

परिस्थितियों के आगे झुकती तारा :– रूढ़िग्रस्त परिवार में उत्पन्न तारा प्राचीन संस्कारों तथा विचारों को तोड़कर छिन्न–छिन्न कर देना चाहती है। हिन्दू होकर भी वह मुसलमान युवक असद से प्रेम करती है तथा उससे विवाह करना

चाहती है। असद से भी वह एकान्त में यही कहती है कि वह सोमराज से विवाह नहीं करेगी... यदि असद भी उसे नहीं अपनायेगा तो वह आत्महत्या कर लेगी। परन्तु परिस्थितियों से विवश तारा को सोमराज से विवाह के लिए बाध्य होना ही पड़ता है। इसका एक कारण, तारा माता–पिता तथा घर और परिवार के सम्मान की रक्षा करना चाहती है, दूसरा कारण यह कि अयोग्य व्यक्ति की पत्नी बनने से बचने के लिए उसने जिस भाई का भरोसा कर लिया था वह उसका साथ नहीं देता और तीसरा कारण यह कि उसका प्रेमी भी विवश अवस्था में उसे विवाह से बचा नहीं सकता। समाज के सम्मुख सदा ही प्रेम की हार होती रही है और तारा के साथ भी वही होता है। एक निकम्मे, उच्छृखंल व्यक्ति से उसका विवाह हो जाता है– तारा के विवाह के सुनहले स्वप्न चूर–चूर हो जाते हैं। परन्तु विवाह हो ही जाने पर वह एक भारतीय पत्नी की भांति विवाह की प्रथम संध्या में पति से प्रथम परिचय की कल्पना से रोमांचित हो उठती है। अनेक मधुर भावनाओं को लिए वह सोमराज की प्रतीक्षा करती है...''उसके कंधों पर लाल शिफोन का झीना दुपट्टा था। सोचा घूँघट कर ले या रहने दे। उस घूँघट में दीखता क्या नहीं है? सोचा उनके आने की आहट पाकर घूँघट कर लेगी। कहेंगे तो हटा देगी या हटा लेने देगी। बहुत थकावट जान पड़ रही थी। वह पैंताने आड़े लुढ़क गई। सोचा आहट पाकर बैठ जाएगी...।

''तारा के कान उन शब्दों के लिए आतुर थे जैसे सीप स्वाति नक्षत्र की बून्द पा लेने के लिए अपने पुट खोल देती है।''

तारा की अवस्था उस समय अत्यन्त दयनीय हो जाती है जब सोमराज उसे प्रेम के बदले गालियाँ देता है, उसे पीटता है। तारा अपने सम्मान की रक्षा के लिए एक ही वाक्य बोलती है– ''खबरदार हाथ उठाया तो!'' सोमराज की बलिष्ठ बाहुओं तथा निष्ठुरता के सम्मुख उसका वश नहीं चल पाता और उसकी विवशता उसकी सिसकियों और आँसुओं में बदल जाती है।

उपन्यास में तारा को सबसे अधिक कष्टों का सामना करना पड़ता है। तारा का विवाह हिन्दुस्तान–पाकिस्तान की स्थापना से तीन सप्ताह पूर्व, लाहौर में अत्यन्त विकट साम्प्रदायिक संघर्ष के समय हुआ था। पति से प्रथम परिचय में दुर्व्यवहार और यातना पाने के बाद ही उसके ससुराल में आग लग जाती है और वह एक गुण्डे नब्बू के हाथों में पड़ जाती है। नब्बू के हाथों उसे जो यत्रंणा

सहनी पड़ती है उसे पढ़कर हृदय दहल जाता है।''

''मर्द ने तारा को कोठरी में ले जाकर, उसे विवाह के समय पहनाई गई सोने की चूड़ियाँ और गले का हार उतार दिया। कानों के कर्णफूल खींचे जाने पर तारा ने स्वयं ही निकालकर मर्द के हाथ में दे दिए।

''मर्द सिगरेट समाप्त करके खाट से उठा। उसने आँगन में रखे घड़े से लेकर पानी पिया। एक और सिगरेट सुलगा ली और खाट पर लेट धुआँ छोड़ने लगा। आधे जले सिगरेट को नीचे ईंटों के फर्श पर रगड़कर बुझा दिया और तारा की ओर करवट लेकर पुकारा– 'यहां आ चारपाई पर!'

''...नब्बू ने तारा का विरोध समाप्त कर देने के लिए उसकी सलवार फाड़ कर परे फेंक दी। कमर पर सलवार का केवल ऊपर का कुछ भाग ही नाले से बंधा रह गया। इस पर भी तारा ने आत्म–समर्पण नहीं किया। उसके इस हठ से चिढ़कर नब्बू ने तारा की बाँह को पीठ के पीछे कंधे की ओर इतने जोर से मरोड़ा कि वह तड़प कर और चीखकर बेहोश हो गई।''

तारा इतने दुःख सहने पर भी अपने धर्म में विश्वास रखती है। हाफिज़ के यहां उसे स्नेह और प्यार मिलता है। कुरान शरीफ की अच्छी–अच्छी बातें उसें सुनाई जाती हैं। हाफिज़ जी तारा को इस्लाम धर्म ग्रहण करने के लिए प्रोत्साहित करते हैं। तारा उनका आदर करती है तथा उनकी कृतज्ञ है कि उन्होंने मुसीबत से उसकी रक्षा करके उसे प्रेम और शांति दी है। परन्तु प्रयत्न करने पर भी वह इस्लाम स्वीकार नहीं कर सकी। जिसे हृदय और मस्तिष्क ने माने वह कार्य केवल झूठा दिखावा ही होगा। शारीरिक यंत्रणा से भी अधिक मानसिक क्लेश होता है। नब्बू और सोमराज ने उसे शारीरिक कष्ट दिए परन्तु हाफिज तो उसका हृदय और मस्तिष्क ही बदल देना चाहता है। मनुष्य के पास यही दो वस्तुएं तो हैं जिनके कारण वह अपने को स्वतन्त्र कह सकता है। यह विचार करके वह अपना दृढ़ निश्चय हाफिज़ जी को सुनाती है– ''तायाजी, आपके और मांजी के मुझपर बहुत एहसान हैं, लेकिन अपनी समझ और दिमाग को क्या करूँ? मेरा दिल–दिमाग़ नहीं मानते। अल्लाह ईश्वर की इच्छा से जैसी पैदा हुई हूँ, मुझे वैसे ही मरने दीजिए। सोचती हूँ, उसने अपनी रज़ा से जो कुछ बना दिया है उसे मैं क्या बदलूं? आपका एहसान कभी नहीं भूलूंगी। आप मेहरबानी करके पहुँचा सकें तो मुझे हिन्दुओं में पहुँचा दीजिए, मैं चली जाऊं।

फिर आगे जो मेरी किस्मत होगी।''

कैम्प पहुँचने से पूर्व बंती, सतवंत इत्यादि की भाँति कालकोठरी में उसकी दुर्दशा का चित्रण अतिरंजनापूर्ण जान पड़ने पर भी असम्भव और अविश्वसनीय नहीं। पारस्परिक घृणा, द्वेष और संघर्ष की आंधी में लाखों हिन्दू और मुस्लिम नारियों को इस प्रकार के असीम दुःख सहने पड़े थे। देश का विभाजन होने के पश्चात् तारा का अपना कहने को कोई न था। माता–पिता, भाई, ससुर इत्यादि ने उसे मृत समझ लिया। तारा हर समय चिन्तित रहती है। उसे बंती का ही सहारा है। तारा बंती का परिवार ढूँढने के लिए जी जान से सहायता करती है। भूखी–प्यासी धूप–छाँव की परवाह न करके वह बंती के साथ उसके परिवार का ठिकाना ढूँढ निकालती है। बंती की सहायता करके उसकी प्रसन्नता का ठिकाना नहीं रहता, परन्तु मानव की अमानुषिक क्रूरता उससे बंती का सहारा भी छीन लेती है। जब बंती के परिवार के लोग बंती को अपनाने से इन्कार कर देते हैं तो वह दहलीज पर सिर पटक–पटककर प्राण दे देती है।

तारा के दुःखों का अंत यहीं नहीं होता। कैम्प में भी उसे मानव की ईर्ष्या–नीचता झेलनी पड़ती है। तारा बंती की मृत्यु के पश्चात् कैम्प में लौटती है तो उस पर अनेक लांछन लगाए जाते हैं–

''कहां गई थी तू ? रात कहां रही ?'' निहालदेई ने धमकी से प्रश्न किया।

तारा की अवस्था स्त्रियों का समाधान करने लायक नहीं थी। उसने सिर–पीड़ा के कारण गहरी सांस ली। अपने दुपट्टे में सिर–मुँह लपेट लिया। करवट लेकर मुँह फेर लिया और आँखें मूंद ली।

''यह आयी तो सलवार पर खून ही खून! अब भी देख लो। मैं हैरान यह क्या हो गया इसे! ये कपड़े छिपाकर झटपट लेट गई।'' सुखदेव सबको सुनाकर बोली। निहालदेई अपने प्रश्न की अवहेलना से नाराज़ हो गई। वह अधिक ऊँचे स्वर में बोली– ''हाँ री देखो तो इनकी करतूत। एक जनी तो लौटी ही नहीं। क्या इसलिए दोनों रात बाहर रही थीं? क्या हाल करा आयी है।...''

''चलो री चलो। कैम्प वालों से कहें, यह क्या तमाशा है? हमारी जवान लड़की है। इसे हम यहाँ नहीं रखेंगे। ऐसा कैसे हो सकता है! यह कोई छल्ला–कोठी, चकला थोड़े ही है। चलो न कहें चलकर...।''

तारा क्रोध और घृणा से बक–बक करती स्त्रियों के बीच पड़ी हुई दुपट्टे में सिर–मुँह लपेटे अनुमान कर रही थी कि उसे अभी उठाकर फेंक दिया जाएगा, ...चुटिया से घसीटते हुए फेंकने के लिए ले जायेंगे। उसे घसीटते समय उसके सब कपड़े भी फाड़ देंगे। उसके प्रति क्रोध और घृणा है, क्योंकि उस पर अत्याचार कर दिया गया है। उस पर इसलिए क्रोध है कि उसने अपमान किया जाने का, सोमराज और नब्बू द्वारा अत्याचार किये जाने का विरोध किया है।

तारा जीवन में अनेक प्रकार के अनुभव पाती है। वह शिक्षित होने के कारण कैम्प में लिस्ट बनवाने का कार्य करती है। वहाँ देश–सेवा करने वाले स्वयंसेवकों के छलों और सेवा की आड़ में किए जाने वाले धोखे, फरेब से परिचित होती है। परन्तु तारा अपने स्त्रीत्व और आत्म–सम्मान की रक्षा करती है। वह मिसेज़ अग्रवाल के यहाँ खूब काम करती है परन्तु जहाँ उसके चरित्र पर संदेह किया जाता है वह उस घर को त्याग देती है तथा किराए पर पृथक् कमरा लेकर रहने लगती है।

तारा का चरित्र अत्यंत गम्भीर है। वह शिक्षित होने के कारण अन्य औरतों की भाँति हर समय पाकिस्तान में सहे कष्टों की चर्चा नहीं करती। नरोत्तम से वह मित्रता का व्यवहार करती है परन्तु उससे विवाह का विचार उसके हृदय में कभी नहीं आता। नरोत्तम के विवाह–प्रस्ताव पर वह उसे स्पष्ट कहती है कि वह नरोत्तम को भाई की तरह मानती है। इस घटना से भी दोनों के सम्बन्ध में कोई विषमता नहीं आने पाती। भाई–बहन के सम्बन्ध से हास–परिहास, छीन–झपट चलती रहती है। तारा का हृदय अत्यंत विशाल है। अपने कार्य तथा सुशील व्यवहार के कारण वह देवी की भाँति पूज्य बन जाती है– ''वैदिक रीति के नामकरण संस्कार की तैयारी थी। वेद–मन्त्रों से हवन–कुंड की पवित्र अग्नि में, सुगन्धित सामग्री की आहुतियाँ दी गयीं। हवन पूर्ण हो जाने पर खुशीराम मेहता ने तारा के सामने हाथ जोड़कर प्रार्थना की– 'हमारी माताजी की आपसे विनती है कि आप ही बच्ची को नाम दें।' इतने आदर और बड़प्पन के बोझ से तारा को पसीना आ गया। निबाहने के लिए उसने कहा– 'माताजी के मुख से आदर्शवाद रूप नाम निकले वही सबसे शुभ होगा। माता जी, आप कोई भी नाम बोल दीजिए।' संस्कार के पुरोहित पंडितजी ने तारा को संबोधन किया– 'देवीजी, बच्ची की दादी और पिता–माता की इच्छा है कि आप अनुमति दें तो बच्ची का नाम आपके ही नाम पर रखा जाये। वह आपकी तरह योग्य, शीलवती

और सफल हो सके।'

''ठीक है, ठीक है। सत्य है।'' बहुत से स्त्री–पुरुषों ने अनुमोदन किया। तारा की गर्दन झुक गई। मस्तिष्क में ऐसी झनझनाहट हुई कि पीतल का कोई भारी बर्तन फर्श पर पटक दिया गया हो। मन ने कहा नहीं, जो मैंने भोगा है, कोई न भोगे। तारा ने अपने–आपको संभाला। कंठ रूंध जाने के कारण मुख से केवल इतना कह सकी– ''सुखी हो। उसका कल्याण हो।''

पंडितजी ने वेद–मंत्र पढ़कर बच्ची का नाम तारा रख दिया और आशीर्वाद से पुत्री का 'तारा' नाम रखा गया है, यह पुत्री उसी के समान गुणवती, यशवती होकर अपने जीवन में ध्रुव तारे के समान उज्जवल बनी रहे।'' तारा डॉ. नाथ का अत्यंत आदर करती है। डॉ. नाथ के स्पष्ट और सुलझे हुए विचार, जीवन के प्रति तटस्थ और कर्मरत लगाव और समाज में आदर आदि बातों में उसे डॉ. नाथ का भक्त बना दिया है, परन्तु उससे भी विवाह का विचार उसके मन में कभी नहीं आया। अपनी सखी मर्सी के हास्य–व्यंग्य के कारण तारा उसे डांट भी देती है और उससे कहती है कि डॉ. नाथ के प्रति वह सदा से कृतज्ञ है, क्योंकि उसने तारा की तथा तारा के परिवार की सदा सहायता की।

डॉ. नाथ और तारा का संबंध धीरे–धीरे घनिष्ठ और आन्तरिक होता जाता है और एक ऐसा भी दिन आता है जब तारा से उसका विवाह हो जाता हैं मानसिक समता होने के कारण यह विवाह अत्यंत रहता है। तारा का चरित्र अत्यंत आकर्षक है। आदर्शोन्मुख होते हुए भी वह देवी नहीं बन जाती जिसें मानवीय प्रकृति का अभाव हो। उन पर संकट आते हैं परन्तु वह साहस और धैर्य से उसका सामना करती है। वह दुःखी होती है, व्याकुल भी होती है तथा संघर्ष करती है। तारा के चरित्र के साथ सहृदय पाठकों का पूर्ण तादात्म्य हो जाता है और उनके साथ वह हँसता है, रोता है, यही चरित्र–चित्रण की सबसे बड़ी सफलता है।

सहायिका के रूप में तारा :–

तारा स्वयं तो दुःखी थी किन्तु दूसरों को सहायता देने में वह सदैव प्रयत्नशील रहती थी। गुण्डों की कैद में वह अन्य युवतियों को कैद से छूटने के लिए प्रोत्साहित करती थी। बन्ती को लेकर जगह–जगह घूमी और उसके घर तक

उसे पहुँचाने में सफल भी हुई किन्तु बन्ती के घरवालों के दुर्व्यवहार से बन्ती को अपने जीवन से हाथ धोना पड़ा। तारा ने शीलो और रतन की सहायता की। सीता को सुधारा और उसका विवाह कर दिया। अपने सगे भाई के विरुद्ध उसने कनक की सहायता की। नरोत्तम से अपनी छोटी बहिन का विवाह कराया।

सरकारी नौकरी में भी उसने लगन तथा ईमानदारी से कार्य किया। डा. प्राणनाथ को उसने अपना गुप्तरोग और उसका कारण भी स्पष्ट बता दिया। अंत में उसो एक अच्छा पति, संरक्षक और प्रेमी डॉ. नाथ के रूप में मिल गया।

राजनीतिक चेतना :–

आरम्भ में तो तारा फैडरेशन की सक्रिय सदस्या रही किन्तु दिल्ली आकर वह मर्सी के कारण कुछ वाद–विवादों में कभी तटस्थ और कभी एक पक्ष का समर्थन करती हुई बहस करती थी। मिसेज अग्रवाल के यहाँ भी वह कभी–कभी बहसों में भाग ले लेती थी। किन्तु सक्रिय राजनीति में वह नहीं पड़ी। वह सरकारी नौकरी में आकर कांग्रेस समर्थक भी होने लगी थी। वह कम्युनिस्ट विचारधारा वाले लाल से कहती है– ''सर्वसाधारण का हित कैपिटलिस्टों के पक्ष में है या आपके पक्ष में? जनवरी तक आप लोग नारे लगा रहे थे– गाँधी जी राष्ट्रपिता हैं, नेहरु के हाथ मजबूत करो। आज नेहरु कैपिटलिस्टों के एजेंट हो गये। लोग चकरायेंगे या नहीं?''

माथुर और मर्सी के यह कहने पर कि देश आजादी के बाद नहीं बदला, तारा कहती है– ''खैर, उतना तो नहीं बदला लेकिन शासन की मशीन या शासन चलाने वाले लोग तो उसी नीति के अनुसार चलेंगे जो उन्हें बतायी जायेगी। नीति निर्धारित करने वाले तो जरूर बदल गये हैं। विदेशी शासन की जगह स्वदेशी शासन हो जाना भी काफी परिवर्तन है।''

तारा पर अन्तिम चोट सोमराज, पुरी और सूद जी द्वारा होती है। डॉ. नाथ से उसका विवाह होने पर उसे सोमराज की पत्नी बनाकर बदनाम करने और नौकरी से निकालने के प्रयास होते हैं। उसका स्वास्थ्य गिरने लगता है। चेहरा बिल्कुल पीला–सफेद पड़ जाता है। उसे बुखार रहने लगता है। किन्तु अंत भले का भला होता है। सरकार की ओर से डॉ. नाथ और तारा मुक्त हो जाते हैं

और उसके विरोधी सूद जी विधान सभा के चुनाव में सत्रह हजार वोटों से हार जाते हैं।

इस प्रकार तारा का चरित्र एक ऐसी आधुनिक नारी का चरित्र है जो समाज की रुढ़ियों से, उसके रीति–रिवाजों से संघर्ष करती हुई आगे बढ़ती है। परिस्थितियां उसे बिगाड़तीं और संभालती हैं फिर अंत में वह उपयुक्त सहारा पाकर दृढ़ एवं निश्चिन्त हो जाती हैं।

4.3.7 कनक : एक परिचय

कनक 'नया हिन्दी पब्लिकेशन' के मालिक पंडित गिरधारीलाल की मँझली लड़की थी। कनक ने बचपन में उर्दू पढ़ी थी। उसने स्कूल में हिन्दी भी पढ़ी थी किन्तु उसका अधिक उर्दू की ओर ही था। वह अंग्रेजी में एम.ए. पास करके उर्दू में 'मुँशी फाज़िल' करना चाहती थी परन्तु राष्ट्रीयता की भावना से उसने हिन्दी–विशारद की परीक्षा देने का निश्चय किया। उन दिनों पंजाब के हिन्दुओं में, विशेषरूप से स्त्रियों में हिन्दी की ओर प्रबल बहाव आ गया था। कनक ने सन् 1942 के आन्दोलन में भी भाग लिया था। वह लाहौर के उस फैशनेबिल नगर में भी खादी की साड़ी पहनती थी। कनक की ओर पुरी का आकर्षण उसके सौम्य रूप और सरल व्यवहार के कारण ही बढ़ा। ''उर्मिला के व्यवहार से पुरी के मन में लड़कियों के प्रति जो विरक्ति उत्पन्न हुई थी उसे कनक की प्रतिभा और संयमित व्यवहार ने पुरी के मन से ऐसे दूर कर दिया जैसे मई–जून के झुलसे मैदान की विरूपता को सावन–भादों की वर्षा दूर कर देती है। यह नहीं था कि उससे पूर्व पुरी किसी लड़की के रूप–लावण्य के प्रति आकर्षित हुआ ही नहीं था परन्तु कनक के समीप्य से वे ओछी स्मृतियाँ ऐसे धुल गईं, जैसे सूर्योदय हो जाने पर उषा का धुँधलका लोप हा जाता है।''

पं. गिरधारीलाल के कथन द्वारा कनक का और अधिक परिचय मिलता है– ''उसकी आयु केवल बीस वर्ष है। बीस–इक्कीस की आयु क्या होती है? मेरा मतलब है, जिस प्रकार की समस्यायें आज हमारे लड़के–लड़कियों के सामने आ रही हैं, उन्हें सुलझाकर चल सकने के लिए अनुभव चाहिए। उसने बी.ए. पास कर लिया है, वह कोई बड़ी बात नहीं है। दिमाग अच्छा है, कुछ लिख भी लेती है। उसके लिए तुम्हें (पुरी को) भी क्रेडिट है, लेकिन यह सब किताबी ज्ञान है। जानते हो, इस आयु में भावुकता की प्रधानता रहती है और बाद में

पछतावा होता है।''

उपन्यास में कनक का यह प्रारम्भिक परिचय उसकी शालीनता और भावुकता प्रकट करता है। वह अध्ययन और लेखन में निमग्न रहने वाली, राष्ट्रीय विचारों वाली, उदार ह्रदय वाली ऐसी युवती है जो धन की चिन्ता न कर मन की ओर आकर्षित होती है।

प्रेमिका कनक :– कनक के मन में जयदेव पुरी के प्रति आकर्षण उत्पन्न हुआ। उसने विद्यार्थी के रूप में जयदेव पुरी को गुरू मानकर उसका स्वागत विशेष विनय और आदर से किया था। वह जयदेव की प्रकाशित कहानियाँ और कुछ लेख भी पढ़ चुकी थी। दो कहानियाँ उसने अपने साहित्य–प्रेमी पिता को भी पढ़कर सुनाई थीं। कनक ने अपने जीजा महेन्द्र नैयर को जयदेव का परिचय ऐसे दिया, मानो जयदेव से मिल पाना नैयर का सौभाग्य हो।

'पैंरोकार' में अधिक समय देने के कारण पुरी कनक को पढ़ाने नित्य नहीं आ पाता था। वह जब आता तो कनक उसके न आने की शिकायत करती, उलाहने देती। धीरे–धीरे कनक के सहज निस्संकोच व्यवहार और साहित्यचर्चा के उत्साह का स्थान उसका आदरपूर्ण मौन लेने लगा। और एक दिन दोनों ने एक–दूसरे के सामने अपने ह्रदय खोल ही दिये। अपने प्रेम का वचन देते समय उसकी आँखें पुरी की आँखों से मिलीं। चेहरा लाल हुआ। उसने अपना हाथ पुरी के हाथ पर रख दिया। उसकी आँखें झुक गई। जब पुरी ने कहा कि हाथ दे रही हो, छुड़ाओगी तो नहीं? तब उसकी आँखें पुरी की ओर स्थिर हो गयीं तो ह्रदय की गहराई से उठे श्वास से बोलकर वह गम्भीर हो गयी। उसने कहा. .. कभी नहीं।'' पुरी ने उसे अपनी आर्थिक दशा भी बता दी किन्तु वह रुपये–पैसे की भूखी न थी।

'पैरोकार' की नौकरी छूटने पर पुरी को रुपयों की बड़ी कठिनाई रहने लगी। कनक ने उसे कुछ रुपये देने चाहे किन्तु पुरी ने इसे अपने आत्म–सम्मान को ठेस लगना समझा, उससे रुपये नहीं लिये। कनक के मन की बात उसके पिता समझ गये थे। कनक स्वभाव से ही भावुक थी। पुरी की ओर उसका आकर्षण उसका प्रथम प्रेम नहीं था। इससे पूर्व वह क्रिश्चियन कालेज के एक लेक्चरार को अपना सब कुछ समझ लेना चाहती थी। गनीमत यह हुई कि लेक्चरार विवाहित था। कनक जान गयी कि वह उसे धोखा दे रहा था।

वह अपने प्रेमी को रुपये देने के लिये पिता से झूठ बोलती है। सहेली के यहाँ जाने का बहाना कर वह उससे छुप कर मिलती है। उसके जेल जाने पर बिना किसी संकोच उससे मिलने पहुँच जाती है। अपने जीजा नैयर से कहकर उसकी ओर से वकालत करवाती है और उसे छुड़वा लेती है। उसे नैनीताल बुलाकर अपने खर्चे पर एक शानदार होटल में ठहराती है, उसे क्लब में ले जाती है उसे नौकरी के लिए अपने खर्चे पर लखनऊ भेजती है। उसके लिए सदैव चिन्तित रहती है और कुछ न कुछ करती ही रहती है।

नैयर को पुरी स्तर के अनुकूल नहीं प्रतीत होता। वह कनक को विभिन्न प्रकार से समझाता है कि वह पुरी को भूल जाये किन्तु कनक का प्रेम उस सीमा तक पहुँच चुका है जहाँ से लौटा नहीं जा सकता। वह नैयर से कहती है– ''आप साहित्य के क्षेत्र और मर्म की बाबत उनसे बात कर ही नहीं सकते। वे आपसे क्या बात करें? आप अखबारी खबरों के अतिरिक्त राजनीति भी नहीं समझते? सोसाइटी टाक या निरी बैठक बाजी उन्हें नहीं आती क्योंकि ऐसी श्रेणी से उनका सम्पर्क नहीं है। यह कोई मौलिक न्यूनता नहीं है। आपको पुरी जी की संगति नहीं रुचती तो वह कब आपके पीछे दौड़े रहे हैं...।'' प्रेम और विवाह के विषय में कनक के स्वतन्त्र विचार हैं। वह अपने माँ–बाप द्वारा तय किये वर की अपेक्षा अपने द्वारा पसन्द किये वर को चाहती है। वह नैयर से कहती है– ''आप का अभिप्राय तो यह है कि आप लोग चुन लें और मैं हाँ कर दूँ और आप कहें, तेरी ही इच्छा से सब हो रहा हैं''

नैयर उत्तेजित नहीं हुआ– ''अच्छा यही सही हमारा अभिप्राय है कि हमारा चुनाव तुम्हारी स्वीकृति से होना चाहिए। तब तो दोनों और सम स्थिति है न?''

कनक उद्वेग से बोली– ''समता क्या है? आप लोग मेरे अधिकार और क्षेत्र में दखल दे रहे हैं। आप मेरे अधिकार को आधा काट कर कहते हैं कि दोनों का अधिकार बराबर है। अंग्रेज भी कह दें कि भविष्य में भारत के सम्बन्ध में उनका और भारतीयों का अधिकार बराबर होगा या लीग कहे कि पूरे देश पर लीग और कांग्रेस का आधो–आध अधिकार होना चाहिए तो आप मन जायेंगे ? प्रश्न तो मेरे जीवन का है, किसी दूसरे के निर्णय का प्रश्न क्या?''

और अन्त में हार कर जब नैयर ने कहा कि तुमने तो निर्णय ही कर लिया है, तुम समझना ही नहीं चाहतीं तो कनक ने दृढ़ता से कह दिया कि हाँ निर्णय कर

लिया है। कनक के पिता को कनक के इस निर्णय से दुःख था। उन्होंने उसे स्वतन्त्रता देकर त्रुटि की। कनक भी इस बात से दुःखी होती है। वह कहती है– ''...मैं पिता जी के लिए अपने आप को बलिदान कर सकती हूँ, परन्तु उन्हें जो वचन दिया है, उसका क्या करूँ? वे भी तो तड़प रहे होंगे! यदि मेरे कारण कुछ कर बैठे?''

कनक के इस व्यवहार और इन शब्दों से प्रकट होता है कि वह अपने प्रेम में दृढ़ है। उसने सब ओर से विरोध सहकर भी पुरी को नहीं छोड़ा। वह पुरी के रूप या शरीर की ओर नहीं, उसके गुणों, उसकी योग्यता, उसकी प्रतिभा को पसन्द करती थी। उसके लिए वह अपने पिता की सारी दौलत त्यागने को भी तत्पर थी। उसकी नौकरी के लिए जगह–जगह भटकी। उसे खोजती हुई जालन्धर तक पहुँच गयी किन्तु वहाँ जब अपने प्रेमी को उर्मिला के साथ देखा तो अवाक् और चेतनाशून्य सी हो गयी। वह पुरी को इतना चाहती थी, उस पर इतना विश्वास करती थी कि उर्मिला से पुरी का सम्बन्ध होने पर भी उससे विवाह करने को तैयार हो गयी।

सरल हृदया नारी :– कनक ने प्यार करना सीखा था। वह पूरे मन से पुरी को प्यार करती थी। उसकी उदासीनता और उसका उर्मिला के प्रति आकर्षण समझकर भी उसने पुरी को अपना लिया। उसके पत्र 'नाजिर' और उसकी प्रेस का भी प्रबन्ध देखने लगी। उसे वह किसी प्रकार का कष्ट नहीं देना चाहती थी।

अपनी सरलता के कारण ही उसे कामुक अवस्थी का घृणित प्रस्ताव सुनना पड़ा था। असीर के अभद्र व्यवहार से वह खिन्न हुई थी किन्तु यह सब उसकी सरलता का ही परिणाम था।

स्वाभिमानिनी कनक :– कनक ने हर स्थिति में अपना स्वाभिमान बनाये रखा। नैयर, कांता और पिता के सामने वह नहीं झुकी। उसने अपने प्रेम पर आक्षेप सुनना स्वीकार नहीं किया। पुरी के प्रेम को उसने अधिक महत्व दिया। उसके आत्म–सम्मान की रक्षा की और अपने आत्म–गौरव को भी नहीं गिरने दिया। मिसेज पन्त और अवस्थी जी की अभद्रता से उसके आत्म–सम्मान पर चोट लगती है। वह क्रोध में भोजन तक नहीं करती और वापिस लौट आती है।

वह दिल्ली में रहकर अपने पिता पर बोझ नहीं बनना चाहती। उसने 'समाज–विकास–केन्द्र' में नौकरी की। दिल्ली से सत्ताइस मील दूर जाकर काम करने में भी उसे कोई झिझक नहीं हुई।

विवश कनक :– जिस प्रेमी के लिए कनक ने इतना त्याग किया, इतने लांछन सहे, सब के लिए की बुरी बनी उसी को उसने छोड़ दिया। यह एक बड़े आश्चर्य और खेद की बात कही जायेगी। पुरी को छोड़ने का कारण एक और गिल है और दूसरी ओर स्वयं पुरी। गिल के प्रति कनक आकर्षित थी। गिल उससे विवाह करना चाहता था किन्तु कनक पुरी को पति मान चुकी थी। पुरी से विवाह होने पर उसे शान्ति और तृप्ति नहीं मिली। वह फिर भटकने लगी। पुरी के चिड़चिड़े स्वभाव से उसे उसके विरुद्ध कर दिया और अन्त में उसे तलाक दे दिया। यहाँ कनक के चरित्र में स्वच्छन्दवादिता अहं और असन्तुलन की स्थिति दिखाई देती है। वह एक श्रेष्ठ नारी बनते–बनते अति साधारण नारियों की श्रेणी में आ जाती है। वह भौतिक सुख की ओर अधिक झुकती है। उसने तीन बार प्रेम किया। दो में असफल हुई तीसरे में संतुष्ट! किन्तु क्या पता कि गिल से किया गया उसका विवाह आगे चलकर असफल न हो सकता हो। विवाहित लेक्चरार पर वह बिना सोचे समझे मुग्ध हो गयी, पुरी के लिये सब कुछ छोड़ा और जिसके लिये उसने सब कुछ छोड़ा था अन्त में उसे भी छोड़ गयी। अपने इस निश्चय के विषय में वह स्वयं को ही दोषी मानती हुई कहती है, ''...मानती हूँ, मेरा ही दोष है। मैं असहिष्णु हूँ। 'उनकी' प्रकृति वैसी है। सब लोग उनका आदर करते हैं, परन्तु मैं क्या करूँ? समझ लो मैं अपने को ही दण्ड दे रही हूँ पर मैं वहाँ पर रह नहीं सकती। सच कहती हूँ, मैंने अपने दोष के कारण बहुत सहा है, अब नहीं सह सकती। मुझे उनकी कोई बात अनुकूल नहीं लगती। विवाह के छः मास के बाद से ही कटुता आरम्भ हो गयी थी। पाँच वर्ष निबाहा, अब नहीं सह सकती। निन्दा होगी, हो! मैं क्या करूँ ?... हम लोगों की रुचि और प्रकृति एक–दूसरे के अनुकूल नहीं है। लोक–लाज के लिए जितना निबाह सकती थी, निबाह किया। अब नहीं निबाह सकती...।''

उसकी इस स्थिति के विषय में उसके पिता का मत था कि कनक ने यह मार्ग स्वयं अपनाया था। उसे ऐसी दशा में निबाहना ही चाहिये था। लेकिन बाद में उनका भी मत हो गया कि जिस सम्बन्ध में कोई तत्व या सार नहीं उसे बनाए रखना व्यर्थ है।

पुरी अपनी त्रुटियाँ स्वीकार कर कनक से क्षमा माँगने लगा। उसने कहा ''मैं प्रतिज्ञा करता हूँ, तुम्हें जिस बात से विरक्ति थी... वह नहीं होगी। मैं पति के अधिकार का तकाजा या उस तरह के सम्बन्ध की इच्छा कभी नहीं करूँगा। तुम अपने घर में रहो।'' किन्तु कनक ने इसे स्वीकार नहीं किया। नैयर के समझाने पर भी वह नहीं मानी। उसने पुरी को छोड़ने का निश्चय कर लिया। उसे तो गिल भा गया था। वह पुरी से उकता गयी थी। उसे पुरी के साथ रहना किसी रूप में नहीं सुहाता था। वह पुरी की पुत्री की माँ थी किन्तु इसकी चिन्ता भी उसे नहीं थी।

यदि कनक के जीवन में गिल न आया होता तो सम्भव है कि वह इतनी दृढ़ता से पुरी का विरोध न करती। वह कुछ समय बाद उससे मेल कर लेती। किन्तु गिल के आकर्षण ने उसे अपनी बसी हुई गृहस्थी उजाड़ने और नयी बसाने की प्रेरणा दी।

परिवर्तित होता जीवन :– कनक के जीवन में सबसे बड़ा परिवर्तन उसके विवाह के पश्चात् आता है। वास्तव में उसे बाद में विदित होता है कि पुरी के साथ उसका प्रेम केवल बाह्य आकर्षण के कारण था, दोनों के विचारों में ज़मीन–आसमान का अन्तर था। इसके अतिरिक्त पुरी अब एक व्यवसायिक पुरुष है जिसे अपने कार्य से फुर्सत नहीं मिलती कि वह कनक से प्रेम की बातें करे। घर में सास भी पढ़ी–लिखी बहू के प्रति विरक्त है। उसके प्राचीन विचार आधुनिक विचारों से मेल नहीं खाते। कनक का गृहस्थ जीवन अत्यंत असफल सिद्ध होता है। जीवन के रंगीन स्वप्न और कल्पनात्मक चित्र विचारों के अंतर के कारण तथा दोनों में यौन–भेद होने के कारण चूर–चूर हो जाते हैं। कनक इस विवाह पर पश्चाताप करती है। नैयर के उपदेश और बातें अब उसको ठीक लगने लगती हैं। पुत्री के लालन–पालन का भार और उस पर घर तथा प्रेस का काम, सबने मिलकर उसके जीवन में हलचल उत्पन्न कर दी थी। पुत्री से रोज़ ही किसी–न–किसी बात पर झगड़ा होने लगा। परिणामस्वरुप वह किसी भी तरह पुरी से सम्बन्ध–विच्छेद करने की बात सोचती है।

कनक केवल बाह्य मिथ्याडंबर के कारण अपना जीवन व्यर्थ नहीं गंवाना चाहती। पिता के यहाँ रहकर वह ग्राम सुधार विभाग में नौकरी कर लेती है। 'गिल' के व्यक्तित्व और विचारों से प्रभावित होकर हर समय उसके साथ रहना

चाहती है और अन्त में हर प्रकार के बंधनों को तोड़कर वह 'गिल' से विवाह कर लेती है। अपनी लड़की तथा 'गिल' के साथ सुखी जीवन व्यतीत करती है। केवल प्रथम–दर्शन के प्रेम विवाह की असफलता और उस पर 'डाइवोर्स' का समर्थन यहाँ स्पष्ट दृष्टिगत होता है। कनक और गिल के विवाह द्वारा यशपाल उस परम्परागत रुढ़ि पर प्रहार करते हैं जिसके कारण हज़ारों हिन्दू गृहस्थ–जीवन नष्ट हो जाते हैं।

कनक का चरित्र विकासशील, परिवर्तनशील और अस्थिर है। वह एक आधुनिक नारी की अच्छाइयों–बुराइयों को लिए हुए अति साधारण नारी ही रह जाती है। वह स्वयं परिस्थितियाँ उत्पन्न कर उन्हें दोष देती है। उपन्यास में नायिका होते–होते वह एक साधारण पात्रा ही बनकर रह गयी।

4.3.8 उर्मिला

उर्मिला लाला वाधवामल नारंग की पुत्री थी। वह मैट्रिक की परीक्षा में अनुत्तीर्ण होकर स्कूल छोड़ बैठी थी। उसके माता–पिता उसे मैट्रिक पास कराना चाहते थे। बिना पढ़ी लड़की के विवाह में कठिनाई होने से वे उसकी पढ़ाई के विषय में चिन्तित थे। ''नख–शिख के अनुपातों से उसे रूपवती नहीं कहा जा सकता था। चेहरा गोल, गर्दन कुछ छोटी, नाक भी बखान के योग्य नहीं परन्तु उजला, सुनहरा, गोरा रंग, उड़े–उड़े से कोमल भूरे–सुनहरे केश और बड़ी–बड़ी कौड़ियों जैसी आँखों से आँखें मिल जाने पर दृष्टि सहसा न हट पाती। उसके आकर्षण के मोह में रूप की परख की चेतना नहीं रह पाती थी। तिस पर उसका बढ़–चढ़कर कर बोलना।''

पुरी उर्मिला को पढ़ाने जाता था। उर्मिला अपने चंचल स्वभाव के कारण पढ़ती कम थी बातें अधिक करती थी। वह पुरी की ओर आकर्षित थी। वह पुरी से 'मास्टर जी' कहती थी। उसमें धीरे–धीरे झिझक हट पर निस्संकोच की भावना आने लगी थी। पुरी पढ़ा रहा होता तो वह कोई दूसरी बात छेड़ देती। वह उससे गम्भीर होकर पढ़ने को कहता तो वह अपनी बात सुनाने को अड़ जाती। पुरी के अनुशासन के आग्रह पर उसकी हँसी बिखर जाती थी। उस आकर्षण, चपल युवा लड़की से विनोद और खेल के अवसर की उपेक्षा कर देने के लिए पुरी को बहुत आत्म–दमन करना पड़ता था।

उर्मिला की यह चंचलता उसकी कामुक मनोवृत्ति की परिचायिका थी। उसे पुरुष का संसर्ग प्रिय था। पुरी के स्थान पर यदि कोई अन्य युवक भी होता तो भी उर्मिला इसी प्रकार का व्यवहार करती। अपने उच्छृंखल व्यवहार के कारण उसे अपनी माँ की मार तक खानी पड़ी किन्तु वह अपनी आदत बदलने को फिर भी तैयार न हुई। उसकी कामुकता का एक उदाहरण है। माँ से पिटने के बाद पुरी जब उसे पढ़ाने बैठा तो उसने कहा– ''वही पोयम फिर पढ़ो।''

''बड़े बेदर्द हो, देखोगे भी नहीं?'' पुरी ने सुना।

पुरी स्थिति को सँभाल लेने का निश्चय किये हुए था। सिर झुकाये ही कड़ाई से बोला– ''हड्डियाँ टूटने में अभी कुछ कसर बाकी है?''

''मार मुझे पड़ी, डर तुम रहे हो?''

''तो फिर?'' पुरी ने आँखें उठायीं।

''मार खा ली है तो अब डर क्या? और मार लें। क्या मुत में मार खायी है?''

पुरी ने आँखें मूँदे सोचा। रक्त खौल जाने की गर्मी से उसके मुख में तिक्तता भर गयी थी। वह सिर झुकाये पोयम का अन्वय, अर्थ और भाव बताने लगा।

''नहीं सुनूँगी!... नहीं पढ़ूँगी!... नहीं सुनूँगी!'' उर्मिला पुरी को टोकती जा रही थी।

ऐसी भावुक अथवा कामुक थी उर्मिला। वह बड़े घर की बिगड़ी हुई लड़की थी। उसके लिए पढ़ाई की अपेक्षा शारीरिक सुख, किसी युवक का प्रेम, उससे प्रेमालाप अधिक रुचिकर था।

उपन्यास के प्रथम भाग के दूसरे परिच्छेद में उर्मिला का उल्लेख होने से प्रतीत होता है कि यह उपन्यास की कोई महत्वपूर्ण नारी–पात्र होने वाली है किन्तु आगे चलकर उसका केवल एक बार उल्लेख होता है कि उसका विवाह हो गया और फिर वह विधवा हो गयी। सत्रहवें परिच्छेद में शरणार्थियों की भीड़ में वह जालंधर में दिखायी देती है। पुरी ने उसे देखा– वह बिलकुल बदल गयी थी। यदि उसे नारंग परिवार के साथ न देखता तो पहचान भी न पाता। उसने पुरी की ओर एक बार भी नहीं देखा। वह ऐसी हो गयी थी मानो आग की तीव्र लपट बुझ सी गयी हो। इसके बाद उपन्यास के दूसरे भाग के प्रथम परिच्छेद में फिर

उर्मिला दिखायी देती है। जालन्धर में रहते हुए पुरी को नारंग परिवार मिल जाता है। वह उस परिवार को अपने प्रेस वाले मकान में ले आता है। यहाँ उर्मिला विधवा रूप में अत्यधिक उदास, निरीह और मुर्झाई हुई सी दिखायी देती है। उसका शोक में आत्म–विस्मृत रूप बड़ा करुण प्रतीत होता है। वह इस भयंकर परिस्थिति में आत्म–उपेक्षा से जड़ सी बनी रहती है। वह पुरी के प्रति कोई आकर्षण का भाव नहीं प्रकट करती। उसकी इस स्थिति से पुरी स्वयं उसकी ओर आकर्षित होता है। पुरी के प्रति उर्मिला के मन में जो गाँठ पड़ गयी थी वह खुल नहीं पाती है। वह अपने दुःख में कभी–कभी रो भी लिया करती है। पुरी के बार–बार के प्रयत्नों से उर्मिला का रोना रूक जाता है और वह साधारण ढंग से रहने लगती है।

यहाँ उर्मिला के जीवन में फिर एक मोड़ आया। वह फिर अपने यौवन के प्रवाह में बहने लगी। पुरी के साथ वह फिर चुहल करने लगी। उसके मुख पर पुलक और किलक की मादकता दिखायी देने लगी। उसकी मां को यह व्यवहार अच्छा न लगा। नारंग तो पहले से ही किसी काम की खोज में दिल्ली गये थे, एक दिन उर्मिला की माँ भी अपने पुत्र जगदीश को लेकर दिल्ली चली गयी। उर्मिला पुरी के पास रह गयी। पुरी के आश्वासन पर वह उसकी हो गयी।

उर्मिला की यह स्थिति उसके भोलेपन और कामुक मन को प्रकट करती है। उसने बिना किसी तर्क, वचन या निश्चय के पुरी को अपना सर्वस्व समर्पित कर दिया। वह पुरी की रखैल बनकर रहने लगी। उसे पुरी पर विश्वास हो गया था। पुरी ने एक बार उससे कहा भी कि आर्य समाज या कोर्ट में जाकर विवाह कर लिया जाये किन्तु उस प्रेममयी युवती ने प्यार से पूछा, ''अभी कैसा विवाह होना बाकी है? ...मुझे आप पर पूरा भरोसा है। मुझे अधिकारों का क्या करना है?''

कनक के आने पर उर्मिला को वास्तविकता विदित हुई। वह अवाक् और हताश हो गयी। पुरी ने उसे झूठा आश्वासन दिया और वह मान गयी। उसे नर्स की ट्रेनिंग में भेज दिया गया। वह चुपचाप, बिना किसी विरोध के, बिना अपना अधिकार दिखाये ट्रेनिंग में चली गयी। पुरी ने एक बार उसके प्रेम को ठुकराया तो वह कुछ न बोली, दूसरी बार उसके रूप और यौवन का उपभोग किया तो वह संतुष्ट हुई, फिर जब उसे छोड़ दिया तो कुछ न बोली। उसने हर परिस्थिति

से समझौता–सा कर लिया था। उसने एक और विवाह कर लिया और पुरी के जीवन से सदैव के लिये अलग हो गयी। इतनी ठोकरों के बाद उसे विदित हुआ कि वह जिस मार्ग पर चल रही थी वह सही नहीं था।

उपन्यास में उर्मिला एक अस्थिर मतिवाली, चंचल और विलासप्रिय युवती के रूप में प्रस्तुत हुई है। उसका सम्बन्ध पुरी से होता है और वह उसके तथा कनक के जीवन पर प्रभाव डालती है। कनक ने पुरी को तलाक देने की इच्छा इस कारण भी प्रकट की थी क्योंकि पुरी के जीवन में उर्मिला आ चुकी थी। वह उपन्यास के विकास में थोड़ा–सा ही सहयोग दे पाती है। उसे प्रस्तुत कर उपन्यासकार किसी विशेष उद्‌देश्य की पूर्ति नहीं कर सका। उसने केवल एक साधारण चंचल और कामुक युवती को ही प्रस्तुत किया है। वह एक कली सी मुस्काती है, फूल सी खिलती है और असमय ही मुरझा जाती है।

4.4 निष्कर्ष

'झूठा सच' में पात्रों के निर्माण में लेखक को चमत्कारपूर्ण सफलता मिली है। पात्र इतने सजीव, सहज और सबल हैं कि सहज ही उनसे पाठक का तादात्म्य हो जाता है। समस्त पात्रों का निर्वाह अन्त तक सफल रूप से हुआ है। कहीं भी ऐसा प्रतीत नहीं होता कि अनावश्यक रूप से पात्रों को लिया गया है। वैसे तो उपन्यासकार को पूर्ण रूप से अधिकार है कि वह जब चाहे किसी पात्र को जन्म दे सकता है और इच्छा होने पर किसी भी समय उसकी जीवन–लीला समाप्त कर दे सकता है। परन्तु कई लेखक सीधे असंगत पात्रों का निर्माण कर देते हैं, परन्तु एक सिद्धहस्त लेखक की कृति होने के कारण यशपाल के उपन्यास इस दोष से मुक्त हैं। 'झूठा सच' के सर्वश्रेष्ठ उपन्यास होने का यह भी एक प्रधान कारण है।

4.5 कठिन शब्द

1. धरातल
2. उच्छृंखलता
3. निष्क्रिय
4. उज्ज्वल

5. सहिष्णुता

6. अव्यवहारिकता

7. विकेन्द्रीकरण

8. केन्द्रीकरण

9. कौतुहल

4.6 अभ्यासार्थ प्रश्न

प्र1) 'झूठा सच' में जयदेव पुरी के चरित्र की श्रेष्ठताओं और दुर्बलताओं का चित्रण कीजिए।

____

____

____

____

____

प्र2) डॉ. प्राणनाथ के चरित्र की विशेषताएँ लिखिए।

____

____

____

____

____

प्र3) तारा का चरित्र–चित्रण कीजिए।

____

____

प्र4) यशपाल ने तारा के माध्यम से आधुनिक नारी का सही रूप प्रस्तुत करने में कहाँ तक सफलता पायी है?

प्र5) ''कनक एक आदर्श नारी बनते–बनते अति साधारण नारी ही बन कर रही गयी।'' इस कथन की समीक्षा कीजिए।

प्र6) 'झूठा सच' उपन्यास में उर्मिला का क्या महत्व है? स्पष्ट कीजिए।

4.7 पठनीय पुस्तकें

1. झूठा सच – भाग–1, भाग–2 – यशपाल
2. यशपाल का औपन्यासिक–शिल्प – प्रो0 प्रवीण नायक
3. यशपाल के उपन्यासों का मूल्यांकन – डॉ0 सुदर्शन मल्होत्रा
4. यशपाल का उपन्यास साहित्य – डॉ0 सरोज बजाज
5. यशपाल के उपन्यास – डॉ0 प्रमोद पाटिल
6. भारत विभाजन और हिन्दी उपन्यास – डॉ0 अंजु देशवाल
7. झूठा सच – यशपाल (छत्रोपयोगी संस्कार)
8. मेरी तेरा उसकी बात – यशपाल
9. यशपाल के उपन्यास : सामाजिक कथ्य – चमनलाल गुप्ता
10. यशपाल साहित्य में काम चेतना – डॉ0 शकुंतला चहवान
11. आठवें दशक की हिन्दी कहानियों में सामाजिक बोध – डॉ0 नामदेव नान्देडी
12. यशपाल – अभिनन्दन ग्रन्थ – श्री महेन्द्र
13. यशपाल का कथा साहित्य – प्रकाशचन्द्र मिश्रा
14. मार्क्सवाद और उपन्यासकार यशपाल – डॉ0 पारस नाथ मिश्रा

****

'दिव्या' उपन्यास का कथानक

5.0 रूपरेखा

5.1 उद्देश्य

5.2 प्रस्तावना

5.3 'दिव्या' उपन्यास का कथानक

5.4 सारांश

5.5 कठिन शब्द

5.6 अभ्यासार्थ प्रश्न

5.7 संदर्भग्रंथ/पुस्तकें

5.1 उद्देश्य

प्रस्तुत आलेख के अध्ययनोपरांत आप 'दिव्या' उपन्यास के कथानक से परिचित हो सकेंगे।

– यशपाल की लेखन दृष्टि व रचना प्रक्रिया से अवगत होंगे।

– हिन्दी भाषा के महत्व को जान सकेंगे।

5.2 प्रस्तावना

यशपाल का साहित्यिक व्यक्तित्व एक ऐसे साहित्यकार का व्यक्तित्व था जो

जीवनपर्यंत अपने लेखन को सामाजिक धरातल से संपृक्त किए रहा। यशपाल प्रेमचंद परंपरा के एक समर्थ यथार्थवादी कथाकार हैं। वे हिन्दी कथा साहित्य के एक शलाकापुरुष थे। कथासाहित्य को उनकी देन अविस्मरणीय है। यहां हम 'दिव्या' उपन्यास के कथानक पर प्रकाश डालेंगे।

5.3 'दिव्या' उपन्यास का कथानक

उपन्यास की कथा का प्रारंभ मद्र राज्य की सागल गणपरिषद द्वारा आयोजित 'मधुपर्व' से होता है, जिसमें सागल के द्विजकुल की कन्या, महापंडित देवशर्मा की प्रपौत्री और राजनर्तकी मल्लिका की शिष्या दिव्या को सर्वश्रेष्ठ नृत्यकला के प्रदर्शन पर 'सरस्वती पुत्री' तथा दासपुत्र पृथुसेन को सर्वश्रेष्ठ 'खड्गधारी' की उपाधि से सम्मानित किया जाता है। पृथुसेन की विजय से जहां एक ओर अभिजातवर्गीय युवकों के मन में ईर्ष्या उत्पन्न होती है, वहां दूसरी ओर दिव्या पृथुसेन के प्रति आकर्षित होती है और दोनों धीरे–धीरे प्रगाढ़ प्रणयसूत्र में बंधते चले जाते हैं। इसी बीच यवन नृपति केंद्रस का आक्रमण होता है। युद्ध में जाने से पूर्व पृथुसेन दिव्या से मिलता है और विवाह का वचन देने पर दिव्या विश्वासपूर्वक पृथुसेन के समक्ष आत्मसमर्पण कर देती है। युद्ध से वापस आने पर पृथुसेन को अपने पिता की आज्ञा से सीरो से विवाह करने के लिए विवश होना पड़ता है। दिव्या पृथुसेन द्वारा प्रदत्त गर्भ धारण कर चुकी थी, अतः पृथुसेन–सीरो के विवाह से उसे गहरा आघात लगता है। लज्जा और ग्लानिवश वह सागल छोड़कर चली जाती है। यहां से दिव्या के जीवन की नारकीय यात्रा प्रारंभ होती है। दास व्यापारी प्रतूल के हाथों में पड़कर वह एक से दूसरे व्यक्ति के हाथ बिकती अनेक यंत्रणाएं तथा अत्याचार भोगती है। यहां तक कि इनसे मुक्ति हेतु वह आत्महत्या का भी प्रयास करती है, किंतु नर्तकी रत्नप्रभा द्वारा बचा ली जाती है और फिर अंशुमाला नर्तकी के रूप में रसिक समाज के मन बहलाने का साधन बन जाने के लिए बाध्य होती है।

परंतु उसकी कथा यहीं समाप्त नहीं होती और नियति उसे पुनः सागल ले जाती है। सागल का अभिजात समाज दिव्या को एक वेश्या के रूप में स्वीकार करने के लिए तैयार नहीं होता। निराश होकर दिव्या एक पांथशाला में शरण लेती है, जहां आचार्य रुद्रधीर, पृथुसेन (जो अब बौद्ध भिक्षु बन चुका था) और दार्शनिक मारिश पहुंच कर दिव्या के समक्ष प्रणय निवेदन करते हैं। रुद्रधीर

दिव्या को महारानी बनाने का प्रलोभन देता है, पृथुसेन उसके समक्ष बौद्ध संघ में आने का प्रस्ताव रखता है और मारिश उसे अपने दुख–सुख की साथिन के रूप में स्वीकार करना चाहता है। वह स्पष्ट रूप से दिव्या से कहता है कि संसार के धूलिधूसरित मार्ग का वह पथिक है। नश्वर जीवन को संतोष की अनुभूति वह दे सकता है। संतति की परंपरा के रूप में मानव की अमरता वह दे सकता है। अंततः दिव्या मारिश का प्रणय निवेदन स्वीकारती है। संक्षेप में यह 'दिव्या' का कथानक है।

यशपाल स्वीकार करते हैं कि 'इतिहास विश्वास की नहीं, विश्लेषण की वस्तु है। इतिहास मनुष्य का अपनी परंपरा में आत्मविश्लेषण है'। 'दिव्या' की कथावस्तु के अंतर्गत लेखक ने अपने उक्त कथन को विश्लेषित करने का पूरा प्रयास किया है। जैसा कि हम कह चुके हैं कि प्रस्तुत उपन्यास में ईसा पूर्व दूसरी शताब्दी के भारतीय समाज का यथार्थ चित्र है। लेखक ने तत्कालीन भारतीय समाज के विशद अध्ययन के लिए अपनी कल्पना के आधार पर घटनाओं तथा पात्रों की सृष्टि की है और उस समय के व्यक्ति और समाज की प्रवृत्तियों तथा संघर्षों का विश्लेषणात्मक परिचय दिया है।

'दिव्या' की कथावस्तु को देखने पर जो पहली और प्रमुख छाप मन पर पड़ती है, वह उसकी समस्यामूलकता एवं यथार्थ आकृति से संबंध रखती है। मात्र कथा कहना तथा पाठकों का मनोरंजन करना यशपाल का ध्येय कभी नहीं रहा। उनके उपन्यासों की कथावस्तु स्वभावतः समस्यागर्भ होती है। मनुष्य जीवन तथा समाज के बारे में चलने वाले अपने चितन को उनकी यथार्थ समस्याओं के साथ वे अपने उपन्यासों की कथा वस्तु में अभिव्यक्ति देते हैं। उनके उपन्यासों की कथावस्तु निश्चय ही पाठक को अपनी पकड़ में ले लेती है, किंतु 'दिव्या' की कथावस्तु कुछ अधिक विशिष्ट है। यह इतिहास के प्रति हमारी मोहाकुल धारणा को न केवल एक झटके के साथ तोड़ती है बल्कि हमें अपने अतीतकालीन इतिहास के एक यथार्थ और ऐसे रूप से परिचित करती है, जिसे तथा–कथित भारतीय दृष्टिसंपन्न इतिहासकारों तथा साहित्यकारों ने हमारे सामने से जान–बूझकर न केवल हटा देना चाहा है, उसके स्थान पर हमें उसके कल्पित रूपों में उलझाए रखने की कोशिश भी की है। 'दिव्या' की कथावस्तु का यह पहलू उसका सर्वाधिक महत्वपूर्ण पहलू है। हमने 'दिव्या' की समस्यागर्भ कथावस्तु को यशपाल के दूसरे उपन्यासों की तुलना में कुछ

विशिष्ट कहा है। इसके कई कारण हैं, जिनमें सबसे प्रमुख कारण यह है कि 'दिव्या' की कथावस्तु के अंतर्गत लेखक ने समस्याओं को न केवल उनकी परंपरागत क्रमिकता के साथ प्रस्तुत किया है वरन् अधिक गहराई में जाकर उनका विश्लेषण भी किया है। यशपाल के इस उपन्यास की कथावस्तु उनके दूसरे उपन्यासों की कथावस्तु से इस अर्थ में भी विशिष्ट है कि इसके अंतर्गत लेखक ने अपने दूसरे उपन्यासों की भांति पूंजीवादी समाज व्यवस्था की विकृतियों के स्थान पर इतिहास के दासयुग को प्रत्यक्ष किया है। मार्क्स और एंगिल्स ने कम्युनिस्ट पार्टी का घोषणा पत्र तैयार करते हुए प्रारंभ में ही कुछ महत्वपूर्ण स्थापनाएं दी हैं:

> ''अभी तक आविर्भूत समस्त समाज का इतिहास वर्गसंघर्षों का इतिहास रहा है। स्वतंत्र मनुष्य और दास, पेट्रेशियन और प्लेबियन, सामंत और भूदास, शिल्प संघ का दक्ष कारीगर और श्रमिक–संक्षेप में उत्पीड़क और उत्पीड़ित बराबर एक दूसरे का विरोध करते आए हैं। वे कभी छिपे कभी प्रकट रूप से लगातार एक दूसरे से लड़ते रहे हैं, जिस लड़ाई का अंत हर बार या तो पूरे समाज के क्रांतिकारी पुनर्गठन में या संघर्ष दोनों ही वर्गों की बरबादी में हुआ है।''

मार्क्स और एंगिल्स की यह स्थापना इस तथ्य को स्पष्ट सूचित करती है कि जिस वर्ग–संघर्ष एवं वर्ग विषमता के दर्शन हमें आज की पूंजीवादी समाज व्यवस्था में होते हैं,वह एक ऐतिहासिक निरंतरता से संबंध रखती है। यह दूसरी बात है कि वर्ग विषमता और वर्गों का संघर्ष प्राचीन समाज व्यवस्थाओं की तुलना में पूंजीवादी समाज व्यवस्था के अंतर्गत न केवल अधिक तेज हो गया है, वरन् सतह पर आ गया है। यशपाल के 'दिव्या' उपन्यास की कथावस्तु प्राचीन युग संदर्भों में वर्ग संघर्ष और वर्ग विषमता के उस सत्य को सामने रखती है, जिसका उल्लेख मार्क्स और एंगिल्स ने कम्युनिस्ट पार्टी के घोषणा–पत्र में किया है। वर्ग विषमता और उसके फलस्वरूप चलने वाला वर्ग–संघर्ष 'दिव्या' की कथा वस्तु का प्राणतत्व है। उसकी सारी समस्या गर्भिता इसी वर्ग विषमता और वर्ग–संघर्ष की देन है। 'दिव्या' की कथा वस्तु का विवेचन करते हुए हम सर्वप्रथम उसके इसी पक्ष पर विचार करेंगे।

मद्र यों तो एक गणराज्य था, किंतु शासनकर्ता सामंती संस्कारों से युक्त

अभिजात–वर्ग के ही लोग थे। वर्णाश्रम धर्म की महत्ता को संरक्षण देते हुए समूचा सामाजिक जीवन गतिशील था। सारा समाज कुलीन और अकुलीन दो वर्गों मे विभक्त था। ब्राह्मण, क्षत्रिय और वैश्य कुलीन वर्गों से संबंधित थे तथा शूद्र और दास अकुलीन। वर्गव्यवस्था की आड़ में कुलीनों द्वारा अकुलीनों का शोषण चल रहा था। अकुलीन सामाजिक अधिकारों से वंचित, गुणी, वीर एवं योग्य होने के बावजूद, उपेक्षित थे। उपन्यास के अंतर्गत लेखक ने शोषित वर्गों के अभिशप्त जीवन को बड़े मार्मिक रूप में प्रस्तुत किया है। यही नहीं, लेखक ने समाज में अपनी प्रतिष्ठा बनाने, कुलीन वर्गों की भांति संपन्न बनने की अकुलीनों की अंतर्निहित इच्छा, सक्रियता और संघर्ष को भी बड़ी स्पष्टता के साथ प्रस्तुत किया है।

लेखक द्वारा चित्रित समाज अनेक विसंगतियों से ग्रस्त है। अभिजात वर्ग अपने अधिकार मद में न केवल स्वार्थी हो चुका है, समाज की पतनोन्मुख स्थिति के प्रति भी वह उपेक्षा भाव रखता है। जन सामान्य की दरिद्रता तथा अभिशप्त जिंदगी के प्रति भी उसके मन में कोई सहानुभूति नहीं है। निरंतर उपेक्षा का शिकार बने निम्न वर्णों के लोग आत्मकेंद्रित हो गए हैं। उन्हें अपने राज्य तक की कोई चिंता नहीं है। गणराज्य पर जब केन्द्रस का आक्रमण होता है तो वे मद्यपान करते हैं और कहते हैं कि 'केन्द्रस हमें क्या लूटेगा, उससे पूर्व मद्र के राजपुरुष ही हमें लूट लेंगे।' शासकीय नीतियों से त्रस्त सामान्य जनों की पीड़ा की इससे अधिक चुभती हुई अभिव्यक्ति और क्या हो सकती है? राजपुरुषों का दमनचक्र सामान्य जनता के मन में ब्राह्मण धर्म द्वारा शासन के प्रति इतनी गहरी वितृष्णा भर देता है कि उसका अनुमान एक नागरिक के निम्नलिखित कथन से लगाया जा सकता है। ब्राह्मण धर्म पर और राजपुरुषों की अनियंत्रित अधिकार भावना पर व्यंग्य करता हुआ नागरिक कहता हैः

''कुत्ता कुत्तों को काटता है और मालिक के अन्न की रक्षा करता है, जैसे हम तुम राजपुरुषों की प्रसन्नता के लिए एक दूसरे का हनन करते हैं। मित्र, तुम्हारी कटि पर भी राजपुरुष की मुद्रा का पट्टा बंध जाय तो जानते हो क्या होगा? तुम भी ड्योढ़ी पर बंधे कूकर की भांति पथ पर चलने वाले कूकर पर गुर्राओगे। देखो, स्वयं खाने से उतना पुण्य नहीं, जितना ब्राह्मण की खिलाने से। जानते हो क्यों, ब्राह्मण देवता का कूकर है।''

यों तो तत्कालीन समाज व्यवस्था का भवन ही कुलीनों द्वारा अकुलीनों के शोषण की नींव पर टिका था, किंतु शोषित वर्गों में भी सबसे निरीह स्थिति दासवर्ग और नारी की थी। उपन्यास के अंतर्गत दासवर्ग तथा नारी के अभिशप्त जीवन का बड़ा विशद एवं मार्मिक चित्रण किया गया है। एक दृष्टि से देखा जाए तो सारा उपन्यास नारी पर होने वाले शोषण की गाथा से परिपूर्ण है।

लेखक ने दास जीवन को उस युग के सबसे बड़े अभिशाप के रूप में चित्रित किया है। समाज व्यवस्था में दासों का दर्जा इतना नीचा है कि गुणसंपन्न, वीर और पराक्रमी होने के बावजूद पृथुसेन इसीलिए दिव्या की शिविका में कंधा देने का अधिकारी नहीं माना जाता कि वह एक दास पुत्र है। दासों को जिस प्रकार पशुओं की तरह खरीदा और बेचा जाता है, इसका अत्यंत सजीव चित्रण लेखक ने किया है। दिव्या स्वतः ब्राह्मणपुत्री होने के बावजूद, घटनाक्रम में फंसकर दासी के रूप में बेच दी जाती है। दिव्या के विक्रय के समय बेचने वालों और खरीदने वालों के बीच जो वार्तालाप होता है, उससे दासों के निरीह जीवन का सही अनुमान लगाया जा सकता हैः

> 'क्या कहते हो मित्र?' अत्यंत विस्मय से नेत्र फैलाकर प्रतूल ने ऐसे अनसुने अन्याय का विरोध किया—'क्या तुम उसके अवयवों का लास्य, उसका चंपाकली सा वर्ण नहीं देखते? गर्भिणी होने के कारण मलिन है तो क्या? यह नहीं देखते कि एक के मूल्य में दो जीवन पा रहे हो। और फिर यह मलिनता कितने काल तक रहेगी? माणिक पर धूल रहने से क्या वह माणिक नहीं रहता? उसके नेत्र और वर्ण', भूधर के कान के समीप मुंह ले जाकर प्रतूल ने कहा, 'शुद्ध रक्त को लजाते हो। किस राजकुमारी से कम है? मैं जानता हूं, चार मास पश्चात् तुम उसके पांच सौ स्वर्ण मुद्रा पाओगे।'

दासों को अपनी संतान का पालन करने का अधिकार तक उस समाज में नहीं है। दासों की संतान भी दास के रूप में परिगणित होती है। दिव्या का एक व्यक्ति के बाद दूसरे से तीसरे को बेचा जाना दास जीवन की करुण कथा को उभार कर रख देता है। समाज व्यवस्था इतनी कठोर है कि दासों के समक्ष अपने अभिशप्त जीवन में मुक्ति पाने के हेतु मृत्यु के अतिरिक्त कोई मार्ग नहीं है।

दासों के समान ही तत्कालीन समाज व्यवस्था में नारी की स्थिति भी अत्यंत दयनीय है। उपन्यास की सारी कथा वस्तु, जैसा कि हम कह चुके हैं, अभिशप्त नारी जीवन को ही मूर्त करती है। दिव्या जीवन भर व्यवस्था के अभिशापों को भोगती है। कुलीन वंश से संबंधित होने पर भी नारी होने के नाते व्यवस्था के शोषणपाश से वह मुक्त नहीं हो पाती। वैयक्तिक और सामाजिक दोनों स्तरों पर उसे शोषण का लक्ष्य बनना पड़ता है। पृथुसेना से प्रेम करते हुए भी वह इस कारण विवाह नहीं कर पाती कि पृथुसेना दास पुत्र है और वर्णव्यवस्था ब्राह्मण पुत्री दिव्या को उससे विवाह करने की अनुमति नहीं देती। गर्भवती हाने पर, समाज द्वारा लगाए जाने वाले कलंक से आतंकित वह घर छोड़ने पर मजबूर होती है। नाना प्रकार की यंत्रणाओं को भोगते हुए वह दर–दर भटकती है किंतु पुरुषों द्वारा गढ़ी गई समाज व्यवस्था में उसे न तो दुःखों से मुक्ति मिल पाती है और न ही उसे सम्मानपूर्वक जीवन बिताने की इजाजत ही दी जाती है। सब प्रकार के अभिशप्त और कलंकित लोगों को अपनी शरण में लेने वाला बौद्ध धर्म भी नारी होने के नाते उसे शरण देने से इनकार कर देता है। आत्महत्या ही मुक्ति का एक मात्र माध्यम रह जाता है। एक दूसरा माध्यम भी बचता है और वह है वेश्यावृत्ति स्वीकार लेना। तत्कालीन समाज वेश्या को स्वतंत्र नारी के रूप में मान्यता देता है, कारण वेश्या के रूप में उसे अपने मनोरंजन का एक स्थाई साधन बनाए रखने की आवश्यकता प्रतीत होती है। दिव्या अंततः वेश्या जीवन को ही अंगीकार करती है। उसका यह कथन नारी की निरीह स्थिति को एक दम स्पष्ट कर देता हैः 'परंतु एक ब्राह्मण पुत्री को वेश्या जीवन अपनाते देख ब्राह्मणों के समक्ष अपनी प्रतिष्ठा का प्रश्न उपस्थित होता है और वे एक स्वर से दिव्या द्वारा वेश्या जीवन स्वीकार किए जाने का विरोध करते हैं। चूंकि तब तक दिव्य नारी जीवन के कटु यथार्थ को काफी कुछ भोग चुकी थी, अतः वह पहली बार दृढ़ता के साथ अपनी अस्तित्व रक्षा के लिए खड़ी होती है। वेश्या जीवन अंगीकार कर लेने पर पुरुष वर्ग उसके चरणों पर लोटने लगता है। कथा वस्तु में दिव्या के माध्यम से नारी जीवन के संपूर्ण अभिशापों को पूरी संवेदना और स्पष्टता के साथ प्रस्तुत किया गया है।

'दिव्या' में विभिन्न विचारधाराओं का संघर्ष

कथावस्तु के अंतर्गत लेखक ने तत्कालीन युग की तीन प्रमुख विचारधाराओं को

प्रस्तुत किया है। वर्ग और वर्ण संघर्ष के साथ साथ कथावस्तु विचारधाराओं के इस संघर्ष को प्रस्तुत करती है। एक ओर वर्णव्यवस्था को सर्वोपरि मानने वाला ब्राह्मण धर्म है, दूसरी ओर निर्वाण को प्रमुखता देने वाला ब्राह्मण धर्म का विरोधी बौद्ध धर्म है, तीसरी ओर घोर नास्तिक, निवृत्ति विरोधी धारा चार्वाकदर्शन की है। ब्राह्मण धर्म का प्रतिनिधित्व रुद्रधीर जैसे अभिजातवर्गीय व्यक्ति करते हैं, स्थविर चीवुक और पृथुसेन बौध धर्म के प्रतिनिधि हैं, तथा मारिश चार्वाकदर्शन का अनुयायी है। विरोधी विचारधाराओं के इस संघर्ष में लेखक ने स्वभावतः अपनी दार्शनिक आस्थाओं के अनुरूप चार्वाकदर्शन एवं मारिश का पक्ष लिया है। ब्राह्मण धर्म के दंभ को और उसके कट्टर विचारों को लेखक ने आचार्य रुद्रधीर के इस कथन द्वारा स्पष्ट किया हैः 'वंश और कुल मनुष्य की शक्ति से ऊपर देवता की कृति है। मनुष्य न कुछ दे सकता है, न कुछ छीन सकता है।' लेखक की सहानुभूति भले ही मारिश और उसके भौतिक दर्शन के प्रति हो, किंतु तत्कालीन व्यवस्था में किस प्रकार कर्मफल, पुनर्जन्म और परलोक आदि को महत्व देने वाले ब्राह्मण धर्म का प्रभुत्व था, इसे लेखक ने विस्तार से चित्रित किया है। बौद्ध धर्म को लेखक ने निवृत्तिमूलक धर्म के रूप में प्रस्तुत किया है जो आसक्ति और मोह को भ्रम और माया तथा अनासक्ति में शांति, निर्वाण और चिरंतन सुख देखता है। ब्राह्मण धर्म की ही भांति लेखक ने उपन्यास में बौद्ध धर्म की भी आलोचना की है। विचारधाराओं के संघर्ष को विशदता के साथ चित्रित करते हुए लेखक ने अंततः संसार को सत्य मानने वाले और जीवन को सुखी बनाने के लिए संघर्ष को महत्व देने वाले भौतिकवादी दर्शन के प्रति अपनी आस्था व्यक्त की है।

उपन्यास की कथावस्तु इस प्रकार अपने युग की नाना समस्याओं को बड़े यथार्थ संदर्भों में प्रस्तुत करती है। ऐतिहासिक यथार्थ का निरूपण कथावस्तु के अंतर्गत बड़े प्रभावशाली रूप में हुआ है। घटनाचक्र के बीच से न केवल उस युग का यथार्थ चित्र ही हमारे समक्ष स्पष्ट हुआ है, लेखक की अपनी आस्था भी क्रमशः मूर्त होती गई है। कथावस्तु की समस्त घटनाएं अंततः लेखक की अपनी इसी आस्था को मूर्त करने के लिए संचालित होती हैं। इस दृष्टि से देखा जाए तो उपन्यास की कथावस्तु उद्देश्यपरक कही जाएगी यद्यपि इस उद्देश्यपरकता की उपलब्धि लेखक ने कथावस्तु की कलात्मकता को सुरक्षित रखते हुए की है। 'दिव्या' की कथावस्तु गंभीर सामाजिक तथा

मानवीय प्रश्नों को, ऐतिहासिक संदर्भ में उठाती है। ये गंभीर प्रश्न और उन पर होने वाला चिंतन यदा कदा कथा के सहज प्रवाह को बाधित करता है, किंतु अधिकांशतः कथासूत्र का आकर्षण बना ही रहता है। कथासूत्रों के संगठन एवं संयोजन में लेखक ने अपनी सर्जनात्मक कल्पना तथा यथार्थबोध से भरपूर काम लिया है।

5.4 सारांश

समग्रतः 'दिव्या' की कथावस्तु आकर्षक घटनाक्रम से परिपूर्ण, गंभीर प्रश्नों को ऐतिहासिक यथार्थ के संदर्भ में ईमानदारी के साथ प्रस्तुत करने वाली व्यवस्थित कथावस्तु है। यह कथावस्तु लेखक के श्रम और साधना का भी सराहनीय परिचय देती है।

5.5 कठिन शब्द

1 नृत्यकला

2 अभिजातवर्गीय

3 ग्लानिवश

4 यंत्रणाएं

5 पांथशाला

6 प्रलोभन

7 धूलिधूसरित

8 संतति

9 सृष्टि

10 कल्पित

5.6 अभ्यासार्थ प्रश्न

1. 'दिव्या' उपन्यास के कथानक पर प्रकाश डालिए।

———————————————————————————————

____

____

____

5.7 संदर्भग्रंथ / पुस्तकें

1. यशपाल : व्यक्तित्व और कृतित्व, रामव्यास पाण्डेय / श्रीनिवास शर्मा (संपा.), कलकताः मणिमय प्रकाशन, प्रथम संस्करण, 1978.
2. प्रकाशचन्द्र मिश्र, यशपाल का कथा साहित्य, नयी दिल्ली : मैकमिलन कंपनी ऑफ इंडिया, 1978.
3. यशपाल, दिव्या, लोकभारती प्रकाशन, 2004.
4. यशपाल के उपन्यासों में नारी चेतना, डॉ. सुमन शर्मा, जयपुर : पैराडाइज़ पब्लिशर्स, 2011.

****

'दिव्या' उपन्यास में ऐतिहासिकता

6.0 रूपरेखा

6.1 उद्देश्य

6.2 प्रस्तावना

6.3 'दिव्या' उपन्यास में ऐतिहासिकता

6.4 सारांश

6.5 कठिन शब्द

6.6 अभ्यासार्थ प्रश्न

6.7 संदर्भग्रंथ/पुस्तकें

6.1 उद्देश्य

प्रस्तुत आलेख के अध्ययनोपरांत आप 'दिव्या' उपन्यास का परिचय प्राप्त कर सकेंगे।

– यशपाल की लेखन दृष्टि व रचना प्रक्रिया से अवगत होंगे।

– हिन्दी भाषा के महत्व को जान सकेंगे।

– 'दिव्या' की ऐतिहासिकता से परिचित होंगे।

6.2 प्रस्तावना

इतिहास के स्वरूप को समझना कोई आसान कार्य नहीं है। इतिहास कोई बिलकुल नयी चीज़ भी नहीं है। इतिहास से मनुष्य का नाता अति पुरातन है। हमारे सारे संस्कार, हमारा सारा व्यवहार, हमारी सारी संस्कृति, हमारी सारी नीति अतीत से चली आ रही एक अनवरत धारा है। उसको हम उसकी अखण्डता में ही देख सकते हैं। बिना अतीत को समझे उसके वर्तमान स्वरूप को नहीं समझ सकते हैं। कहने की आवश्यकता नहीं है कि मनुष्य एक सामाजिक प्राणी है, लेकिन वह मात्र सामाजिक प्राणी ही नहीं है, वरन् वह जितना समाज से सम्बद्ध है, उतना ही इतिहास से भी। उसकी सामाजिकता के निर्माण में इतिहास का विशेष योगदान है। यहां हम 'दिव्या' उपन्यास का ऐतिहासिकता की दृष्टि से अध्ययन करेंगे।

6.3 'दिव्या' उपन्यास में ऐतिहासिकता

रचनाकार जब अपनी कृति का विषय ऐसे जीवन–प्रसंगों को बनाता है, जो इतिहास–धारा के किसी महत्वपूर्ण बिन्दु पर आधारित होते हैं तथा जिनसे सामाजिक यथार्थ के व्यापक संदर्भ उद्घाटित होते हैं, तब निश्चित रूप से रचनाकार द्वारा एक ऐतिहासिक निर्णय लिया जाता है। यह बात सामान्यतः किसी भी सामाजिक यथार्थ पर आधारित कृति के सम्बन्ध में लागू होती है, लेकिन इतिहास को पृष्ठभूमि में रखकर लिखी गई कृतियों में यह खास तौर पर देखा जा सकता है। ऐतिहासिक दृष्टि से सामाजिक, राजनीतिक जीवन का अध्ययन जितना महत्वपूर्ण है, उससे कम महत्वपूर्ण किसी कृति के माध्यम से किसी काल विशेष की सामाजिक, राजनीतिक जीवन–स्थितियों का चित्रण नहीं होता। हिन्दी में इतिहास चेतना को रेखांकित करने के उद्देश्य से ऐसी कृतियों का सृजन कम हुआ है। इसका कारण यह है कि आधुनिक दृष्टि–सम्पन्न रचनाकार प्रायः वैसी कृतियों का सृजन करना चाहते हैं जो अतीत की घटनाओं पर आधारित होने के बावजूद व्यक्ति–सत्ता को केन्द्र में स्थापित करती हैं जिनका प्रभाव इतिहास–चेतना के विकास को बाधित करता है। लेखकों की हिन्दी या हिन्दीतर भाषाओं में किसी भी युग में कभी नहीं रही है। इसके विपरीत इतिहास बोध अथवा इतिहास–चेतना से प्रेरित रचनाकार अपनी कृतियों में अतीत की घटनाओं या जीवन–प्रसंगों को आधार बनाते हुए उन व्यापक

तथ्यों और संदर्भों को सांकेतिक कर देते हैं, जो इतिहास धारा को आगे ले आते हैं।

हिन्दी में ऐसे रचनाकारों की कमी नहीं है, जिनके पास इतिहास को देखने की परम्परित दृष्टि है। वे प्रायः इतिहास की वस्तुओं और घटनाओं के अन्तर्संबंधों के उन मूलभूत कारणों को नहीं देख पाते जिनका वे परिणाम होती है। दूसरी ओर ऐसे भी रचनाकार हैं, जो इतिहास–सत्य को भिन्न दृष्टि से देखने के कारण उनके सही एवं तथ्यात्मक कारण–कार्य–सम्बन्धों का प्रतिपादन नहीं कर पाते। परिमाणतः वे इतिहास को तोड़–मरोड़ कर दिलचस्प रूप में प्रस्तुत करने की कोशिश करते हैं। उनकी इस कोशिश का गहरा प्रभाव पाठक की मानसिकता पर प्रतिकूल रूप में पड़ता है और वे इतिहास को सही रूप में ग्रहण करने के बजाय उसके विकृत रूप को ही ग्रहण करते हैं। ऐसे लेखकों की हिन्दी में लम्बी कतार है। वे बुर्जुआ संस्कृति के पक्षधर लेखक हैं, जो बुर्जुआ मूल्यों को दृष्टि में रखकर साहित्य और कला की रचना करते हैं। इस तरह के साहित्य और कला का सामाजिक चेतना के विकास में कोई योगदान नहीं होता। इसके विपरीत जनता के ऐतिहासिक और सामाजिक अंध–विश्वासों को मजबूत बनाते हैं। इसके पीछे बुर्जुआ संस्कृति का पोषण करने वाली सामंती और पूंजीवादी व्यवस्था सक्रिय होती है। दरअसल मनुष्य का इतिहास अनवरत वर्ग–संघर्ष का इतिहास रहा है। इसलिए इस संघर्ष में सांस्कृतिक स्तर पर साहित्य, कला और धर्म की महत्वपूर्ण भूमिका होती है। सामंती और पूंजीवादी व्यवस्था उनको अपने पक्ष में इस्तेमाल करती है, इसलिए उनके प्रभाव के अन्तर्गत लिखी गई कृतियों के समानान्तर लिखी गई या लिखी जा रही इतिहास चेतना परक रचनाओं के महत्व को समझते हुए उनके सम्यक् प्रचार–प्रसार की आवश्यकता है।

जो रचनाकार इतिहास की घटनाओं और प्रसंगों के आधार पर इतिहास की वस्तुगत व्याख्या प्रस्तुत करते हैं, वे यदि कल्पना का सहारा लेते भी हैं तो उनका अभिप्राय इतिहास को तोड़–मरोड़ कर पेश करना नहीं होता, बल्कि इसके द्वारा वे इतिहास की सही रूप में पुनर्रचना करना चाहते हैं। इस अर्थ में इतिहासकार और रचनाकार दोनों का उद्देश्य अतीत और वर्तमान के अन्तर्संबंधों की सही समझ विकसित करना है। यह बहुत हद तक इतिहास की घटनाओं

और प्रसंगों के विश्लेषण और वस्तुगत व्याख्या पर निर्भर है। इतिहास के विश्लेषण के जरिए जो सामाजिक, राजनीतिक तथ्य उद्घाटित किये जाते हैं इसके पीछे इतिहासकार या रचनाकार की एक सुनिश्चित वैज्ञानिक दृष्टि होती है। कहने की आवश्यकता नहीं कि इसी अर्थ में इतिहास चेतना लेखकीय दृष्टि को विकसित एवं व्यापक बनाती है।

'दिव्या' यशपाल की इसी इतिहास चेतना का प्रतिफलन है। यशपाल के पास इतिहास को देखने की विश्लेषणपरक दृष्टि है। दिव्या की भूमिका में यशपाल ने लिखा है– "इतिहास विश्वास की नहीं विश्लेषण की वस्तु है।" "इतिहास मनुष्य का अपनी परम्परा में आत्म–विश्लेषण है।" यशपाल की इसी दृष्टि से 'दिव्या' में अनुस्यूत ऐतिहासिक घटनाओं और प्रसंगों को देखा जा सकता है। इसका अभिप्राय यह नहीं कि यशपाल नें दिव्या की कथा के जरिये नये इतिहास की रचना की है। यशपाल का इस कृति की रचना के पीछे ऐसा उद्देश्य भी नहीं रहा है, बल्कि उन्होंने भारतीय इतिहास के एक काल विशेष में घटित जीवन–स्थितियों तथा तत्कालीन सामाजिक और राजनीतिक व्यवस्था का चित्र उपस्थित करते हुए उनके मुख्य अन्तरविरोधों को उजागर करने की कोशिश की है। भूमिका में यशपाल ने ईमानदारी पूर्वक यह स्वीकार भी किया है कि– "कला के अनुराग से काल्पनिक चित्र में ऐतिहासिक वातावरण के आधार पर यथार्थ रंग देने का प्रयत्न किया है।" कल्पना का सहारा लेते हुए भी यशपाल 'दिव्या' के रचना–क्रम में पात्रों की ऐतिहासिक–चेतना और उनकी भाषा और परिवेश के सही प्रस्तुतीकरण के प्रति ज्यादा सतर्क रहे हैं। बौद्धकालीन भारत के परिवेश को जीवंत बनाने के लिए लेखक को अजन्ता और एलोरा की गुफाओं तक जाना पड़ा तथा तत्कालीन वेशभूषा और वातावरण का खास तौर पर अध्ययन करना पड़ा। इसलिए 'दिव्या' की ऐतिहासिकता इतिहास की वास्तविक घटनाओं के द्वारा प्रमाणित न होने पर भी ऐसा नहीं लगता कि दिव्या में वर्णित प्रसंग और घटनाएँ काल्पनिक हैं। यह यशपाल की रचना–क्षमता की अपूर्व विशेषता ही है कि उन्होंने कल्पना का सहारा लेकर भी इतिहास सत्य की रक्षा की है। 'दिव्या' के अन्तर्गत चित्रित भारतीय इतिहास के तत्कालीन समाज का परिवेश डी.डी. कोसम्बी के इस कथन से सही प्रमाणिक होता है– "भारतीय समाज की गति सामंतवाद की ओर होने पर नये पौरोहित्य का विकास हुआ, बौद्ध धर्म का विकास हुआ, राजनैतिक और आर्थिक परिवर्तन हुए।"

'दिव्या' में वर्णित घटनाओं और प्रसंगों के आधार पर यह धारणा बनती है मध्यकालीन भारत में बौद्ध धर्म के विकास की स्थिति जहाँ तक पहुँच गई थी, 'दिव्या' में चित्रित काल–खंड के अन्तर्गत उसमें काफी ह्रास आया था और अपने अस्तित्व की रक्षा के लिए वह पूरी तरह राज्याश्रित धर्म बन गया था। पौरोहित्य का बोलबाला था। अतः वर्णाश्रम धर्म पुनर्स्थापित हो चुका था। ब्राह्मणवाद का प्रभाव पूरे समाज पर था। 'दिव्या' के अन्तर्गत एक स्थल पर ब्राह्मणवाद का प्रबल पक्षधर आचार्य रुद्रधीर ब्राह्मणवाद की पुनर्स्थापना की आश्यकता पर बल देते हुए मल्लिका से कहते हैं–"अग्निमूख ब्राह्मण पृथ्वी पर देवता का अंश है। देवी, वह देवता की प्रचण्ड शक्ति का प्रतिनिधि है। क्षत्रिय उस शक्ति की भुजा है। मनुष्य के शरीर को सिर नीचा कर। हाथों के आश्रय चलाने से स्थान भ्रष्ट जंघा और पद भी विरूप और अव्यवस्थित होते हैं, शिर और भुजा भी दलित होते हैं। ब्राह्मण को शासन के सिंहासन पर स्थिर करना प्रजा का धर्म है।"

दूसरी ओर तत्कालीन समाज में मध्यवर्ग तथा निचले तबके के लोगों की सम्मानजनक स्थिति नहीं थी। खासकर नारियों की स्थिति ज्यादा दयनीय थी। दासी के रूप में स्त्रियों की स्थिति परतंत्रता की इस हद तक पहुंच गई थी कि उन्हें अपने स्वामी की अनुमति के बिना मरने का भी अधिकार नहीं था। वे स्वामी के परिवार की सेवा के लिए शरीर धारण किये रहने के लिए आजीवन अभिशप्त थीं। दारा के रूप में दिव्या पुरोहित चक्रधर के बच्चे को दूध पिलाने के लिए दासी का जीवन बिताती है। पुरोहित पुत्र को दूध पिलाने के बाद उसे अपने पुत्र शाकुल के लिए दूध नहीं बचता। इससे वह द्विज पत्नी की दृष्टि की ओट होकर शाकुल को दूध पिलाने का अवसर ढूंढती। द्विज पत्नी, ऐसी स्थिति में, जबकि उसके बच्चे को दूध नहीं मिलता, शाकुल को दारा के सामने कर देती। अपने पुत्र को देखकर दारा के स्तनों से दूध और आँखों से नल बह चलता। इससे पुरोहित पुत्र तृप्त हो जाता। इस तरह दारा की स्थिति उस गाय जैसी थी, जिसके दूध पर उसके बछड़े का नहीं बल्कि उसके मालिक का अधिकार होता है।

यशपाल ने 'दिव्या' में नारी के प्रति बौद्ध धर्म के दृष्टिकोण को लेकर भी अपनी आलोचना–बुद्धि का प्रयोग किया है। धर्मस्त नारी, जो तत्कालीन समाज में

दासी का अभिशप्त जीवन बिताती थी, उसकी मुक्ति के लिए उसके पास कोई समाधान नहीं था। वह संघ की शरण भी लेने के लिए स्वतंत्र नहीं थी, जबकि पुरुषों की बौद्ध धर्म में दीक्षा के लिए ऐसा कोई प्रतिबन्ध नहीं था। इससे उस स्थिति से मुक्त होने के लिए और स्वतंत्र नारी का जीवन जीने के लिए दारा के लिए कोई विकल्प नहीं था। दूसरे, बौद्ध धर्म मानता है कि 'नारी प्रवृत्ति का मार्ग है इसलिए वह भिक्षु धर्म मैं त्याग्य है।' इस दृष्टि से बौद्ध धर्म नारियों के लिए कहीं से व्यावहारिक धर्म नहीं सिद्ध होता। यह आकस्मिक नहीं कहा जा सकता कि यशपाल ने बौद्ध धर्म की नारी के प्रति इस अव्यावहारिक दृष्टि के चलते लोकायत धर्म की उस पर विजय दिखलाई गई है। जहाँ बौद्ध धर्म का कथन है कि 'नारी प्रवृत्ति का मार्ग है, वहाँ लोकायता की मान्यता है कि 'सन्तति की परम्परा के रुप में मानव की अमरता देने के लिए नारी का धर्म निर्वाण नहीं सृष्टि है।' यहाँ दिव्या और मारिश इस बिन्दु पर एक दूसरे का आश्रय ग्रहण करते हैं।

इस तरह दिव्या के प्रसंग और चरित्र काल्पनिक अवश्य हैं, लेकिन उनके माध्यम से ऐतिहासिक परिदृश्यों को सामने लाने का सफल प्रयास किया गया है। यशपाल ने प्राक्कथन में स्पष्ट लिखा है – "दिव्या ऐतिहासिक पृष्ठभूमि पर व्यक्ति और समाज की प्रवृत्ति और गति का चित्र है।" इससे स्पष्ट है कि इस कृति के माध्यम से कुछ ऐतिहसिक तथ्यों और अन्तरविरोधों को उद्घाटित करना यशपाल का अभीष्ट रहा है।

6.4 सारांश

इतिहास चेतना, दिक्–काल के आयामों में मुनष्य के होने की, होते रहने की प्रक्रिया की चेतना है। 'दिव्या' यशपाल का पहला उपन्यास है जिसमें उन्होंने यथार्थ के उद्घाटन के लिए इतिहास को पृष्ठभूमि के रूप में स्वीकार किया है। 'दिव्या' को आलोचकों ने ऐतिहासिक उपन्यास कहा है। 'दिव्या' में द्वन्द्वात्मक इतिहास चेतना है।

6.5 कठिन शब्द

1 अखण्डता

2 रेखांकित

3 सृजन

4 बुजर्वा

5 पुनर्रचना

6 अव्यवस्थित

7 अग्निमूख

8 अव्यावहारिक

6.6 अभ्यासार्थ प्रश्न

1. 'दिव्या' उपन्यास की ऐतिहासिकता पर विचार करें।

____

____

____

____

6.7 संदर्भग्रंथ/पुस्तकें

1. यशपाल : व्यक्तित्व और कृतित्व, रामव्यास पाण्डेय/श्रीनिवास शर्मा (संपा.), कलकताः मणिमय प्रकाशन, प्रथम संस्करण, 1978.
2. प्रकाशचन्द्र मिश्र, यशपाल का कथा साहित्य, नयी दिल्ली : मैकमिलन कंपनी ऑफ इंडिया, 1978.
3. यशपाल, दिव्या, लोकभारती प्रकाशन, 2004.
4. यशपाल के उपन्यासों में नारी चेतना, डॉ. सुमन शर्मा, जयपुर : पैराडाइज़ पब्लिशर्स, 2011.

****

'दिव्या' उपन्यास में नारी

7.0 रूपरेखा

7.1 उद्देश्य

7.2 प्रस्तावना

7.3 'दिव्या' उपन्यास में नारी

7.4 सारांश

7.5 कठिन शब्द

7.6 अभ्यासार्थ प्रश्न

7.7 संदर्भग्रंथ/पुस्तकें

7.1 उद्देश्य

प्रस्तुत आलेख के अध्ययनोपरांत आप 'दिव्या' उपन्यास में चित्रित नारी की भूमिका एवं विविध रूपों से परिचित हो सकेंगे।

– यशपाल की लेखन दृष्टि व रचना प्रक्रिया से अवगत होंगे।

– हिन्दी भाषा के महत्व को जान सकेंगे।

7.2 प्रस्तावना

नारी और साहित्य का शाश्वत संबंध है क्योंकि साहित्य मानव जीवन से पृथक

होकर पनप नहीं सकता। नारी मानव जीवन का प्रमुख पक्ष है। अतः साहित्यकार नारी की उपेक्षा कभी नहीं कर सका। नारी प्रारंभ से ही साहित्यकारों की प्रेरणादायिनी शक्ति रही है। यशपाल ने अपनी संवेदनशील प्रवृति व कल्पना शक्ति के आधार पर अत्यधिक विस्तृत भावभूमि पर नारी पात्रों का चित्रण किया है और उन्हें विविध रंगों रूपों से सुसज्जित कर नवीन अभिव्यक्ति प्रदान की है। 'दिव्या' उपन्यास में चित्रित नारी का वर्णन इस प्रकार है–

7.3 'दिव्या' उपन्यास में नारी

'दिव्या' उपन्यास की दिव्या महापंडित धर्मस्थ देव शर्मा की प्रपौत्री है। ब्राह्मण वर्ग की प्रभुता को सर्वोच्च मानने वाली तत्कालीन समाज व्यवस्था में धर्मस्थ देव शर्मा की प्रपौत्री होने के नाते बचपन से ही दिव्या को अभिजात वर्ग की समस्त सुविधायें होती हैं। माता–पिता से वंचित होने के कारण उसे अपने सारे सगे सम्बन्धियों से विशेष लाड़–प्यार मिलता है। बड़े ही ममतामय और भव्य परिवेश में उसका लालन–पालन होता है। जैसे शुक्ल पक्ष की प्रतिपदा की संध्या में, सूर्य का प्रकाश रहते भी नवचंद्र की रेखा का उदयमलान नहीं होता, प्रकाश का वह अंकुर क्षीण होकर भी दिव्य चंद्रिका का आश्वासन लिये रहता है उसी प्रकार धर्मस्थ के पुत्र पौत्र से समृद्ध और सम्पन्न कुल में कन्या का जन्म उल्लास का कारण हुआ उसके उज्जवल भविष्य के विश्वास से उसे दिव्या पुकारा गया। वह चन्द्र की कलाओं की भांति दिन–दिन दैदीप्यमात होती गयी। दुर्भाग्य से दिव्या के पितामह और पिता माता तीनों ही किसी दैवी प्रकोप से व्याधि द्वारा अकाल में काल कवलित हो गये। उन तीनों के ही भाग का स्नेह ले दिव्या प्रपितामह के समीप अत्यन्त वत्सल हो गयी।

दिव्या राज नर्तकी मचिलकता की शिष्या थी। सर्वश्रेष्ठ नृतय प्रदर्शन के लिए उसे मधु पर्व के अवसर पर सरस्वती, पुत्री की उपाधि भी मिलती है। वह संगीत नृत्य आदि कलाओं में ही निपुण नहीं थी बल्कि वह शास्त्र सम्बन्धी ज्ञान से भी परिपूर्ण थी। 'दिव्या' उपन्यास की दिव्या दास पुत्र प्रभुसेन की वीरता और शौर्य के कारण उसके प्रति आकर्षित होती है। उसे प्रेम करती है। प्रभुसेन से प्रेम करती है, परन्तु विवाह नहीं कर पाती। क्योंकि प्रभुसेन एक दास पुत्र है और वर्ण–व्यवस्था के नियमानुसार एक ब्राह्मण की पुत्री दिव्या दास पुत्र प्रभुसेन से विवाह नहीं कर सकती।

'दिव्या' उपन्यास की दिव्या नारी के परम्परागत शोषण की जीती जागती मिसाल है। दिव्या अपने जीवन के द्वारा इस तथ्य को प्रतिपादित करती है जब तक समाज व्यवस्था आमूल बदल नहीं जाती नारी–जाति शोषण से मुक्त नहीं हो सकती। दिव्या दास पुत्र प्रभुसेन से प्रम करती है उसके गर्भ को सम्भाले घर से निकल पड़ती है। वह महलों में रहने वाली धर्मस्थ की प्रपौत्री न रहकर एक औसत नारी के रूप में हामरे समक्ष आती है। यहां दिव्या दिव्या से दासी बन जाने को विवश होती है। दिव्या के रूप में उसकी विवशता तथा करूणा देखकर हृदय भर जाता है। दास जीवन की मुक्ति पाने के लिए वह बौद्ध धर्म की शरण में पहुँचती है। नर्तनी रत्नप्रभा के साहचर्य में दिव्या का नया जीवन होता है। वह अंशुमाला नर्तकी के रूप में समाज के मन बहलाने का साधन बनती है। नारी के स्वत्व और आम निर्भरता के पक्षपाती यशपाल दिव्या को सामाजिक परिस्थितियों के भंवर में डाल कर उसका भविष्य उसी पर छोड़ देते हैं। दिव्या सामाजिक कुरीतियों, कुप्रथाओं, अत्याचारों को सहन करती हुई इस निष्कर्ष पर पहुँचती है कि वेश्या ही स्वतन्त्र नारी है। दिव्या को वेश्या जीवन अपनाते देख ब्राह्मण समाज अपनी कीर्ति पर कालिख पुत जाने के भय से उसे अपनाने को प्रस्तुत हो जाता है। अंत में वह नारी को प्रवृति का मार्ग मानते हुए धूल–धूसरित मार्ग के पथिक संतति की परम्परा के रूप में मानव को अमरता देने वाले भौतिकवादी, प्रगतिशील पात्र चर्वाक मारिश का आश्रय ग्रहण कर लेती है।

इस प्रकार दिव्या का चरित्र नारी जीवन की निरीहता और करूणता को दर्शाता है उसका चरित्र व्यवस्था के शोषण स्वरूप तथा प्रश्रय देने वाले पुरुष समाज के स्वार्थी एवम् दुष्ट चरित्र का भी उद्‌घाटन करता है। दिव्या परिस्थितियों के हर दबाव को सहती है, साहस से उनका विरोध करना चाहती है, परन्तु अकेली होने के कारण उसका विद्रोह सार्थक भूमियों तक नहीं पहुँच पाता।

'दिव्या' में लेखक ने तत्कालीन समाज व्यवस्था में दास एवम् नारी की अत्यन्त दयनीय स्थिति को, चित्रित किया है। दासों को खरीदा बेचा जाता था। इसी तरह नारी की स्थिति भी अत्यन्त दयनीय थी। दिव्या अभिशप्त नारी जीवन को ही मूर्त करती है। दिव्या जीवन भर व्यवस्था के अभिशापों को भोगती है नारी होने के नाते बौद्ध धर्म भी उसे शरण नहीं देता। दिव्या के लिए तब आत्महत्या ही मुक्ति का एकमात्र मार्ग रह जाता है। एक दूसरा मार्ग भी है और वह है वेश्या वृत्ति स्वीकारना। दिव्या अंततः वेश्यावृति स्वीकार करती है। इस समय का समाज वेश्या

को एक स्वतन्त्र नारी के रूप में मान्यता देता है क्योंकि वेश्या के रूप में उन्हें अपने मनोरंजन का एक स्थायी साधन मिलता है। परन्तु तत्कालीन वर्ण व्यवस्था के अनुसार एक ब्राह्मण पुत्री को वेश्या जीवन अपनाते देख ब्राह्मणों के समक्ष अपनी प्रतिष्ठा का प्रश्न उपस्थित होता है और वे एक स्वर में दिव्या द्वारा वेश्या जीवन स्वीकार किए जाने का विरोध करते हैं। चूंकि तब तक दिव्या नारी जीवन के कटु यथार्थ को काफी कुछ भोग चुकी थी। अतः वह पहली बार दृढ़ता के साथ अपने अस्तित्व रक्षा के लिए खड़ी होती है। वेश्या जीवन अंगीकार कर लेने पर पुरुष वर्ग उसके चरणों पर लौटने लगता है। कथावस्तु में दिव्या के माध्यम से नारी जीवन के सम्पूर्ण अभिशापों को पूरी संवेदना और स्पष्टता के साथ प्रस्तुत किया गया है।

अपनी वैयक्तिक विशेषताओं एवं प्रवृतियों के बावजूद दिव्या लेखक के द्वारा नारी जाति की प्रतिनिधि के रूप में भी प्रस्तुत की गई है। वह नारी के परम्परागत शोषण की जीती जागती मिसाल है और अपने जीवन के द्वारा इस तथ्य को प्रतिपादित करती है कि जब तक समाज व्यवस्था आमूल बदल नहीं जाती, नारी जाति शोषण से मुक्त नहीं हो सकती। व्यवस्था के पंजे इतने मजबूत हैं कि वे हर स्तर पर नारी को अपनी जकड़ में लिए हुए हैं। यहाँ तक कि आत्मनिर्भर होकर भी इस समाज व्यवस्था में उसे वास्तविक मुक्ति नहीं है। कभी वर्ग, कभी वर्ण, कभी उसकी अपनी शारीरिक सरंचना, कभी धर्म, कभी अन्य नाना प्रकार की तथाकथित रीतियों और रूढ़ियों का आश्रय लेकर समाज उसका शोषण करता रहा है और वह मुक्ति की अपनी सारी अंतनिर्हित इच्छा के बावजूद शोषित होती चली आई है। 'दिव्या' में लेखक का अभीष्ट एक ऐसे विशिष्ट नारी चरित्र का निर्माण करना है जो तमाम प्रकार की विषमताओं की प्रतिमूर्ति है और इन विषमताओं को आत्मसात करती हुई वह पूरे समाज की विषमताओं का प्रतिनिधित्व करती है।

पूरे उपन्यास में एक नारी दिव्या ने मन के प्रतिकूल, परिस्थितियों के प्रतिकूल अभियान चलाया है पर कहीं भी सफल नहीं होती। उसके प्रति, समाज के, स्वयं उसके परिवार के संबंधियों के, उसके प्रेमी प्रभुसेन के, उसके स्वामी व्यापारी के, बौद्ध धर्म संघ के और अंत में फिर उसकी जन्म भूमि सागल के नागरिकों के व्यवहार दर्शनीय हैं। समाज के अभिजात वर्ग के प्रति हीन वर्ग या पीड़क के प्रति पीड़ित का संघर्ष दिखलाना ही लेखक का अभीष्ट रहा है। दिव्या उन परिस्थितियों के उतार–चढ़ाव को सहती है और सामाजिक बुराईयों, अत्याचारों को सहन करने के बाद इस निष्कर्ष पर पहुँचती है कि वेश्या ही स्वतन्त्र नारी है। क्योंकि वह उस

परिस्थिति में आत्म निर्भर है, उसे किसी के आश्रय में नहीं रहना पड़ता।

अतः यह कहा जा सकता है कि दिव्या आत्मसम्मान एवं आत्म निर्भरता की भावना से परिपूर्ण सामंती युग की वह नारी है, जिसने अत्याचारों को सहन करके शारीरिक शक्ति के बल से नियति की क्रूरता को ध्वंस किया। वह क्रूर मानव की नृशसता, उसकी अहंवादी प्रवृत्ति एवं स्वत्व की भावना को प्रतिहिंसा की दाहक ज्वाला में भस्म करके, आत्म निर्णय के अधिकार से सबला नारी का आदर्श प्रस्तुत करती है। अतीत की नारी को भी यशपाल ने आधुनिक दृष्टिकोण से चित्रित किया है।

'दिव्या' उपन्यास में लेखक ने तत्कालीन समाज की नीति व्यवस्था वेश्या जीवन की निरर्थकता और नारी की स्वतंत्रता पर प्रकाश डाला है। अंत में दिव्या को सांसारिक मार्ग के पथिक मारिश का आश्रय ग्रहण करवाकर यशपाल जी ने सांसारिक मार्ग की श्रेष्ठता सिद्ध की है। कर्मपथ पर चलने की प्रेरणा देते हुए उनका कहना है, दुख की भ्रान्ति में भी जीवन का शाश्वत् क्रम इसी प्रकार चलता है। वैराग्य भीरू की आत्म प्रवंचना मात्र है। जीवन की प्रवृत्ति प्रबल और असंदिग्ध सत्य है।

इस प्रकार दिव्या साधारण नारी नहीं, वह किसी वर्ग विशेष का प्रतिनिधित्व भी नहीं करती। उसके द्वारा विशेष परिस्थितियों से विवश परन्तु आत्मरक्षा के लिए संकल्प की तरह सुदृढ़ नारी के हाहाकार मय जीवन को सशक्त वाणी दी गई है। दिव्या द्वारा उपन्यासकार नारी की विवशता के प्रति हमारे अंतकरण को उद्‌बुद्ध करता है और नारी समस्या की सामाजिक पृष्ठभूमि की ओर हमारा ध्यान आकर्षित करता है।

दिव्या जैसा कि उपन्यास के नाम से ही लक्षित होता है। इसमें नारी जीवन संबंधी समस्त मूल समस्याओं को दिव्या रत्नप्रभा, छाया और सीरों आदि चरित्रों का निर्माण कर प्रगतिवादी दृष्टिकोण से देखने का प्रयास किया है। दिव्या के अतिरिक्त दोनों ही स्त्री पात्रों का जीवन अपूर्ण, असफल एवं निरर्थक कहा जाएगा।

इस प्रकार इस ऐतिहासिक उपन्यास में हमें यशपाल जी ने ऐतिहासिक काल में नारी की स्थिति का चित्रण करते हुए उसके शोषण का इतिहास बताते हुए उसकी मुक्ति के उपाय बताए हैं। नारी को शोषित करने वाली समाज व्यवस्था के नियमों

को अनुचित सिद्ध करने के नियमों को अनुचित सिद्ध करने का प्रयास किया है। नारी को आत्म निर्णय के आधार पर परिस्थितियों का सामना करने को प्रेरित किया है।

दिव्या की समस्या जिस प्रकार नारी की समस्या है, उसी तरह दिव्या का संघर्ष व्यक्ति से अधिक वर्ण और धर्म से है। सांगल के ब्राह्मण न्याय अधिकारी आचार्य धर्मस्थ की प्रपौत्री, वर्णाश्रम प्रेमी कर्मठ विष्णु शर्मा की पौत्री दिव्या जिसके एक प्रेम कटाक्ष के लिए ब्राह्मण वीर रूद्रधीर लालायित है, निम्नवर्गीय दास पुत्र को प्यार करती है। इस विरोधी स्वच्छंद प्रेम के बीच ऐसी भूमि पर पड़ गए हैं जिसके चारों ओर व्यक्तिगत रूप में रूद्रधीर की लालसा के और ब्राह्मणों के वर्गीय अभिमान्य के कीड़े बिलबिला रहे हैं। इस प्रेम को स्वाभाविक बना देने के यशपाल के प्रयत्न दृष्टव्य हैं। दिव्या का कुलशील वर्ग ही उसकी मुक्ति के मार्ग में बाधक सिद्ध होता है।

यशपाल जी के 'दिव्या' उपन्यास की एकमात्र सीरों ऐसी नारी है जिसको सदैव काम तृष्टि की खोज है। सीरो मद्र के परम भट्टारक गणपति की प्रपौत्री गण परिषद के संवाहक की पुत्रवधु और महापराक्रमी सेनापति प्रभुसेन की पत्नी है। प्रभुसेन की अर्धांगिनी होने का गौरव ही उसे अत्यन्त अहंकारी और उच्छृंखल बना देता है। सीरों हमेशा पति प्रभुसेन की अवहेलना करती है। उसे जीवन भर पति की गुलामी में रहना पसंद नहीं। प्रभुसेन जब पत्नी के व्याभिचार को सहन नहीं कर पाता तब सीरों उसे कहती है– "मैं तुम्हारी दासी नहीं हूँ। तुम मेरे आश्रित हो, मैं तुम्हारी आश्रिता नहीं हूँ। मैं तुम्हारे पिंजरे में बंद सारिका नहीं हूँ – मेरे लिये संसार में केवल तुम ही एक पुरुष नहीं हो ? तुम जैसे अनेक और तुमसे श्रेष्ठ अनेक। यदि तुम मेरा अपमान करोगे, तो मेरे लिए विस्तृत जन समाज है। तुम्हें सेनापति बना सकती हूँ तो दूसरे को भी महासेनापति बना सकती हूँ। सीरों के रूप में एक अहंकारी उच्छृंखल तथा महत्वांकाक्षिणी नारी का चरित्र ही उभरता है। उसके जीवन का उद्देश्य ही केवल भोग और काम है। उसका यह रूप पति–पत्नी के विच्छेद का कारण बनता है।

यशपाल जी ने 'दिव्या' उपन्यास में माँ के उत्कृष्ट वात्सल्य का अत्यन्त मार्मिक रूप उपस्थित किया है। निराश्रिता दिव्या को परिस्थितिवश द्विज पत्नी के बालक को अपना दूध पिलाने का काम स्वीकार करना पड़ता है। अपने ही दूध से अपने ही

बालक को वंचित कर दूसरे बालक की रक्षा करना एक ऐसी विडंबना है जो माँ के मर्म को विदीर्ण कर देती है। दिव्या और कोई उपाय न देखकर द्विज पत्नी की सर्तक दृष्टि से बचाकर अपने शिशु को अपना स्तनपान कराने का अवसर खोजती रहती है। इस प्रसंग के चित्रण में यशपाल जी ने माँ के वात्सल्य की बड़ी ही प्रभावो पार्दक झांकी प्रस्तुत की है। दासी दिव्या अपने बच्चे पर अपना मातृत्व अर्पित करने से वंचित कर दी जाती है। माँ अपनी वात्सल्य भावना से ही प्रेरित होकर संतान की प्रगति और उन्नति के उपाय खोजते रहती है उसकी सदा यही चेष्टा रहती है कि उसकी संतान समर्थ और सच्चरित्र बने, अपने जीवन में यश और सफलता अर्जित करें। इसीलिए वह बचपन से ही अपनी संतान को कर्त्तव्य, अकर्त्तव्य का ज्ञान देती है। उसके आचार–व्यवहार की देखभाल करती है और उसको गलत रास्ते पर नहीं जान देती। इसके लिए यदि उसे कष्ट उठाने पड़े अथवा आत्म त्याग भी करना पड़े तो वह सहर्ष प्रस्तुत करती है।

7.4 सारांश

सारांशतः यशपाल जी के नारी पात्र आधुनिक नारी पात्र हैं जो वर्ग संघर्ष की चेतना के संदर्भ में चित्रित हुए हैं। नारी की अस्मिता, समाज में उसके संघर्ष उसके स्वातंत्र्य, उसके प्रति होने वाले अन्याय के विरोध में जितना यशपाल जी ने लिखा है उतना शायद ही किसी ने लिखा हो। नारी चेतना की दृष्टि से 'दिव्या' एक सफल उपन्यास है।

7.5 कठिन शब्द

1 आश्वासन

2 उदयमलान

3 प्रतिपदा

4 उज्ज्वल

5 क्षीण

6 वत्सल

7 पक्षपाती

8 भंवर

9 निरीहता

10 प्रश्रय

11 अभिशप्त

12 अस्तित्व

13 अंगीकार

7.6 अभ्यासार्थ प्रश्न

1. 'दिव्या' उपन्यास की पात्र परिकल्पना पर विचार कीजिए।

____

____

____

____

7.7 संदर्भग्रंथ / पुस्तकें

1. यशपाल : व्यक्तित्व और कृतित्व, रामव्यास पाण्डेय / श्रीनिवास शर्मा (संपा.), कलकताः मणिमय प्रकाशन, प्रथम संस्करण, 1978.
2. प्रकाशचन्द्र मिश्र, यशपाल का कथा साहित्य, नयी दिल्ली : मैकमिलन कंपनी ऑफ इंडिया, 1978.
3. यशपाल, दिव्या, लोकभारती प्रकाशन, 2004.
4. यशपाल के उपन्यासों में नारी चेतना, डॉ. सुमन शर्मा, जयपुर : पैराडाइज़ पब्लिशर्स, 2011.

****

'दिव्या' उपन्यास में प्रमुख पात्र

8.0 रूपरेखा

8.1 उद्देश्य

8.2 प्रस्तावना

8.3 'दिव्या' उपन्यास में प्रमुख पात्र

8.3.1 पुरुष पात्र

8.3.2. नारी पात्र

8.4 सारांश

8.5 कठिन शब्द

8.6 अभ्यासार्थ प्रश्न

8.7 संदर्भग्रंथ/पुस्तकें

8.1 उद्देश्य

प्रस्तुत आलेख के अध्ययनोपरांत आप 'दिव्या' उपन्यास के प्रमुख पात्रों से परिचित हो सकेंगे।

– यशपाल की लेखन दृष्टि व रचना प्रक्रिया से अवगत होंगे।

– हिन्दी भाषा के महत्व को जान सकेंगे।

8.2 प्रस्तावना

तत्कालीन ऐतिहासिक यथार्थ के प्रति पूरी ईमानदारी बरतते हुए लेखक ने सर्जनात्मक कल्पना का संबल लेकर न केवल एक अत्यंत रोचक एवं महत्वपूर्ण तथा गंभीर समस्याओं और प्रश्नों को प्रस्तुत करने वाली कथावस्तु का निर्माण किया है, वरन उतनी ही संपन्न तथा भरी–पूरी चरित्र सृष्टि भी की है। 'दिव्या' में वास्तविक एवं सजीव पात्रों में वह सारी जीवतंता और गरिमा है जो कि एक यथार्थवादी लेखक की कृति में होनी चाहिए। यहां हम 'दिव्या' उपन्यास के प्रमुख पात्रों पर प्रकाश डालेंगे।

8.3 'दिव्या' उपन्यास में प्रमुख पात्र

तत्कालीन ऐतहासिक यथार्थ के प्रति पूरी ईमानदारी बरतते हुए लेखक ने सर्जनात्मक कल्पना का संबल लेकर न केवल एक अत्यंत रोचक एवं महत्वपूर्ण तथा गंभीर समस्याओं और प्रश्नों को प्रस्तुत करने वाली कथावस्तु का निर्माण किया है, वरना उतनी ही संपन्न तथा भरी–पूरी चरित्र सृष्टि भी की है। कहने को तो कथावस्तु की भांति 'दिव्या' की यह चरित्र सृष्टि भी अपने अभिधार्थ में ऐतिहासिक नहीं है, किंतु वस्तुतः उसमें वास्तविक एवं सजीव पात्रों की वह सारी जीवंतता और गरिमा है जो कि एक यथार्थवादी लेखक की कृति में होनी चाहिए। 'दिव्या' की संपूर्ण चरित्र सृष्टि सोद्देश्य चरित्र सृष्टि है। प्रत्येक पात्र अपनी–अपनी भूमिका में एक दम सार्थक है। 'दिव्या' में चूंकि इतिहास के एक घटना बहुल कालखंड को यथार्थ संदर्भों में प्रस्तुत किया गया है, अतएव उसमें स्वभावतः पात्रों की संख्या अधिक है। फिर भी पात्रों का यह आधिक्य कथावस्तु को बोझिल नहीं बनाता। विवेच्य युग के सार्थक उद्‌घाटन के लिए पात्रों की यह उपस्थिति अनिवार्य थी।

8.3.1 पुरुष पात्र

1. मारिश

उपन्यास के अंतर्गत मारिश का स्वतंत्र एवं सशक्त व्यक्तित्व आदि से अंत तक गतिशील है। उसे लेखक ने प्रगतिशील विचारों का प्रतिनिधि बनाकर प्रस्तुत किया है। मारिश सागल का सर्वश्रेष्ठ मूर्तिकार और दार्शनिक है। उसका दृष्टिकोण पूर्णतः भौतिकवादी है। वह जीवन के संपूर्ण भोग पर

विश्वास करता है। उसकी दृष्टि में यह भौतिक जीवन ही सत्य है अतः इसी जगत में मनुष्य सब कुछ प्राप्त कर सकता है और भोग सकता है। ब्राह्मण धर्म की परलोकवादी धारणा को वह कल्पना और अनुमान के अतिरिक्त और कुछ नहीं मानता। इसी प्रकार संसार को भ्रम और दुखपूर्ण बताकर मानव को वैराग्य का उपदेश देने वाले बौद्ध धर्म का भी वह कटु आलोचक है। जीवन के प्रति मारिश में अटूट आस्था है। निराशा, विरक्ति और पलायन के स्थान पर वह संघर्षमय गतिशील जीवन को ही वास्तविक जीवन मानता है। उसकी दृष्टि में जीवन संघर्ष है और संघर्षों से जूझना ही जीवन की सार्थकता है, पलायन करना सबसे बड़ा अज्ञान और व्यक्ति की निर्बलता है। मनुष्य को वह स्वतंत्र कर्ता के रूप में स्वीकार करता है और स्वतंत्रता का अनुभव ही उसके लिए वास्तविक जीवन है। एक सागल निवासी से वह कहता भी है कि 'पराभूत सजीव होकर भी मृत है, निर्भय हो, जीवन के लिए युद्ध कर। मृत्यु भय का अंत है।'

नियति मानकर सारे अभिशापों को भोगने वाले शोषित वर्गों के प्रति जहां एक ओर मारिश की पूर्ण सहानुभूति है, वहां दूसरी ओर वह उनकी कायरता और नियतिवादी धारणा का आलोचक भी है। सागल निवासी शाण्डेय जब अपने भाग्य पर रोता है तो मारिश स्पष्ट शब्दों में कहता है: 'तुम मूर्ख हो, तुम समझते हो सेवा करने के लिए तुम्हारा जन्म हुआ है, वही तुम्हारा भाग्य है? दूसरे के स्वार्थ साधन के लिए तुम मनुष्य नहीं बने हो, उस कार्य के लिए पशु हैं।..... मरना है तो अपने मनुष्यत्व और अधिकार के लिए मरो। जो बिना विरोध किए दूसरे के उपयोग में आता है वह जड़ और निर्जीव है, पशु से भी हीन है।...निराशा में शैथिल्य से पशुत्व मत स्वीकार करो।' सभी प्रकार के शोषणों का वह विरोधी है। नारी पर होने वाले अत्याचारों का वह खुलकर विरोध करता है। नारी जीवन की सार्थकता को न समझने वाले एवं नारी को मात्र भोग्या मानने वाले पुरुष समाज पर वह कड़े प्रहार करता है और उनके समक्ष नारी की वास्तविक महत्ता का प्रतिपादन करते हुए कहता है कि 'नारी सृष्टि का साधन है, सृष्टि की आदि शक्ति एवं समाज और कुल का केन्द्र है।' उसकी दृष्टि में नारी प्रकृति के विधान से नहीं, समाज के विधान से भोग्या है। वेश्या जीवन भी उसकी दृष्टि में एक अभिशाप है। दिव्या के यह कहने पर कि

'वेश्या स्वतंत्र नारी है', मारिश इस तथा कथित स्वतंत्रता को प्रवंचना मानता हुआ तर्क देता हैः 'यदि कुलवधू एक पुरुष की भोग्या है तो जनपद कल्याणी वेश्या संपूर्ण जनपद और समाज की तृप्ति का साधन है। वह जन को कामना का संकेत देती है और उसके मूल्य में भोगों का साधन केवल धन पाती है। ...उसकी कला दूसरों के जीवन में वासना की पूर्ति के अनुष्ठान के रूप में उपयोगी है, परंतु वह क्या पाती है? वह 'काम' के यज्ञ का साधन मात्र है। वह स्वयं पूर्ति के भविष्य से वंचित है। उसकी स्वतंत्रता का भोग जन करता है, वह स्वयं नहीं, वह केवल वंचना पाती है।' मारिश का यह कथन कितना सत्य है इसका प्रमाण है, रत्नप्रभा का जीवन।

एक चिंतक, विचारक और दार्शनिक के रूप में तो मारिश प्रभावित करता ही है, मानवीय संवेदनाओं से युक्त उसकी दृष्टि उसे शोषित और पीड़ित अंधमानवता का मसीहा बना देती है। जहां कहीं भी उसे परंपराओं, अंधविश्वासों और व्यवस्था के कुटिल जाल में फंसी मानवता दिखाई पड़ती है, वह वहीं पर अपने तर्कों से न केवल उनकी वास्तविकताओं का पर्दाफाश करता है, बल्कि पीड़ित मानवता को एक नई दिशा की ओर उन्मुख करने का प्रयास भी करता है। परंपरागत रूढ़ियों–रीतियों तथा मिथ्या धारणाओं को, जो मानव के स्वस्थ एवं स्वतंत्र विकास में बाधक हैं, तोड़ने के लिए मानो वह कृत–संकल्प है। मारिश चार्वाक दर्शन के प्रतिनिधि के रूप में उपन्यास के अंतर्गत प्रस्तुत हुआ है। भौतिकवादी विचारणा की भूमिका पर चार्वाक दर्शन मार्क्सवादी दर्शन के काफी निकट प्रतीत होता है। अतः लेखक ने अपनी भौतिकवादी–मार्क्सवादी विचारधारा को चार्वाकवादी मारिश के माध्यम से व्यक्त किया है। उपन्यास की ऐतिहासिक पृष्ठभूमि और देशकाल की रक्षा के लिए यही उपयुक्त भी था।

2. पृथुसेन

पृथुसेन ही एक ऐसा पुरुष पात्र है जिसका चरित्र विभिन्न रूपों में उभरकर सामने आया–एक प्रेमी के रूप में, वीर योद्धा के रूप में और बौद्ध भिक्षु के रूप में। उपन्यास के प्रारंभ में ही वह अपनी वीरता और

साहस का परिचय देता है तथा इन्हीं गुणों के कारण वह सागल का सर्वश्रेष्ठ खड्गधारी घोषित किया जाता है। दिव्या की शिविका में कंधा देने के संदर्भ में जब पृथुसेन को अभिजातवर्गीय युवकों द्वारा अपमानित किया जाता है तो वह उनको ललकारता हुआ कहता है, 'मेरे अधिकार का निश्चय मेरा खड्ग करेगा।' जब कभी वह अपने अकुलीन होने के कारण अपमानित होता है, वह प्रतिहिंसा की अग्नि से जल उठता है। दास्त्व के अभिशाप को तो दूर करने में वह असमर्थ है, किंतु अन्याय और अपमान को यों ही सहन कर जाना वह कायरता समझता है। अपने अधिकारों के लिए हर प्रकार का संघर्ष करने के लिए वह तत्पर है।

साहस और वीरता के साथ उसमें आत्मसम्मान की भावना भी पर्याप्त मात्रा में है। प्रेस्थ जब पृथुसेन को गण परिषद की सहायता लेने तथा अवसरवादी बनने का उपदेश देता है, तो पृथुसेन उसके प्रस्तावों को स्पष्टतः अस्वीकार कर देता है, क्योंकि किसी के सामने अधिकारों के लिए भिक्षा मांगने को वह तैयार नहीं, उसे अपनी शक्ति पर भरोसा है। पृथुसेन के चरित्र का यह सशक्त पक्ष प्रारंभ में जिस रूप में उभरकर आया है, वह पाठक पर अपना प्रभाव छोड़ने में सक्षम है। परंतु पृथुसेन का चरित्र अपनी इस गरिमा को स्थायित्व नहीं दे पाया है। उसका चरित्र क्रमशः अपनी विशिष्टताओं से हटकर सामान्य धरातल की ओर अग्रसर होने लगता है।

एक प्रेमी के रूप में पृथुसेन का चरित्र प्रभावहीन है। दिव्या को वह अपने प्रेम का पूरा विश्वास देता है। यही नहीं, विवाह का वचन देकर उसका समर्पण स्वीकार करता है, किंतु अपने वचनों का निर्वाह वह नहीं कर पाता है। अपने पिता की प्रेरणा से वह गर्भवती दिव्या को छोड़कर सीरो से विवाह कर लेता है। वह इतना साहस नहीं जुटा पाता कि इस संदर्भ में अपने पिता का विरोध कर सके। वह प्रेम के क्षेत्र में ही नहीं, वैवाहिक जीवन में भी वह असफल है। सीरो की स्वतंत्रता और उच्छृंखल प्रवृत्ति उसे असंतोष और अशांति के अतिरिक्त कुछ नहीं देती। सीरो के समक्ष वह बिल्कुल निरीह और विवश है। एक वीर योद्धा और सेनापति की यह निरीह स्थिति अवश्य कुछ खटकती है। उसकी यह दुर्बलता उसके प्रति सहानुभूति नहीं, उपेक्षा का भाव ही उत्पन्न करती है।

एक सफल योद्धा होने पर भी पृथुसेन में दूरदर्शिता और राजनीतिज्ञता का अभाव है। इसीलिए वह बड़ी ही सहजता से रुद्रधीर के षड्यंत्र का शिकार बन जाता है और अंत में प्राण बचाकर बौद्ध संघ में शरण लेता है। उसका यह पलायन उसकी दुर्बलता का संकेतक बनकर उभरा है। बौद्ध भिक्षु बनकर भी दिव्या के प्रति उसकी आसक्ति बनी रहती है, परंतु अंततः वह कुछ भी प्राप्त नहीं कर पाता। इसका कारण है उसकी चारित्रिक दुर्बलता, जो प्रायः शोषित वर्गों के विशिष्ट लोगों में होती है, क्योंकि हीनभावना और पलायनवादिता उन्हें उभरने नहीं देतीं।

3. रुद्रधीर

रुद्रधीर कुलीन और अभिजातवर्ग का प्रतीक तथा ब्राह्मण धर्म का प्रतिनिधि पात्र है। वर्णव्यवस्था का वह कट्टर समर्थक है। मात्र अपने वर्ग की रक्षा और प्रतिष्ठा के लिए वह प्रयत्नशील रहता है। उसे अपनी कुलीनता और ब्राह्मण होने पर गर्व है। उसका यह कथन कि 'ब्राह्मण पृथ्वी पर देवता का अंश है। वह देवता की प्रचंड शक्ति का प्रतिनिधि है' – इसी बात का संकेतक है। अपने इसी अभिमान के आधार पर वह शोषण करने में भी संकोच अनुभव नहीं करता। अपने अधिकारों के लिए लड़ने वाले अकुलीन पृथुसेन को अपने वर्गीय स्वार्थों की रक्षा के लिए वह दबाए रखना चाहता है। सागल के युवकों का वह नेता है। राजनीति और कूटनीति से काम लेना वह अच्छी तरह जानता है। यही कारण है कि वह अपने शत्रु पृथुसेन से न केवल अपने अपमान का बदला लेता है, उसे अपने षड्यंत्र का शिकार बनाकर हमेशा के लिए सागल छोड़ देने के लिए बाध्य कर देता है और स्वयं शासन की बागडोर अपने हाथों में लेकर ब्राह्मण धर्म का उद्धार करता है। रुद्रधीर का जो रूप उभरकर सामने आया वह अभिजातवर्गीय संस्कारों से प्रस्त एक शोषण का रूप है जो देश और जनता की उपेक्षा कर अपने वर्गीय स्वार्थों के लिए ही प्रयत्नशील है।

4. प्रेस्थ

पृथुसेन का पिता प्रेस्थ सागल का एक प्रमुख श्रेष्ठि है। उपन्यास के अंतर्गत प्रेस्थ का चरित्र भी प्रभावशाली रूप में प्रस्तुत हुआ है। वह अत्यंत चतुर, विनीत और व्यवहार कुशल है। अपने इन्हीं गुणों के कारण वह एक

दास की स्थिति से श्रेष्ठि के स्तर तक पहुंच जाता है। महत्वाकांक्षी होने के कारण वह अभिजात वर्ग से प्रतिद्वंद्विता का भाव रखता है। एक दरिद्र रूपवती द्विज कन्या से विवाह कर, तथा कुलीन वर्ग की भांति प्रासाद आदि बनवाकर और अनेक दास–दासियों का त्रय करके वह सामंतों की भांति जीवन बिताता हुआ पूरी तरह से अभिजात वर्ग की प्रतिद्वंद्विता में आ जाता है।

एक साधारण दास से महाश्रेष्ठि बन जाने वाला प्रेस्थ सागल के सामाजिक और राजनीतिक क्षेत्र में अपना प्रभुत्व स्थापित करने के लिए सदैव तत्पर रहता है। संपन्न और समृद्ध होने के कारण जन सामान्य से सम्मान और आदर पाने का अधिकारी तो वह बन जाता है किंतु उसका लक्ष्य सागल के राजनीतिक क्षेत्र में अपनी प्रतिष्ठा और प्रमुखता बनाने का ही रहता है। इसके लिए वह साम, दाम, दंड, भेद की नीति अपनाता है और सफल भी होता है। अपने पुत्र का विवाह सीरो से कराकर वह गणपति मिथ्रोदस का कृपापात्र बन जाता है और फिर धीरे धीरे अपने द्रव्यबल, चातुर्य और विनय से राजनीतिक क्षेत्र में भी अपना प्रभाव जमा लेता है वह दूरदर्शी और अवसरवादी है। समय का लाभ उठाना वह अच्छी तरह जानता है। केंद्रस के आक्रमण के दौरान वह समय का पूरा लाभ उठाता है और अपनी स्थिति को इतनी मजबूत बना लेता है कि उसके विरोधी निरस्त से हो जाते हैं। अपनी कुटनीति का जाल फैलाकर वह रुद्रधीर को नगर से निष्कासित तक करा देता है। एक समय ऐसा भी आता है जब अभिजात वर्ग को प्रेस्थ का लोहा मानना पड़ता है। सामंत कार्त्तवीर का यह कथन उपर्युक्त तथ्य की स्पष्ट पुष्टि करता हैः 'कुटिल नीति के ये वाण सामंत औकिस, इंद्रसेन और सारथी प्रेस्थ से ही हैं। हमारे सभी बलाधिकृतों और सेनापतियों के स्थान पर अन्य बलाधिकृतों और सेनापति पहले से नियत कर और घोषणा द्वारा जन को लुभाकर इन लोगों ने हमें पंगु कर दिया है। कुचक्र में प्रेस्थ कौटिल्य का शिष्य है।'

कालांतर में प्रेस्थ की महत्वाकांक्षा इतनी अधिक बढ़ जाती है कि वह प्रेस्थ वंश के राज्य की स्थापना का स्वप्न देखता है। पृथुसेन को इसके लिए प्रेरित करता हुआ वह कहता है, 'पुत्र एक दास की स्थिति से उठकर मैं इस अवस्था में पहुंचा हूं कि मेरा पुत्र सेनापति बनकर महासेनापति बनने

की आशा कर सकता है।...मैं। तुम्हें परम भट्टारक मद्र के गणपति के आसन पर देखना चाहता हूं, मद्र के छत्रपति राजा के आसन पर देखना चाहता हूं। यदि मगध में शूद्र मौर्य वंश का राज्य स्थापित हो सकता है, तो मद्र में प्रेस्थ वंश का राज्य क्यों नहीं स्थापित हो सकता?' सागल की राजनीतिक स्थितियों में परिवर्तन लाने और पृथुसेन की सफलताओं के पीछे प्रेस्थ का ही हाथ है। समग्रतः महत्वाकांक्षी, कूटनीतिज्ञ, चतुर, अवसरवादी, धन और पद का लोभी, स्वार्थी और दूरदर्शी प्रेस्थ का चरित्र अत्यंत सशक्त और प्रभावशाली रूप में सामने आया है। ऐसे पात्र का अंत जिस रूप में लेखक ने दिखाया है, वह कुछ अस्वाभाविक प्रतीत होता है।

8.3.2. नारी पात्र

1. दिव्या

उपन्यास के अंतर्गत दिव्या केंद्रीय चरित्र है। वह उपन्यास की नायिका है। नायिका वह इस अर्थ में है कि उपन्यास उसी के जीवन संघर्ष की गाथा है। अपनी वैयक्तिक विशेषताओं एवं प्रवृत्तियों के बावजूद, दिव्या लेखक के द्वारा नारी जाति के प्रतिनिधि के रूप में भी प्रस्तुत की गई है। वह नारी के परंपरागत शोषण की जीती–जागती मिसाल है और अपने जीवन के द्वारा इस तथ्य का प्रतिपादन करती है कि जब तक समाज व्यवस्था बदल नहीं जाती–नारी जाति शोषण से मुक्त नहीं हो सकती। व्यवस्था के पंजे इतने मजबूत हैं कि वे हर स्तर पर नारी को अपनी जकड़ में लिए हुए हैं, यहां तक कि आत्म निर्भर होकर भी इस समाज व्यवस्था में उसे वास्तविक मुक्ति नहीं है। कभी वर्ग, कभी वर्ण, कभी उसकी अपनी शारीरिक एवं मानसिक संरचना, कभी धर्म, कभी अन्य नाना प्रकार की तथाकथित रीतियों और रूढ़ियों का संबल लेकर समाज उसका शोषण करता रहा है वह मुक्ति की अपनी सारी अंतर्निहित इच्छा के बावजूद शोषित होती चली आई है।

दिव्या महापंडित धर्मस्थ देव शर्मा की प्रपौत्री है। ब्राह्मण वर्ग की प्रभुता को सर्वोच्च मानने वाली तत्कालीन समाज व्यवस्था में धर्मस्थ देव शर्मा की प्रपौत्री होने के नाते बचपन से ही दिव्या को अभिजात वर्ग की समस्त सुविधाएं प्राप्त होती हैं। माता–पिता से वंचित होने के कारण उसे धर्मस्थ

से ही नहीं, अपने सारे सगे–संबंधियों से विशेष लाड़–प्यार मिलता है। बड़े ही ममतामय और भव्य परिवेश में उसका लालन–पालन होता है। उपन्यास के प्रारंभ में पाठकों से सबसे पहले उसका परिचय संगीत और नृत्य में प्रवीण एक अपूर्व सुंदरी के रूप में होता है। सर्वश्रेष्ठ नृत्य प्रदर्शन के लिए उसे 'मधुपर्व' के अवसर पर 'सरस्वती पुत्री' की उपाधि भी मिलती है। अभिजात वर्गीय समाज उसके कृपा कटाक्ष के लिए लालायित हो उठता है। दिव्या संगीत, नृत्य तथा नाना कलाओं में ही निपुण नहीं है, वह शास्त्र संबंधी ज्ञान से भी परिपूर्ण है। धर्मस्थ का प्रासाद चूंकि ज्ञान संबंधी चर्चाओं का केंद्र था, अतः दिव्या के संस्कारों में उसकी घनीभूत छाया स्वाभाविक ही कही जाएगी। उपन्यास के दो–तीन अध्यायों में दिव्या के उस प्रारंभिक जीवन के बड़े ही आकर्षक और मधुर चित्र अंकित हैं। इन चित्रों में दिव्या जीवन रूपी सरोवर में मंद–मंथर और अल्हड़ गति से तैरने वाली एक हंसिनी के समान दिखाई पड़ती है। अपने जीवन की इस मंजिल तक दिव्या दिव्या है, औसत भारतीय नारी जाति की प्रतिनिधि वह नहीं है।

'मधुपर्व' के अवसर पर ही वह दासपुत्र पृथुसेना की वीरता और शौर्य के कारण उसके प्रति आकर्षित हो जाती है। उसका प्रेम मन तक ही सीमित न रहकर शरीर के धरातल पर भी अभिव्यक्ति पाता है। दिव्या के इस साहस से वर्णाश्रम धर्म की मान्यताओं पर टिकी समाज व्यवस्था हिल उठती है। युवावस्था की अल्हड़ मनः स्थिति में किए गए अपने कार्य के परिणाम को न समझ पाने के कारण ही दिव्या के द्वारा स्थिति यह रूप लेती है और उसके जीवन में एक रोमांचकारी अध्याय प्रारंभ होता है। इसके पहले कि आने वाले भयानक झंझावात की चपेट में फंसकर वह पूरी तरह धराशायी हो जाए, झंझावात के प्रारंभिक उद्वेलन को पहचान कर ही वह पृथुसेना के गर्भ को संभाले घर से भाग निकलती है। उसके समक्ष स्पष्ट हो जाता है कि अभिजात वर्ग में होने वाला उसका जन्म भी उसे उन चौहद्दियों से बाहर नहीं निकाल सकता जो समाज ने नारी मात्र के चारों ओर आचार–विचार, धर्म, मर्यादा, नियम–कानून आदि आदि नामों से खड़ी कर दी हैं। दिव्या अब महलों में रहने वाली धर्मस्थ की प्रपौत्री न रहकर एक औसत भारतीय नारी के रूप में हमारे सामने आती

है। वह दिव्या से दारा बन जाने को विवश होती है।

दासी दारा के रूप में एक व्यापारी से दूसरे और तीसरे व्यापारी के हाथ पशुओं की भांति दिव्या का व्यापार होने लगता है। दासी रूप में ही पृथुसेना के बच्चे को जन्म देती है, किंतु उस बच्चे पर अपना मातृत्व अर्पित करने से वंचित कर दी जाती है। तत्कालीन व्यवस्था में दासी होने ने नाते उसका सबसे प्रथम और अंतिम दायित्व स्वामी की सेवा में था। दास जीवन के अभिशाप से मुक्त होने के लिए वह बौद्ध विहार की शरण में पहुंचती है किंतु वहां से भी वह ठुकरा दी जाती है। दिव्या के समक्ष आत्महत्या के अलावा दूसरा उपाय नहीं रह जाता। इसके लिए भी वह प्रयास करती है किंतु उसे नया जीवन देती है प्रख्यात नर्तकी रत्नप्रभा। नर्तकी रत्नप्रभा के साहचर्य में दिव्या का नया जन्म होता है और वह सचमुच वेश्या जीवन अंगीकार कर लेती है। अब दिव्या दिव्या न रहकर अंशुमाला के रूप में सामने आती है।

दिव्या का चरित्र व्यवस्था के समूचे घिनौनेपन को उद्घाटित करता है। बड़े ही प्रभावशाली तथा तर्कपूर्ण ढंग से लेखक ने व्यवस्था के वास्तविक रूप को उद्घाटित करते हुए इस तथ्य पर प्रकाश डाला है कि नारी की मुक्ति आत्मनिर्भरता में नहीं, वरन व्यवस्था को बदलने में है। दिव्या वेश्या बनकर भी मुक्त नहीं हो पाती। क्योंकि उस समय ब्राह्मणों का वर्ण और अपनी प्रतिष्ठा संबंधी दंभ उसके आड़े आ जाता है। लेखक ने यहां इस बात को भी स्पष्ट कर दिया है कि अपने स्वार्थ के लिए व्यवस्था के ठेकेदार किस प्रकार अपने घोषित सिद्धांतों एवं मान्यताओं को एक ओर रख देते हैं।

वेश्या जीवन अपनाने से पूर्व दिव्या दर दर की ठोकरें खाती है किंतु कोई उसे संरक्षण देने को प्रस्तुत नहीं है और वही दिव्या को वेश्या जीवन अपनाते देख प्रतिष्ठा के दंभ से पूर्ण ब्राह्मण समाज इस कारण उसे अपनाने के लिए प्रस्तुत हो जाता है कि वेश्या बन जाने के बाद ब्राह्मण समाज की कीर्ति पर कालिख पुत जाएगी। जीवन के कटु यथार्थों को काफी कुछ भोग चुकने वाली दिव्या अब उनके जाल में नहीं फंसती, वह संसार के धूलिधूसरित मार्ग पर चलने वाले, जीवन के सुख–दुख की

अनुभूति करने वाले मारिश का आश्रय ग्रहण करती है। मारिश उसे संतति की परंपरा के रूप में मानव की अमरता देने का वचन देता है और दिव्या इसी रूप में अपने जीवन की सार्थकता को स्वीकार करती है।

इस प्रकार नारी जीवन की निरीहता तथा करुणा के साथ दिव्या का चरित्र व्यवस्था के शोषक स्वरूप तथा उसे प्रश्रय देने वाले पुरुष समाज के स्वार्थी एवं दुष्ट चरित्र का भी उद्घाटन करता है। सारा उपन्यास और उसकी कथावस्तु नारी के शोषण को ही अनेक स्तरों पर उद्घाटित करती है और सबके केंद्र में दिव्या का ही कर्मठ चरित्र है। वह परिस्थितियों के हर दबाव को झेलती है और साहस के साथ प्रतिरोधों के समक्ष खड़ा होना चाहती है। उसमें विद्या, बुद्धि तथा वस्तु स्थिति को समझने की पूरी क्षमता है, वह व्यवस्था के विरुद्ध विद्रोही भी होती है किंतु अकेली होने के कारण उसका विद्रोह सार्थक भूमियों तक नहीं पहुंच पाता। फिर भी जीवट, परिस्थितियों से संघर्ष करने की उसकी क्षमता, व्यवस्था के आततायी रूप के प्रति उसका वितृष्णा भाव, उसके प्रति पाठक को संवेदनशील बनाते हैं। यशपाल की लेखनी से प्रसूत यह एक अविस्मरणीय चरित्र है।

2. सीरो

सीरो का चरित्र दिव्या के चरित्र से बिल्कुल विपरीत भूमि पर प्रस्तुत हुआ है। दिव्या का चरित्र उसके जीवन की दयनीय और करुण स्थिति से संबंधित है, जबकि सीरो का चरित्र एक स्वतंत्र, उच्छृंखल और वासनामय नारी के रूप में हुआ है। मद्र के परम भट्टारक, गणपति की प्रपौत्री, गण परिषद के संवाहक की पुत्रवधू और महापराक्रमी सेनापति पृथुसेना की अर्धांगिनी होने का गौरव सीरो को अत्यधिक अहंकारी और उच्छृंखल बना देता है। समाज के सबसे सम्मानित आसन की अधिकारिणी बनकर सीरो पूरी स्वतंत्रता को भोगती है। पृथुसेन की भी वह अवहेलना करती है। किसी एक पुरुष के साथ बंधकर रहना वह आवश्यक नहीं समझती। उसकी स्वतंत्रता और उच्छृंखलता इतनी अतिवादी भूमि तक पहुंच जाती है कि वह 'सबसे अधिक काम्य भोगों को भोगती और सागल के सबसे अधिक सुंदर और युवा पुरुषों से आदर की आशा करती है।' पृथुसेन जब

उसकी इस उच्छृंखलता का विरोध कर उसे प्रताड़ित करने का प्रयास करता है, तो वह सर्पिणी की भांति फुंकार कर स्पष्ट कर देती है, 'मैं तुम्हारी क्रीत दासी नहीं हूं। तुम मेरे आश्रित हो, मैं तुम्हारी आश्रित नहीं हूं। मैं तुम्हारे पिंजरे में बंद सारिका नहीं हूं। ...मेरे लिए संसार में केवल तुम ही एक पुरुष नहीं हो? तुम जैसे अनेक और तुमसे श्रेष्ठ अनेक ...यदि तुम मेरा अपमान करोगे तो मेरे लिए विस्तृत जनसमाज है। तुम्हें सेनापति बना सकती हूं तो दूसरे को भी महासेनापति बना सकती हूं।' इस प्रकार सीरो का चरित्र एक उच्छृंखल, अहंकारी, महत्वाकांक्षिणी, ईर्ष्यालु नारी का चरित्र है, जो अतिवादी भूमियों में पहुंचकर भोग और काम की ही प्रमुखता लिए हुए है। यशपाल नारी स्वातंत्र्य और समानाधिकार के पक्षपाती हैं। किंतु जिस रूप में सीरो का चरित्र आया है वह पूंजीवादी व्यवस्था की भोगमूलक प्रवृत्ति का प्रतिनिधित्व करती हुई दिखाई देती है। मार्क्सवादी चेतना की सिद्धि उससे नहीं होती है।

3. रत्नप्रभा

रत्नप्रभा शूरसेन प्रदेश की राजनर्तकी है। उपन्यास के अंतर्गत सर्वप्रथम दिव्या के प्राण बचाने के संदर्भ में उसका परिचय होता है। रत्नप्रभा का चरित्र भी अत्यंत मार्मिक और करुण भूमिका में उभर कर आया है। वेश्या जीवन बिताने वाली रत्नप्रभा यद्यपि संपन्न और समृद्ध है किंतु उसे मानसिक सुख और संतोष नहीं है। जीवन के संपूर्ण प्रयत्न से उसने जनपद कल्याणी की अपनी प्रतिष्ठा और वैभव का मंदिर तो अवश्य खड़ा किया, पर इस मंदिर में अर्चना के देवता का स्थान शून्य ही रह गया। किसी एक व्यक्ति के स्थाई प्रेम तथा कुलवधू का मधुर स्वप्न देखकर ही वह रह जाती है। अपने इस अभिशप्त जीवन को वह पूर्व जन्म के कर्मों का फल मानती है, इसी लिए इस जन्म में वह पुण्य कर्मों की ओर ही अधिक उन्मुख रहती है ताकि अगले जन्म में वह अपने जीवन की पूर्णता को पा सके। इस प्रकार रत्नप्रभा का चरित्र नारी जीवन की विवश स्थिति को प्रस्तुत करता है।

वह एक सरल हृदय और मधुर स्वभाव की नारी है। अपने सौंदर्य, कला, संपन्नता एवं समृद्धि पर उसे किसी प्रकार का अभिमान नहीं है। नारी

सुलभ सारी कोमल भावनाएं उसमें विद्यमान हैं। उपन्यास में ऐसे अनेक प्रसंग हैं जहां उसकी दया, ममता, करुणा और सहानुभूति के दर्शन होते हैं। दिव्या अपने कला प्रदर्शन से उसके महत्व को कम कर देती है, किंतु रत्नप्रभा में उसके प्रति कोई ईर्ष्या का भाव नहीं, बल्कि उसके प्रति पूर्ण वात्सल्य ही व्यक्त करती है। यह जानते हुए भी कि दिव्या उसके प्रासाद की शोभा ही नहीं, उसके अपने जीवन का एक अभिन्न अंग है, अपनी गुरुदेवी मल्लिका के कहने पर गुरुदक्षिणा के रूप में वह सहर्ष उसे सौंप देती है और इस स्थिति को भी सहन कर जाती है। वस्तुतः रत्नप्रभा का जीवन आत्मिक सुख और शांति से शून्य एक ऐसी नारी का जीवन है जो व्यवस्था की नीतियों में जकड़ी, अभिशाप के भार को ढोने के लिए विवश है।

8.4 सारांश

इस प्रकार 'दिव्या' की संपूर्ण चरित्र सृष्टि सोद्देश्य चरित्र सृष्टि है। प्रत्येक पात्र अपनी अपनी भूमिका में एकदम सार्थक है।

8.5 कठिन शब्द

1 सोद्देश्य

2 चरित्रसृष्टि

3 कालखंड

4 बोझिल

5 आधिक्य

6 जीवंतता

7 पराभूत

8 नियतिवादी

9 निर्जीव

10 शैथिल्य

11 प्रतिपादन

8.6 अभ्यासार्थ प्रश्न

1. 'दिव्या' उपन्यास की पात्र परिकल्पना पर विचार कीजिए।

———————————————————————————————————

———————————————————————————————————

———————————————————————————————————

———————————————————————————————————

8.7 संदर्भग्रंथ / पुस्तकें

1. यशपाल : व्यक्तित्व और कृतित्व, रामव्यास पाण्डेय / श्रीनिवास शर्मा (संपा.), कलकताः मणिमय प्रकाशन, प्रथम संस्करण, 1978.
2. प्रकाशचन्द्र मिश्र, यशपाल का कथा साहित्य, नयी दिल्ली : मैकमिलन कंपनी ऑफ इंडिया, 1978.
3. यशपाल, दिव्या, लोकभारती प्रकाशन, 2004.
4. यशपाल के उपन्यासों में नारी चेतना, डॉ. सुमन शर्मा, जयपुर : पैराडाइज़ पब्लिशर्स, 2011.

****

M.A. HINDI	UNIT-III	Lesson No. 9
COURSE CODE : HIN-402		Semester-IV

कहानीकार यशपाल

9.0 रूपरेखा

9.1 उद्देश्य

9.2 प्रस्तावना

9.3 कहानीकार यशपाल का साहित्यिक जीवन

9.4 सारांश

9.5 कठिन शब्द

9.6 अभ्यासार्थ प्रश्न

9.7 पठनीय पुस्तकें

9.1 उद्देश्य

प्रस्तुत आलेख के अध्ययनोपरांत आप–

– कहानीकार यशपाल से परिचित हो सकेंगे।

– कहानीकार यशपाल की रचनाओं का ज्ञान प्राप्त कर सकेंगे।

9.2 प्रस्तावना

किसी भी रचनाकार का व्यक्तित्व उसकी रचनाओं में प्रत्यक्ष या परोक्ष रूप से पिरोया हुआ होता है, इसीलिए गज़ानन माधव मुक्तिबोध ने लिखा है– 'कवि कथ्य के माध्यम से अनजाने में अपना चरित्र प्रस्तुत कर जाता है।' अतः स्पष्ट

है कि रचनाकार के व्यक्तित्व को समझने के लिए उसकी रचनाओं का अनुसरण करना अति आवश्यक होता है।

9.3 कहानीकार यशपाल का साहित्यिक जीवन

यशपाल जितना साहित्यकार के रूप से जाने जाते हैं उतना ही वह क्रांतिकारी के रूप में प्रसिद्ध रहे हैं। उनके व्यक्तित्व की सबसे बड़ी विशेषता यह है कि एक कलम का सिपाही होने के साथ–साथ उन्होंने हथियार से भी लड़ाई लड़ी है। क्रान्तिकारियों के सम्पर्क में रहने के कारण इनके अन्दर भी देशभक्ति की भावना पनपने लगी। जिससे अभिभूत होकर यह क्रान्तिकारी गतिविधियों में भाग लेते रहे। जिसके चलते इन्हें अपना जीवन जेल में भी व्यतीत करना पडा। यशपाल का जेल की कोठरी में प्रकाशवर्ती नामक स्त्री से विवाह करना इनके साहसी स्वभाव का परिचय देता है। यह क्रियात्मक रूप में रुढ़िवादी समाज के लिए एक चुनौती थी। इतना ही नहीं इनके चरित्र की एक सबसे बड़ी विशेषता यह भी देखी जाती है कि देशवासियों को रुढ़ियों से मुक्त करने के लिए इन्होंने आजीवन प्रयत्न किया। वह स्वयं अपने घरेलू एवं सामाजिक जीवन में प्रगतिविरोधी रुढ़ियों से मुक्त रहे। उदाहरणार्थ, उन्होंने अपनी पुत्री के विवाह अवसर पर 'कन्यादान' विधि के मंत्रों का पाठ करने से इंकार कर दिया था, क्योंकि उन्हें कन्या को वस्तु समझकर 'दान' करने की विधि में नारी का शोषण दिखायी पड़ा। स्पष्ट है कि यशपाल के जीवन में अनेक छोटी–बड़ी घटनाओं का उल्लेख किया गया है जो इनके अभय होने को सूचित करता है। यदि वह अपने कहानी–साहित्य में समाज को चुनौती देने की प्रेरणा देते हैं तो वह अपने जीवन में भी इसी चुनौती का सामना डटकर करते रहे। इनकी कथनी व करनी में कोई अंतर नहीं पाया जाता। इस तरह इन्होंने अपने जीवन में जो जिया और भोगा उससे प्रेरित होकर ही इन्होंने लिखा है।

यशपाल को पुस्तकें पढ़ने में अधिक रूचि थी। इस रूचि के चलते इन्होंने पाठ्य–पुस्तकों के साथ–साथ इतिहास और कहानी की पुस्तकों का भी अध्ययन किया। इन्होंने चन्द्रकांता संतति आदि अनेक जासूसी, एय्यारी आदि अतिरंजनापूर्ण कल्पना युक्त और कौतूहल जगाने वाली रचनाएँ पढ़ीं। इसके अतिरिक्त रवि बाबू शरत् चन्द्र की अनुदित पुस्तकें, क्रांतिकारियों की जीवनियाँ तथा प्रेमचन्द, सुदर्शन का साहित्य और स्त्री सुबोधिनी से लेकर सत्यार्थ प्रकाश की पुस्तकों

को पढ़कर ज्ञान के गावाक्ष खोले। पाठक के रूप में यशपाल ने साहित्य का जितना भी अध्ययन किया उससे स्पष्ट है कि वह पाठक से लेखक बनने की ओर प्रवृत्त होते जा रहे थे। जिसका स्पष्ट प्रमाण तब मिलता है जब गुरूकुल में पढ़ते समय इन्होंने अपनी पहली कहानी 'अँगूठी' लिखी। यह कहानी विद्यार्थियों की हस्तलिखित पत्रिका में प्रकाशित हुई। परिणामस्वरूप इनका लेखन के प्रति उत्साह बढ़ता ही गया। इतना ही नहीं नेशनल कॉलेज में पढ़ते समय यशपाल की एक कहानी बरेली 'भ्रमर' पत्रिका में प्रकाशित हुई और यह उनकी पहली प्रकाशित कहानी थी। इस तरह हिन्दी साहित्य जगत में यशपाल ने अपनी एक विशिष्ट छाप छोड़ी है।

यशपाल हिन्दी के एक उल्लेखनीय कहानीकार के रूप में सामने आए हैं। यशपाल की कहानियों के 16 संग्रह प्रकाशित हो चुके हैं जिनका विवरण इस प्रकार है– ज्ञान दान (1948), अभिशप्त (1943), भस्मावृत चिनगारी (1946), वो दुनिया (1948), फूलों का कुर्ता (1949), धर्मयुद्ध (1950), उत्तराधिकारी (1951), चित्र का शीर्षक (1951), तुमने क्यों कहा था मैं सुन्दर हूँ (1954), तर्क का तूफान (1954), उत्तमी की माँ (1959), औ भैरवी (1958), सच बोलने की भूल (1962), खच्चर और आदमी (1965), भूख के तीन दिन (1968) आदि संग्रह इनके कहानी साहित्य की विशालता के प्रमाण हैं। इस प्रकार यशपाल लगभग 200 कहानियाँ लिख चुके हैं। इन कहानियों के माध्यम से उन्होंने अपने विचारों और अनुभव को कलात्मक एवं रोचक ढंग से प्रस्तुत किया है। यशपाल का स्पष्ट कहना है, ''कलात्मक अथवा रोचक ढंग से विचारों की अभिव्यक्ति करने की सफलता ही कला की सफलता है।'' यशपाल के मतानुसार 'किसी प्रसंग या घटना का कार्य कारण–सम्बन्द्ध वर्णन ही कहानी है, जिससे भावोद्रेक हो सके'। यशपाल अपनी इन्हीं मान्यताओं पर अडिग रहे हैं। कहानी विधा के विकास और उसमें नयापन ला सकने के लिए जो भी प्रयत्न हुए, यशपाल जी ने उनका स्वागत किया क्योंकि नयी आवश्यकताओं के लिए परिवर्तन की माँग भी आवश्यक है।

इस प्रकार यशपाल कहानी के विकास से परिचित हैं और अपनी कला के विषय में भी वह सर्तक एवं जागरुक हैं। यशपाल की कहानियों में, जैसा कि उन्होंने स्वयं स्वीकार किया है, तीन बातें प्रधान हैं– घटना, रोचकता और उद्देश्य। लेखक एक निश्चित उद्देश्य को दृष्टि में रखकर कहानी का ताना–बाना बुनता

है। कहानी की रोचकता घटनाओं के संयोजन की कला में निहित होती है और कहानी का अंत होते–होते उसमें अन्तर्निहित सत्य स्पष्ट हो जाता है। इनकी कहानियों का विवेचन–विश्लेषण करके यशपाल की मानसिकता को देखा जा सकता है।

'पिंजड़े की उड़ान' यशपाल का पहला कहानी–संग्रह है जो जेल में लिखा गया। इन्होंने अपने सोलह कहानी–संग्रह में विविध विषयों को आधार बनाया है। इनकी कहानियाँ 'मक्रील', 'प्रेम का सागर', 'पहाड़ की स्मृति', 'भावुक', 'शर्त', 'तीसरी चिता', 'पराई', 'दर्पण', 'समाज सेवा' का कथ्य किसी–न–किसी रूप में प्रेम से सम्बन्धित है।

'पहाड़ की स्मृति' कहानी में मंडी नगर की युवती अपने जीवन की कठिनाईयों से जूझती हुई अपने पति परसराम की प्रतीक्षा कर रही है जिससे वह अत्याधिक प्रेम करती है और जब उसे मालूम होता है कि उसकी खुबानियाँ खरीदने वाला ग्राहक उसी शहर का रहने वाला है जहाँ उसका प्रेमी गया है तो वह उससे खुबानियों के पैसे नहीं लेती। बस उस यात्री से इतना कहती है, ''...परसराम से मेरा सन्देसा ज़रूर कहना। कहना, दिन भर सड़क ताका करती हूँ, मैं बड़ी इन्तजार में हूँ। पाँच बरस हो गये, अब ज़रूर लौट आ। तेरी लड़की तुझे पुकारती रहती है... कहोगे न?'' स्पष्ट है कि इसमें पत्नी के प्रेम की संवेदनात्मक गहराई है।

इसी तरह यशपाल की प्रायः कहानियाँ यौन भावना पर भी आधारित हैं। इसी भावना का प्राबल्य रूप कभी–कभी पति–पत्नी के बीच कलंक, पारस्परिक द्वेष और संघर्ष को जन्म देता है। इस संदर्भ की पुष्टि इन कहानियों द्वारा मिलती है– 'जहा हसद नहीं', 'अपनी चीज़', 'तुमने क्यों कहा था', 'मैं सुन्दर हूँ', 'औ भैरवी', 'धर्मरक्षा', 'वैष्णवी', 'प्रायश्चित', 'उत्तमी की माँ' आदि।

'उत्तमी की माँ' कहानी में जीवन की सहज वृत्तियों के दमन का दुष्परिणाम कितना भयंकर होता है इसी का वर्णन इस कहानी में यशपाल ने किया है। प्रस्तुत कहानी की पात्र उत्तमी के भीतर यौन तृप्ति की भावना उजागर हो गयी थी इसलिए वह अनैतिक सम्बन्धों में सलंग्न रहती है, ''उत्तमी की आँखों में ऐसी प्यास और उसके यौवन के उफान में कुछ ऐसा आकर्षण था कि नौजवानों क्या अधेड़ों के लिए भी उसकी उपेक्षा कठिन हो जाती थी। उसकी प्रकृति भी

खालिस घी की सी हो गयी थी कि पुरुष के सामीप्य की ऊष्णता पाते ही उसे पिघलने से बचाया नहीं जा सकता था।'' अत्यधिक काम लिप्सा के चलते उसके जीवन में स्थिरता नहीं रहती जिस कारण उसकी माँ परेशान व अस्थिर रहती है। अतः काम असंतुष्टि के कारण वह मानसिक रूप से असंतुलित रहती है। जिसके चलते वह अधिक देर तक जीवित नहीं रहती।

हमारी परम्परागत व्यवस्था या रुढ़िगत मानसिकता स्त्री को चार दीवारी तक ही सीमित रखना चाहती है लेकिन यशपाल मानव–समाज के अर्द्धांग स्त्री–समाज को पुरुष की भांति सामाजिक व राजनीतिक कार्यों में सक्रिय रूप से भाग लेते हुए देखना चाहते हैं। यशपाल ने परम्परागत संस्कृति पर प्रहार करते हुए कहा है कि हमारी संस्कृति में नारी का गौरव उसके अपने व्यक्तित्व में नहीं है बल्कि किसी की श्रीमति बनकर, किसी की बहू, बेटी तथा माँ बनकर ही उसका गौरव है। उसका स्वयं का कोई अस्तित्व नहीं है। पुरुष प्रधान समाज में नारी का सम्मान अमूक पत्नी, अमूक बेटी, माँ या बहन के रूप में किया जाता है। यदि वह अमूक न बनकर अपने व्यक्तित्व को स्थापित करती है तो उसे निलर्ज्जित कहा जाएगा क्योंकि पुरुष के संरक्षण में रहकर ही उसका मान–सम्मान माना जाता है किंतु यशपाल एक ऐसे लेखक हैं जिन्होंने स्त्री के प्रति ऐसी मान्यताओं पर प्रहार किया है। 'कुल मर्यादा' एक ऐसी कहानी है जिसमें गंगाधर देश–भावना से प्रेरित होकर अपनी पत्नी को भी इसी मार्ग की ओर प्रशस्त करता है। वह चाहता था कि गांव की रुढ़िवादी मानसिकता से मुक्त होकर उसकी पत्नी सभी कार्यों में सहयोग दे लेकिन ऐसा नहीं होता। गंगाधर की मानसिकता और उसके परिवार के अन्य सदस्यों की मानसिकता में अंतर था। जहाँ गंगाधर स्वतंत्र विचारों वाला व्यक्ति था वहीं उसके पिता रुढ़िगत विचारों से ग्रस्त थे। इतना ही नहीं जब गंगाधर 'परदा प्रथा' का विरोध करते हुए अपना मत रखता है तो रुढ़िवादी पिता से पराजित हो जाता है क्योंकि पिता अपनी कुल मर्यादा को घर में सुरक्षित रखकर सुख का अनुभव करता है।

स्पष्ट है समाज में जहाँ एक तरफ प्रायः पुरुष का सकारात्मक दृष्टिकोण देखने को मिलता है वहीं दूसरी ओर ऐसे भी पुरुष हैं जो स्त्री के प्रति ऐसी संकुचित मानसिकता रखकर उसकी राह में विभिन्न बाधाएँ उत्पन्न करते हैं। इस प्रकार यशपाल ने प्रस्तुत कहानी में नयी और पुरानी जीवन–दृष्टियों का परस्पर संघर्ष दिखाया है। 'भूख के तीन दिन' यशपाल का अंतिम कहानी–संग्रह है। इस

संग्रह की कहानियों में बेरोज़गारी, आर्थिक विषमता, वर्ग–विषमता आदि समस्याओं को उजागर किया है।

यशपाल शोषित नारी की वकालत करने में सिद्धहस्त हैं। वह अनुभव करते हैं कि भारतीय समाज का आधा भाग विकलांग है। जब तक यह भाग स्वस्थ्य नहीं होगा तब तक समाज का विकास होना असम्भव है। 'पांव तले की डाल' नामक कहानी में नारी को भोग्या के रूप में अंकित कर सामाजिक रूढ़ि पर कड़ा प्रहार किया है। इस कहानी में ब्रजनन्दन जब अपने मित्र डाक्टर माथुर को मनोरंजन के लिए किसी लड़की को लाने के लिए कहता है तब संयोगवश वह उसकी बहन को ले जाता है। उसे देखकर ब्रजनन्दन का स्तब्ध होना स्वाभाविक था। कहानी के अन्त में डाक्टर का कहना है कि ''सभी औरतें किसी की बहिन, बेटी या स्त्री होती हैं...तुम्हारी बहिन को भी तुम्हारी तफरीह पर एतराज हो सकता है।...मर्द होने का मतलब बेशर्मी का अधिकार नहीं है...।''

इसी पूंजीवादी सामाजिक विधान में नारी को अपनी इज्ज़त किस तरह बेचनी पड़ती है इसका चित्रण 'आबरू' कहानी में मिलता है। वह एक महानगर में अपना शरीर बेचती है। एक व्यक्ति से जब उसकी भेंट होती है तो वह उससे यह कहना चाहता है– इससे बेहतर सागर में डूब मरना है लेकिन वह यह कह न सका। शांति के पास अपने तन बेचने के अतिरिक्त कुछ नहीं था और सागर में डूब मरने से भी किसी की आबरू बच सकती है। उसकी यह विवशता व्यक्तिगत न होकर समष्टिगत है। इस तरह कहानी के मूल में जो चिन्तन है वह पूंजीवादी संस्कृति पर प्रहार करता है।

अतः यशपाल जी का नाम प्रगतिवादी कथाकारों में सबसे पहले लिया जाता है। युग बोध की दृष्टि से हिन्दी कहानी–साहित्य में प्रेमचन्द के बाद यशपाल का नाम आता है। यशपाल ने अपनी कहानियों में शोषित किसानों की किसानी समस्या को प्रायः अछूता रखा है। इसका कारण शायद उनका मध्यवर्गीय रुझान अथवा प्रगतिवादिता हो सकता है। यशपाल का कहानी लिखने का अपना ही एक अलग ढंग है। यशपाल द्वारा लिखित कहानियों के पात्र सामाजिक, आर्थिक, राजनीतिक, नैतिक यथार्थ से ही लिए गये हैं जिन्हें जीवन के यथार्थ की भूमि में बोकर संग्रहीत अनुभवों के जल से सींचा गया है। यहाँ तक कि क्रान्ति की अग्नि में तपकर कहानीकार यशपाल की रचनाओं का उद्देश्य

उनकी देशभक्ति का प्रमाण प्रस्तुत करती हैं। उन्होंने अपनी कहानियों में युग–जीवन और उसके संघर्षों को प्रस्तुत कर समाज की जर्जर मान्यताओं के खोखलेपन का पर्दाफाश किया। साम्यवादी यशपाल ने सामन्तवादी और पूंजीवादी संस्थाओं और जीवन–मूल्यों का तीव्र विरोध करते हुए मानव व्यक्तित्व के स्वस्थ विकास के लिए युगानुकूल नये जीवन मूल्यों का आह्वान किया है। विवाह, सतीत्व, प्रेम की एक निष्ठता तथा पवित्रता, नारी की पतिपरायणता तथा आदर्शवादिता, स्त्री–पुरुष संबंधों और आचरण–संहिता आदि का युग–बोध अपनी कहानियों में करवाया है। यशपाल ने अपनी कहानियों में उस मध्यवर्ग के जीवन को प्रस्तुत किया है जो दलित और शोषित होने के साथ ही यौन–कुण्ठाओं और आडम्बरों तथा रुढ़ियों से ग्रस्त है। यशपाल ने उनके जीवन संघर्ष का युग–बोध प्रस्तुत करने का सफल प्रयास किया है।

9.4 सारांश

इस प्रकार स्पष्ट है कि यशपाल की कहानियों का विषय एक सा नहीं रहा बल्कि अनेक विषयों पर इन्होंने अपनी कलम चलाई। इन्होंने जीवन के अनेक क्षेत्रों की कुरुपता को उघाड़कर रख दिया है। साहित्य–रचना यशपाल के लिए साध्य नहीं, साधन है। यशपाल का लक्ष्य समाज के विभिन्न पहलुओं को प्रस्तुत करना है जिसके लिए वह अपने लक्ष्य पर अग्रसर भी रहे हैं।

9.5 कठिन शब्द

1. गतिविधियों
2. प्रवृत्त
3. अग्रसर
4. विश्लेषण
5. सतर्क
6. अन्तर्निहित
7. गावाक्ष
8. विकलांग

9. आडम्बर

9.6 अभ्यासार्थ प्रश्न

प्र1) कहानीकार के रूप में यशपाल का परिचय लिखें।

————————————————————————————————————

————————————————————————————————————

————————————————————————————————————

————————————————————————————————————

————————————————————————————————————

प्र2) यशपाल की कहानियों का विषय क्या रहा? उस पर टिप्पणी कीजिए।

————————————————————————————————————

————————————————————————————————————

————————————————————————————————————

————————————————————————————————————

————————————————————————————————————

9.7 पाठनीय पुस्तकें

1. यशपाल की सम्पूर्ण कहानियाँ, भाग–2
2. यशपाल की सम्पूर्ण कहानियाँ, भाग–3
3. यशपाल की सम्पूर्ण कहानियाँ, कथ्य और शिल्प
4. यशपाल : व्यक्तित्व एवं कृतित्व

****

यशपाल की कहानियों की मूल संवेदना

10.0 रूपरेखा

10.1 उद्देश्य

10.2 प्रस्तावना

10.3 'करवा का व्रत' कहानी की मूल संवेदना

10.4 'परदा' कहानी की मूल संवेदना

10.5 'दुख का अधिकार' कहानी की मूल संवेदना

10.6 'आदमी का बच्चा' कहानी की मूल संवेदना

10.7 सारांश

10.8 कठिन शब्द

10.9 अभ्यासार्थ प्रश्न

10.10 पठनीय पुस्तकें

10.1 उद्देश्य

प्रस्तुत आलेख के अध्ययनोपरांत आप पाठ्यक्रम में निर्धारित कहानियों की मूल संवेदना को समझ सकेंगे।

10.2 प्रस्तावना

साहित्यकार सृजनात्मक कार्य करते समय किसी विषय के संदर्भ में सामान्य जन के भाव से तादातम्य स्थापित करके जब अपने भीतर की प्रतिक्रिया सार्वजनिक तौर पर व्यक्त करता है तब उसकी यह प्रतिक्रिया मात्र उसकी न रहकर सामान्य जन की प्रतिक्रिया बन जाती है। इसी प्रतिक्रियात्मक क्षमता को साहित्य में संवेदना के नाम से जाना जाता है। साहित्य में यह संवेदना अनेक रूपों में चित्रित होती है फिर भी इनमें रचनाकार की व्यक्तिगत संवेदना की भूमिका अधिक रहती है क्योंकि साहित्यकार तत्कालीन आर्थिक, धार्मिक, सामाजिक तथा राजनैतिक प्रभावों से रू–ब–रू होकर अपने भावों व विचारों को साहित्य में अभिव्यक्त करता है।

जब मनुश्य 'स्व' तक सीमित होकर संवेदनशून्य होता जाता है तब मनुष्य को समाज तथा संवेदना से जोड़ने में साहित्यकार महत्वपूर्ण भूमिका निभाता है। साहित्य प्रायः मानव हृदय से सम्बन्धित होता है। सृजनधर्मी हृदय से निकली संवेदना रचना के माध्यम से पाठक के हृदय तक पहुँचती है। इस प्रकार संवेदना का विस्तार होता है और इस विस्तार का माध्यम साहित्य है। यहीं संवेदना यशपाल की कहानियों में उभरकर सामने आई हैं।

10.3 'करवा का व्रत' कहानी की मूल संवेदना

'करवा का व्रत' कहानी में दाम्पत्य सम्बन्ध में पुरुष की अधिकार भावना के चलते नारी के साथ हुए अन्याय को लेखक ने स्पष्ट किया है। पुरुष अपनी अहं भावना के चलते नारी के प्रति किस तरह संवेदनहीन हो जाता है उसी संवेदनहीनता को यशपाल ने प्रस्तुत किया है। इस कहानी की पात्र लाजवन्ती विवाह से जुड़े प्रत्येक धर्म का निर्वाह करती है किन्तु उसका पति कन्हैया उसके आदर्श रूप को नहीं देखता। वह लाजो के प्रति संवेदनहीन व्यवहार करता है। जब लाजो पति के रूखे व्यवहार के कारण रूठ जाती तो कन्हैया मनाने की अपेक्षा उसे डाँट देता, ''...एक–आध बार उसने थप्पड़ भी चला दिया। मनौती की प्रतीक्षा में जब थप्पड़ पड़ गया तो दिल कट कर रह गया और लाजो अकेले में फूट–फूट कर रोयी। फिर उसने सोच लिया–चलो, किस्मत में यही है तो क्या हो सकता है। वह हार मानकर खुद ही बोल पड़ी।''

कन्हैया का यही दुर्व्यवहार पत्नी के लिए बढ़ता ही जाता है क्योंकि उसे अपने अधिकार और शक्ति का संतोष अनुभव होने लगा था। पति द्वारा किये गए अत्याचार को सहना लाजो की मजबूरी थी। लाजो को शारीरिक पीड़ा तो होती थी पर उससे भी अधिक अपमान की पीड़ा होती। इतना सब सहने के पश्चात् भी वह चुपचाप घर का सारा काम करती है। इसके बावजूद पति उसके मन की भावना को नहीं समझता, ''इच्छा न होने पर भी कन्हैया की इच्छा का विरोध न करती पर मन ही मन सोचती रहती, इससे तो अच्छा है मर जाऊँ और फिर समय पीड़ा को कम कर देता।''

लाजवन्ती अपने वैवाहिक जीवन से समझौता करती जा रही थी। इसी तरह जब करवा का व्रत आता है तो मौहल्ले की सभी औरतें इस व्रत का आनंद लेती हैं किन्तु वह इतनी खुशी नहीं मना पाती जो एक विवाहित स्त्री को मनानी चाहिए। पति दोस्तों के साथ समय व्यतीत करते हुए रुपये खर्च कर आता है और पत्नी का सरगी का सामान घर नहीं ला पाता। पति के इस व्यवहार से लाजो का मन बुझ जाता है। वह सोचती है– ''...इन्हीं के लिए तो व्रत कर रही हूँ और यह ही ऐसी रुखाई दिखा रहे हैं।...''

लाजो जब भी पति से अपनी नाराज़गी व्यक्त करती है तो वह उसे प्रेम से मनाने की अपेक्षा बात–बात पर डाँट देता। इस तरह दोनों के रिश्ते में खटास पैदा होने लगती है। पति की असंवेदना इतनी बढ़ जाती है कि उसका हाथ बार–बार पत्नी पर उठता है। जिसका स्पष्ट उदाहरण इस प्रकार मिलता है, ''. ..आज तुझे ठीक कर ही दूँ... उसने कहा और लाजो को बाँह से पकड़, खींचकर गिराते हुए.... जोर से ताबड़–तोड़ जड़ दिये...।''

अत्यधिक प्रताड़ित होने के पश्चात् लाजो पति का दुर्व्यवहार सहन नहीं करती। स्पष्ट है हर व्यक्ति के सहन करने की सीमा होती है और जब वह सीमा टूटती है तो उसका बोलना या क्रोध करना स्वाभाविक है। उसी तरह लाजो के बर्दाश करने की सीमा भी जब पार हो जाती है तो वह पति के अत्याचारों का विरोध करती है। यहाँ तक कि पति के लिए रखा करवा का व्रत भी तोड़ देती है जो उसके साहसी रूप को दर्शाता है, ''लाजो का क्रोध भी सहन की सीमा पार कर चुका था।... मार ले, मार ले! जान से मार डाल! पीछा छूटे! आज ही तो मारेगा। मैंने कौन व्रत रखा है तेरे लिये जो जनम–जनम तेरी मार खाऊँगी।

मार, मार डाल...।''

पत्नी के मुख से यह बात सुनकर कन्हैया स्तब्ध रह जाता है। उसके विद्रोहीशील रूप को देखकर उसके व्यवहार में परिवर्तन आने लगता है। पति द्वारा उसे जो प्रताड़ना मिली है, लाजो ने उस अत्याचार का विरोध किया। लाजो के इस विरोध से पति को अहसास होता है कि उसका व्यवहार पत्नी के प्रति अनुचित था। इस तरह कन्हैया पत्नी के प्रति धीरे–धीरे संवेदनशील हो जाता है। घर के काम में उसकी मदद करता है। उसकी हर जरुरत का पूरा ध्यान रखता है। परिणामस्वरूप जब पुनः करवा का व्रत आता है तो वह भी पत्नी के लिए व्रत रखता है। पत्नी के मना करने पर कन्हैया कहता है कि, ''तुम्हें अगले जन्म में मेरी जरूरत है तो क्या मुझे तुम्हारी जरूरत नहीं है? या तुम भी व्रत न रखो आज?''

अंततः दोनों प्रेमपूर्वक व्यवहार करते हैं। परिणामस्वरुप पति–पत्नी का वैवाहिक जीवन मधुर हो जाता है।

इस कहानी में लेखक की संवेदना लाजवन्ती के प्रति रहती है जो पति द्वारा प्रताड़ित थी। प्रस्तुत कहानी के माध्यम से यशपाल ने यह भी बताने का प्रयास किया है कि स्त्री को स्वयं ही अपने पर हो रहे अत्याचारों का विरोध करना पड़ेगा। अगर वह ऐसा नहीं करेंगी तो उसे त्रासद व दुखदायी जीवन ही जीना पड़ेगा। इसके अतिरिक्त लाजो का चरित्र उन नारियों को भी सचेत करता है जो ऐसा अभिशप्त जीवन जीने के लिए मजबूर हैं।

10.4 'परदा' कहानी की मूल संवेदना

प्रस्तुत कहानी में एक ऐसी संवेदना को चित्रित किया है जो झूठी प्रतिष्ठा एवं शान में जीना चाहता है परन्तु उसकी आर्थिक विपन्नता पथ–पथ पर उसके आड़े आकर उसकी मान–मर्यादा को चोट पहुँचाती है। कहानी का पात्र चौधरी पीरबख्श संघर्षशील व्यक्ति के रूप में उभरकर सामने आया है। पीरबख्श के पूर्वजों का मान–सम्मान और समाज में रुतबा था। एक सम्पन्न परिवार से जुड़ा व्यक्ति जब स्वयं आर्थिक विषमता से जूझता है तो उसकी क्या स्थिति होती है उसका उल्लेख यशपाल द्वारा रचित 'परदा' कहानी में मिलता है। पीरबख्श विभिन्न परिस्थितियों से जूझकर भी अपने संयम को बरकरार रखता है।

पीरबख्श के दादा दारोगा थे। जैसे–जैसे परिवार बढ़ता गया तो ज़िम्मेदारियाँ भी बढ़ती गईं। जिसके चलते आर्थिक स्थिति में गिराव आने लगा। पीरबख्श अधिक पढ़ा–लिखा व्यक्ति नहीं था। इसके पश्चात् भी एक तेल की मिल में मुंशीगिरी करके अपने परिवार को पालता है। विपरीत हालात के बावजूद वह अपने भीतर की संवेदना को बनाए रखता है। कहानी के नायक पीरबख्श को एक छोटी–सी कच्ची बस्ती में शरण लेनी पड़ती है। जहाँ पर मोची, दर्जी, धोबी जैसे मेहनतकश गरीब लोग रहते थे। इनके बीच चौधरी पीरबख्श की शान थी क्योंकि वह उस बस्ती में पढ़ा–लिखा और सफेदपोश व्यक्ति था। सबसे बड़ी बात यह थी कि इस बस्ती में किसी के दरवाजे पर परदा नहीं लटका था, सिर्फ उनके ही घर की ड्योढी पर परदा था। यही परदा उनकी शान था, पूर्वजों की प्रतिष्ठा का सम्मान था, घर की औरतों का रक्षक था। वह पूर्वजों की शान–शौकत को बनाए रखता है जो एक संवेदनशील व्यक्ति का कर्त्तव्य भी है लेकिन कर्त्तव्य की आड़ में झूठी प्रतिष्ठा रखकर वह घर की औरतों को बाहर नहीं निकलने देता, ''...उनके घर की औरतों को कभी किसी ने गली में नहीं देखा था... बच्चियाँ चार–पाँच बरस की उम्र तक किसी काम–काज से बाहर निकलती और फिर घर की आबरू के ख्याल से उनका बाहर निकलना मुनासिब न था।''

उक्त कथन द्वारा स्पष्ट है कि पीरबख्श के परिवार की महिलाएँ घर से बाहर नहीं जाती थीं। परिवार के प्रति अपना दायित्व निभाना एक सकारात्मक सोच है लेकिन जब व्यक्ति आर्थिक विपन्नता को झेलता है तो वहाँ प्रतिष्ठा से अधिक महत्वपूर्ण आर्थिक जरूरतें होती हैं। ऐसी स्थिति में परिवार के सभी सदस्य जब तक स्वयं स्वावलम्बी नहीं बनेंगे तब तक वह एक अच्छा जीवन नहीं व्यतीत कर पाये गए। कहानी का नायक पीरबख्श अपनी इज्ज़त के डर से औरतों को घर के भीतर यानी उस परदे के पीछे रखता है और स्वयं ही प्रत्येक काम करता है। परिवार की चिन्ता करना पीरबख्श की संवेदनशीलता को प्रस्तुत करती है। आय अधिक न हो पाने के कारण वह परिवार की हरेक आवश्यकता को पूरा करने में असमर्थ था। परिवार की चिन्ता उसे सदैव रहती है इसलिए आवश्यकता पढ़ने पर पीरबख्श घर की छोटी–छोटी चीज़ गिरवी रखकर उधार लेने लगा था। कर्ज़ लेना उसकी मजबूरी थी क्योंकि परिवार में पाँच महिलाएँ थीं। जिनके शरीर पर से कपड़े जीर्ण होकर गिरते जा रहे थे। चौधरी की आमदनी से किसी तरह एक वक्त के खाने का जुगाड़ हो तो पाता था लेकिन अन्य सुख–सुविधाओं

से परिवार वंचित रहता। इतना ही नहीं बच्चों को कभी चौराई तो कभी बाज़रा उबालकर खिलाया जाता। वह लाचार होकर बाबर अलीखां से कर्ज लेता है। प्रस्तुत कहानी में बाबर अलीखां एक ऐसा व्यक्ति है जो लोगों को कर्ज देकर सूद लेता है। मुख्य किरदार चौधरी जब समय पर उसका रुपया नहीं लौटा पाता तो बाबर अलीखां चौधरी के घर जाकर उसकी गैर मौजूदगी में गाली देता है, ''नई बदजात, चोर बीतर से चिपा है। अम चार गण्टे में फिर आता है। रुपिया नई देगा तो उसका खाल उतारकर बाजार में बेच देगा... हमारा रुपिया क्या हराम का है?'' बाबर का उक्त कथन उसकी संवेदनहीनता का परिचय देता है।

चौधरी पीरबख्श उसके डर से सुबह ही घर से बाहर निकल गया था। अपनी जान–पहचान के कई आदमियों के पास जाता है ताकि कहीं से रुपये का इंतजाम हो सके। उसकी बेबसी का वर्णन इस प्रकार हुआ है, ''अरे भाई, हों तो बीस आने पैसे दो–एक रोज के लिये देना। ऐसे ही जरूरत आ पड़ी है।''

स्पष्ट है कि आर्थिक विपन्नता के कारण उसे जगह–जगह ठोकर खानी पड़ती है। समय पर रुपया न चुकाने पर उसे बाबर अलीखां का अपमान सहना पड़ता है। उसके ऊँचे स्वर से आस–पास के पड़ोस के मोची और मज़दूर चौधरी के दरवाज़े के सामने इकट्ठा हो गये। खान क्रोध में डण्डा फटकार उससे कहता है कि यदि पैसा नहीं देना था तो उधार लिया क्यों? उसके क्रोध तथा कर्ज़ तले दबा हुआ पीरबख्श कुछ नहीं कर सकता था इसीलिए वह अपनी लाचारी का वास्ता देते हुए उसके समक्ष हाथ जोड़ता है, ''पैसा भी घर में नहीं, बर्तन भी नहीं, कपड़ा भी नहीं। खान चाहे तो बेशक उनकी खाल उतार कर बेच ले।'' उसकी त्रासद स्थिति तथा बेबसी को देखकर भी खान का हृदय नहीं पसीज़ता। वह क्रोध में आकर कहता है कि, ''अम तुम्हारा खाल का क्या करेगा, उसका तो जूती बी नई बनेगा। तुमारा खाल से तो ये टाट अच्छा...।''

असंवेदनशीलता के चलते खान उसकी लाचारी को नहीं समझ पाता लेकिन जब गुस्से में आकर वह टाट रूपी परदा खींचता है तो उसके घर की वास्तविकता से परिचित होकर वह शर्मसार हो जाता है। घर के अंदर का दृश्य असहनीय था क्योंकि घर की औरतों के शरीर पर कपड़े के नाम पर चीथड़े थे जो, ''उनके एक तिहाई अंग ढकने में भी असमर्थ थे।''

करुणा भरा दृश्य देखकर बाबर अलीखाँ का कठोर हृदय पिघल जाता है। वह बिना कुछ कहे और लिये परदे को आँगन में फेंककर चुपचाप वहाँ से चला गया। अंततः चौधरी के शरीर में भी इतनी हिम्मत नहीं रही थी कि वह पुनः उस परदे को लगाता क्योंकि परदा अब तक जिस इज्ज़त की रक्षा कर रहा था, वह सभी के सामने उजागर हो गई थी। यशपाल ने इस कहानी में मध्यवर्गीय आर्थिक स्थिति को दर्शाकर यह बताना चाहा है कि यदि पीरबख्श प्रतिष्ठा की अपेक्षा अपने घर की महिलाओं को बाहर निकलने देता तो वह भी मेहनत करके उसका सहयोग देती। कुछ काम करके घर की रोज़ी–रोटी चलाने में योगदान देतीं लेकिन दिखावी तबके से ताल्लुक रखने वाले पीरबख्श को यह मंजूर न था क्योंकि उन्हें यदि कुछ प्यारा था तो वह था केवल अपनी प्रतिष्ठा। दूसरी तरफ यशपाल ने बाबर अलीखां के माध्यम से यह भी दिखाया है जो व्यक्ति पीरबख्श के साथ असंवेदनहीन व्यवहार करता है जब उसके सामने सच्चाई आती है वह भी उसके प्रति संवेदनशील हो जाता है। ऐसी स्थिति में पाठक वर्ग कैसे अछूता रह पाता। यहीं इस कहानी की संवेदना है।

निष्कर्ष :– रचनाकार ने इस कहानी में पीरबख्श के संघर्ष को तो दिखाया है साथ ही उसकी झूठी प्रतिष्ठा एवं आर्थिक विषमता को दर्शाकर यह संदेश देना चाहा है यदि विषम परिस्थितियों से बाहर निकलना है तो व्यक्ति को झूठी प्रतिष्ठा की जंजीरों को तोड़ना होगा जो उसे घेरे हुए हैं क्योंकि अगर हम मान–मर्यादा को लेकर ही बैठे रहेंगे तो इस जटिल समाज से जीवन व्यतीत करना मुश्किल है। स्पष्ट है कि यशपाल की रचना का अंतिम बिंदु आदर्श नहीं है बल्कि मध्यवर्गीय शानो–शौकत तथा दिखावे की प्रवृत्ति को सामने लाना है। साथ ही पाठक के मन में इस पर्दे का रहस्य जानने की इच्छा प्रबल होती है जिसके चलते वह अंत तक इस रहस्य के खुलने की प्रतीक्षा में कथा को पूरी तन्मयता तथा एकाग्रता के साथ पढ़ता है।

10.5 'दुख का अधिकार' कहानी की मूल संवेदना

'दुःख का अधिकार' कहानी में यशपाल ने अन्तर्जगत और बाह्य जगत में संघर्ष कर रही वृद्धा की करुण स्थिति का वर्णन किया है। साथ ही समाज की उस कुरुपता पर गहरा प्रहार किया है जो वर्ग भेद के चलते निम्न वर्ग की त्रासद स्थिति को अपने जीवन अनुसार ढालना चाहते हैं। कहानी की प्रमुख पात्र

बुढ़िया का जीवन संघर्षों से जूझ रहा है। बेटे भगवाना की मृत्यु पश्चात् उसे ही परिवार का पालन–पोषण करना पड़ता है जो उसके जीवन को और भी अधिक कठिन बनाता है। परिवार में बहू ज्वर ग्रस्त है और छोटे–छोटे बच्चों की भूख को मिटाने के लिए वह घर से बाहर निकली है, ''... लड़के सुबह उठते ही भूख से बिलबिलाने लगे। दादी ने उन्हें खाने के लिए खरबूजे दे दिये लेकिन बहू को क्या देती? बहू का बदन बुखार से तवे की तरह तप रहा था। अब बेटे के बिना बुढ़िया को दुअन्नी–चवन्नी भी कौन उधार देता।''

बेटे की मृत्यु का दुःख भी बुढ़िया नहीं मना पाई। वह अपने दर्द को भीतर ही दबाकर भगवाना के बटोरे हुए खरबूजे डलिया में समेटकर बाज़ार बेचने को जाती है। वह सिर पर चादर लपेटे हुए थी और सिर को घुटनों पर टिकाये हुए फफक–फफक कर रो रही थी। बुढ़िया खरबूजे बेचने का साहस करके आयी थी लेकिन आस–पास के लोग और दुकानदार वाले उसे हिम्मत व दिलासा देने की अपेक्षा उस वृद्ध स्त्री पर व्यंग्य कसते हैं जो उनकी संवेदनहीनता को दर्शाता है, जिसका उल्लेख इन पंक्तियों द्वारा मिलता है, ''एक आदमी ने घृणा से एक तरफ थूकते हुए कहा– ''क्या जमाना है! जवान लड़के को मरे पूरा दिन नहीं बीता और यह बेहया दुकान लगा के बैठी है।''

स्पष्ट है कि समाज बूढ़ी स्त्री की विवशता से रू–ब–रू न होकर सामाजिक व धार्मिक मानदण्डों के स्तर पर उस पर व्यंग्य कर रहे हैं। उनका मानना है कि पुत्र शौक का सूतक समय होने पर भी वह बाहर खरबूजे बेचने आई है, ''जवान बेटे के मरने पर तेरह दिन का सूतक होता है और वे यहाँ पर, बाज़ार में आकर खरबूजे बेचने बैठ गयी है। हज़ार आदमी आते–जाते हैं। कोई क्या जानता है कि इसके घर में सूतक है। कोई इसके खरबूजे खा ले तो उसका ईमान–धर्म कैसे रहेगा? क्या अंधेर है?''

यहाँ लेखक ने व्यक्ति के भीतर लुप्त हो रही मानवीयता को दर्शाया है किंतु इस कहानी के गौण पात्र उस बूढ़ी स्त्री के प्रति कठोर व्यवहार करते हैं जबकि वह उसकी वास्तविक स्थिति को जाने बिना ही अपने तर्कों द्वारा उसे संवेदनहीन माँ सिद्ध कर रहे हैं। यहाँ तक कि वे उस बूढ़िया के बुढ़ापे व लाचारी को न देखकर कहते हैं कि ऐसे कमीने लोग रोटी के टुकड़े पर जान देते हैं। रोटी ही इनके लिए महत्वपूर्ण है। इनके लिए रिश्ते यानी की बेटा–बेटी, खसम–लुगाई,

धर्म–ईमान सब रोटी का टुकड़ा है।

इतना ही नहीं जब ऐसी ही परिस्थिति का सामना उच्च वर्ग की बूढ़ी स्त्री को करना पड़ता है तो वहाँ समाज पुत्र शौक में द्रवित हो उठता है। इस कहानी में लेखक ने दोनों स्त्रियों पर दृष्टि डालते हुए समाज की मानसिकता पर प्रहार किया है। निम्न वर्ग की स्त्री का अपने बेटे का शौक न मनाने का कारण आर्थिक असुविधाएँ थी। यदि वह बाहर नहीं निकलती तो उसके परिवार का पालन–पोषण कैसे होता? परिवार का उत्तरदायित्व उसके ही कंधों पर था, इसीलिए न चाहते हुए भी उसे अपने बेटे का दुख भीतर ही दबाकर रखना पड़ता है। वहीं उच्च वर्ग की स्त्री सुविधा सम्पन्न है। उस पर परिवार का दायित्व नहीं है इसीलिए वह अपने बेटे का दुःख भीतर नहीं दबा पाती जिसका स्पष्टीकरण लेखक ने इस प्रकार दिया है, ''...उन्हें पन्द्रह–पन्द्रह मिनट बाद पुत्र वियोग से मूर्च्छा आ जाती थी और मूर्च्छा न आने की अवस्था में आँखों से आँसू न रुक सकते थे।... शहर भर के लोगों के मन उस पुत्र–शोक से द्रवित हो उठे थे।''

दोनों ही बूढ़ी स्त्रियाँ अपने पुत्र के लिए संवेदनशील थीं। अन्तर केवल इतना है कि एक स्त्री सुविधा सम्पन्न है इसलिए अपने दुख को रोकर प्रकट करती है। दूसरी बूढ़ी स्त्री सुविधा सम्पन्न नहीं है उसे अपना घर चलाने के लिए अपने आँसुओं को पीना पड़ता है। स्पष्ट है कि प्रत्येक व्यक्ति को अपने दुखों पर पूरा अधिकार है। समाज के अनुसार हमें अपने दुखों को प्रकट नहीं करना है। इस कहानी की मूल संवेदना हमारे समक्ष यह भी प्रश्न करती है कि यदि हमारे सामने ऐसी दुखदायी स्थिति आ जाती है और हमें आर्थिक विषमता का भी सामना करना पड़े तो हम यहाँ धर्म को देखेंगे या अपने दायित्व को निभाएंगे।

10.6 'आदमी का बच्चा' कहानी की मूल संवेदना

'आदमी का बच्चा' कहानी में लेखक ने बग्गा साहब की पाँच वर्षीय बेटी डौली के बाल–मनोविज्ञान का चित्रण करते हुए उसकी संवेदनशीलता को दर्शाया है। डौली अपनी आयु के बच्चों के साथ खेलना चाहती है, उन्हीं की तरह आज़ाद रहना चाहती है परन्तु उसकी माँ को डर है कि इन बच्चों के साथ रहने से उसकी आदत बिगड़ जाएगी। इस कहानी में लेखक ने बच्ची की मनोव्यथा के

साथ–साथ अभिजात–वर्ग की जीवन–शैली को भी प्रस्तुत कर उनमें उभर आई अमानवीय वृत्तियों पर चोट की है। डौली का बालपन उच्च व नीच का भेद नहीं समझता इसीलिए वह अपने माली के बच्चों के साथ खेलती है। निम्न वर्ग के बच्चों के साथ खेलना उसके माता–पिता को पसन्द नहीं। एक दिन जब डौली की माँ, बेटी के सिर में जूँ देखती है तो उसके मन में निम्न–वर्ग के बच्चों के प्रति हेयता का भाव भरना आरम्भ हो जाता है। डौली की भावनाओं व उसे क्या पसंद है, यह जानने की इच्छा रखते हुए वह बेटी को लाड से पाठ पढ़ाती है, ''डौली तो प्यारी बेटी है, बड़ी ही सुन्दर, बड़ी ही लाडली बेटी। हम इसको सुन्दर–सुन्दर कपड़े पहनाते हैं। डौली, तू तो अंग्रेज़ों के बच्चों के साथ स्कूल जाती है न बस में बैठकर। ऐसे गन्दे बच्चों के साथ नहीं खेलते न।''

डौली की माँ बच्ची के भीतर इस तरह का बीज़ बोकर उसके अन्दर की संवेदना व मासूमियत को धीरे–धीरे खत्म कर रही थी। माँ के समझाने के उपरान्त भी डौली पाँव पटक कर रोती है कि उसे माली का छोटा बच्चा दो, वह उससे प्यार करेगी। तब माँ उसे समझाती है कि वह गन्दा बच्चा है, गन्दे बच्चों के साथ खेलने से छी–छी वाले हो जाते हैं, इनके साथ खेलने से जुएं पड़ जाती हैं। वे गन्दे हैं काले–काले हैं। इतना ही नहीं डौली की माँ आया को आदेश देती है कि डौली को मैनेजर साहब के बच्चों– रमन और ज्योति के पास ले जाया करो, वहाँ खेल आएगी।

माँ का निम्नवर्ग के प्रति भेद–भाव उनकी संवेदनहीनता को दर्शाता है। माँ की बात का अनुसरण बेटी पूर्ण रूप से निभाती है। डौली के घर में डैनी नाम की कुतिया रहती है जो पिल्ले को जन्म देती है। डौली के पिता बग्गा साहब ऐसी नस्ल की कुतिया किसी के पास न हो पाए, उसके लिए वह पिल्लों को मेहतर से कहकर गरम पानी में डूबोकर मरवा देते हैं। उनके इस व्यवहार से संवेदनहीनता का पता चलता है वहीं बेटी को जब मेहतर द्वारा पता चलता है कि डैनी के पिल्लों को गरम पानी में डुबो कर मार दिया गया तो उसके मन में यह बात घर कर जाती है। उसका बालमन बार–बार प्रश्न पूछता है कि पिल्लों को गरम पानी में डुबोकर क्यों मार दिया? डौली की जिज्ञासा को शान्त करने के लिए आया झूठ बोलती है कि कुतिया डैनी अपने पिल्लों को दूध नहीं पिला पाती थी। ''वे भूख से चेऊँ–चेऊँ कर रहे थे, इसलिए उन्हें मरवा दिया।''

इसी तरह जब डौली के समक्ष माली के बच्चे की स्थिति सामने आती है। एक दिन डौली देखती है कि माली अपने नए बच्चे को लिए जा रहा है और मालिन उसके पीछे रोती चली जा रही है। डौली अपने साथ चल रही आया से इस बारे में पूछती है तो वह डौली को बताती है कि माली का बच्चा मर गया है। जिज्ञासावश डौली पूछती है कि क्या उसे गरम पानी में डुबो दिया गया। तब आया उसे समझाती है कि आदमी के बच्चों को ऐसे थोड़े मारते हैं। आया पुनः उस बच्ची को समझाने का प्रयत्न करती है कि वह मर गया, भूख से मर गया है, परन्तु डौली चुप न हुई, उसने आया से पूछा कि क्या वे भी भूख से मर जाएंगे। आया का मातृ–हृदय डौली के चेहरे की सरलता देखकर पिघल उठता है, वह डौली के बाल सहलाती हुई कहती है कि धनी वर्ग के बच्चे भूख से नहीं मरते, भूख से मरते हैं कमीने आदमियों के बच्चे।

बच्ची के सवालों तथा उसके अबोध मन को देखकर आया का गला रुंध जाता है, वह भी इन्हीं कमीने आदमियों के वर्ग की सदस्य है। उसका बेटा लल्लू भी भूख से मर गया था, तभी से उसने धनी साहिब के यहाँ नौकरी की है।

इस कहानी में लेखक ने धनी अभिजात वर्ग की बच्ची डौली की बाल संवेदना को व्यक्त किया है जो निर्धन निम्न वर्गीय बच्चे की भूख के कारण हुई मृत्यु पर द्रवित हो उठी है और यही समझती है कि उसे भी गर्म पानी में डुबो कर मार दिया गया होगा जैसे कि कुतिया के पिल्ले को मार दिया गया था। बच्ची का बाल–मन आदमी के बच्चे और कुत्ते के बच्चे में कोई विशेष भेद नहीं कर पाता।

10.7 सारांश

यशपाल की कहानियों के माध्यम से विभिन्न सामाजिक स्थिति का पता तो चलता है साथ ही उससे जुड़ी संवेदना का भी ज्ञात होता है। 'करवा का व्रत' कहानी एक आदर्श पत्नी को चित्रित करते हुए उसके विद्रोहीशील रूप को भी वर्णित करती है। 'परदा' कहानी मुस्लिम परिवार की त्रासदी व झूठी प्रतिष्ठा पर आधारित है जो अपना सारा जीवन इसी प्रतिष्ठा में जीता है और अन्ततः इसका परिणाम दुखदायी होता है। 'दुःख का अधिकार' कहानी में एक वृद्ध स्त्री के जीवन संघर्ष को वर्णित किया है जो अपनी वेदना को हृदय में दबाकर

परिवार को पालती है। 'आदमी का बच्चा' कहानी निम्नवर्ग व उच्चवर्ग का भेद बताती है। दो वर्गों में बंटा यह समाज बच्ची डौली के बालमन को नहीं समझ पाता।

10.8 कठिन शब्द

1. विपन्नता
2. विषमता
3. वृत्तियों
4. कुरुपता
5. त्रासद
6. उत्तरदायित्व
7. विद्रोही
8. द्रवित

10.9 अभ्यासार्थ प्रश्न

प्र1) 'करवा का व्रत' कहानी में नारी की वेदना पर प्रकाश डालिए।

____

____

____

____

____

प्र2) 'परदा' कहानी की मूल संवेदना पर प्रकाश डालिए।

प्र3) 'दुख का अधिकार' कहानी के आधार पर वृद्ध नारी की संवेदना पर प्रकाश डालिए।

प्र4) 'आदमी का बच्चा' कहानी की मूल संवेदना का चित्रण कीजिए।

10.10 पठनीय पुस्तकें

1. यशपाल, कहानी संग्रह, तर्क का तूफान,
2. यशपाल की सम्पूर्ण कहानियाँ, भाग–2
3. यशपाल की सम्पूर्ण कहानियाँ, भाग–3

****

पाठ्यक्रम में निर्धारित कहानियों का समीक्षात्मक अध्ययन

11.0 रूपरेखा

11.1 उद्देश्य

11.2 प्रस्तावना

11.3 'आदमी का बच्चा' कहानी का समीक्षात्मक अध्ययन

11.4 'करवा का व्रत' कहानी का समीक्षात्मक अध्ययन

11.5 'परदा' कहानी का समीक्षात्मक अध्ययन

11.6 'दु:ख का अधिकार' कहानी का समीक्षात्मक अध्ययन

11.7 निष्कर्ष

11.8 कठिन शब्द

11.9 अभ्यासार्थ प्रश्न

11.10 पठनीय पुस्तकें

11.1 उद्देश्य

इस पाठ के अध्ययनोपरांत आप–

– यशपाल की कहानियों की कथावस्तु से परिचित हो सकेंगे।

– इनकी कहानियों में अभिव्यक्त सामाजिक दृष्टिकोण को जान सकेंगे।

– पाठ्यक्रम में निर्धारित कहानियों के समीक्षात्मक अध्ययन द्वारा कहानी के तत्वों से परिचित हो सकेंगे।

11.2 प्रस्तावना

हिन्दी कहानी की विकास परम्परा में यशपाल एक ऐसे लेखक हैं जिनमें यथार्थवादी रचना दृष्टि के अनेक स्तर और अनेक रूप विद्यमान हैं। केवल कथा वस्तु के आधार पर ही नहीं बल्कि शिल्प के स्तर पर भी इनका साहित्य उपलब्धियों को छूता है।

11.3 'आदमी का बच्चा' कहानी का समीक्षात्मक अध्ययन

विद्वानों ने कहानी के छः तत्व माने हैं–

1. कथानक या कथावस्तु 2. चरित्र–चित्रण 3. संवाद

4. देशकाल और वातावरण 5. भाषा–शैली 6. उद्देश्य।

इन तत्वों के आधार पर कहानी की समीक्षा निम्नलिखित है–

(1) **कथानक या कथावस्तु** :– कहानी की कथावस्तु संक्षिप्त होती है और तीव्रता से अपने लक्ष्य की ओर बढ़ती है। कहानी में मार्मिक घटना का ही वर्णन होता है, इसमें प्रासंगिक कथा की कोई छूट नहीं होती। कथानक के विकास की चार स्थितियाँ होती हैं– (क) प्रारम्भ (ख) विकास (ग) कौतूहल और द्वन्द्व (घ) चरम सीमा।

कहानीकार कथानक का विकास करते समय इन सभी स्थितियों को पार करता हुआ तीव्र गति से कहानी को उसके लक्ष्य तक पहुँचाता है। आजकल घटना सहित कहानियाँ भी प्रकाशित हुई हैं।

विषय की अपेक्षा कथावस्तु में संवेदना, संघर्ष, कौतूहल, सत्य का उद्‌घाटन करती हैं। आधुनिक विद्वान तो कथा–विकास के केवल तीन सोपान ही मान रहे हैं– 1. प्रारम्भ 2. चरम सीमा 3. अन्त।

'आदमी का बच्चा' कहानी का कथानक स्थिति चित्रण से आरम्भ होता है। बग्गा साहिब और उनकी पत्नी जो अपनी अबोध बच्ची डौली के भीतर निम्नवर्ग तथा उच्चवर्ग का भेद उत्पन्न करते हैं। इस तरह के कार्यकलापों से इस कहानी में वर्ग विशेष का परिचय मिलने लगता है और ऐसे अभिजात परिवार में बच्ची की स्थिति का पता चलता है कि उसका विकास प्राकृतिक न होकर एक वर्ग विशेष के स्वभाव के अनुकूल किया जा रहा है। कैसे उसे निम्नवर्ग के बच्चों से दूर रखा जाता है। इसी प्रक्रिया के चित्रण में कथानक विकास निहित है। कहानी का अंत अचानक ही मार्मिक हो उठता है और चरमोत्कर्ष वहाँ आता है जहाँ आया अपने लल्लू की मृत्यु का स्मरण करती हुई वर्गगत पीड़ा को व्यक्त कर देती है। कथानक का विकास घटनाओं की अपेक्षा वार्तालापों में ही होता है।

(2) **पात्र और चरित्र–चित्रण :–** कहानी में पात्रों का चरित्र विकास भी पूरे विस्तार से नहीं होता, चरित्र के ऐसे अंश पर ही प्रकाश डाला जाता है जिससे पात्र का व्यक्तित्व झलक उठे। कहानी के पात्र सजीव होने चाहिए, वे यथार्थ लोक के ही प्राणी होने चाहिए, कल्पनालोक के नहीं। उनका खान–पान, रहन–सहन, वेश–भूषा, रूप–रंग, स्वभाव कहानी में स्पष्ट उभरना चाहिए। कथोपकथन अथवा पात्रों के परस्पर वार्तालाप द्वारा उनका चरित्र प्रत्यक्ष होता है।

प्रस्तुत कहानी के पात्र वैयक्तिक न होकर वर्ग–प्रतिनिधि हैं। कहानी में चीफ इंजीनियर बग्गा और उसकी पत्नी अभिजात वर्ग का प्रतिनिधित्व करते हैं। जबकि माली, धोबी और आया निम्नवर्गीय पात्र हैं। बग्गा साहिब की बेटी डौली दोनों वर्गों के बीच फंसी हुई है और धीरे–धीरे उसकी नैसर्गिक वृत्तियों को मार कर उसमें वर्गीय चरित्र विकसित किया जा रहा है।

बग्गा साहिब अपनी और अपनी कुतिया की नस्ल को रेयर बनाए रखने में विश्वास रखता है और ऐसी नस्ल किसी के पास न हो, उसके लिए वह कुतिया के बच्चों को मरवा देता है। यहाँ तक कि उसकी पत्नी में भी ऐसे ही लक्षण देखने को मिलते हैं। दोनों स्वस्थ और उच्च प्रतिष्ठित संतान को महत्व देते हैं। जिसके चलते डौली की माँ अपनी बेटी के मन में

उच्चवर्ग और निम्नवर्ग का अन्तर बताते हुए उसे अपने जैसे परिवार के बच्चों के साथ खेलने की प्रेरणा देती है।

कुतिया डैनी के पिल्लों और भुखमरी का शिकार हो रहे धोबी तथा आया के बच्चों के प्रति मार्मिकता उभार कर लेखक दोनों वर्गों के बीच की खाई को स्पष्ट कर देता है। कहानी के पात्र वर्गगत वृत्तियों के अनुरूप निर्मित हुए हैं परन्तु ये पात्र कठपुतलियाँ न होकर सजीव प्रतीत होते हैं। विशेषकर बग्गा साहिब की पत्नी। जिसका मातृत्व दर्शनीय है।

(3) **कथोपकथन :–** संवाद या कथोपकथन का कहानी में महत्व है। कहानी के संवाद संक्षिप्त, चुस्त, सजीव, संगत, चटुल और पात्रानुकूल होने चाहिए। इस दृष्टि से कहानी के कथोपकथन सार्थक हैं। ये संवाद वर्गीय चेतना के उद्घोषक हैं। डौली और उसकी माँ के मध्य संवाद तथा डौली और उसकी आया के परस्पर के संवाद विशेष प्रभावशाली हैं। डौली पाँच–छः साल की जिज्ञासु बच्ची है। उसकी जिज्ञासा को शांत कर रही आया और माता के कथन उद्देश्य को स्पष्टता की ओर ले जाते हैं। कहानी में कुछ सूचना धर्मी कथन हैं जो कथानक को विकसित करते हैं। संवाद सशक्त, चुस्त, स्थितिसंगत और चटुल हैं, ''डौली ने अपनी भोली, नीली आँखें आया के मुख पर गड़ा कर पूछा, ''आया, माली के बच्चे को क्या गरम पानी में डुबो दिया?

छिः डौली, ऐसी बातें नहीं कहते! आया ने धमकाया, ''आदमी के बच्चे को ऐसे थोड़े ही मारते हैं!''

(4) **देशकाल और वातावरण :–** कहानी में देशकाल की अपेक्षा वातावरण का महत्व अधिक रहता है क्योंकि कहानी एक मनःस्थिति का चित्रण करती है। वेशभूषा, साज–सज्जा, रीति–रिवाज, रहन–सहन आदि देशकाल का चित्रण मनःस्थिति के स्पष्टीकरण के लिए ही होता है। वस्तुतः पात्र की आस्था और विश्वास, उसकी कुण्ठा और साहस की अभिव्यक्ति उसके इर्द–गिर्द बुने गए वातावरण से ही संभव हो पाती है।

इस कहानी में अभिजात्य वर्ग के इर्द–गिर्द का वातावरण बनाया गया है।

बग्गा साहिब को मिल से लाने के लिए गाड़ी भेजी जाती है। उसके आने के पहले डौली को कपड़े बदलकर तैयार किया जाता है, वह निश्चित समय में चाय पीता है, खाना खाता है, उसकी सारी दिनचर्या टाइमटेबल के अनुसार चलती है। उसका यांत्रिक जीवन वर्गगत वातावरण बुनता प्रतीत होता है। डौली का पालन–पोषण भी ऐसे वर्गगत वातावरण में होता है। उसे निर्धन निम्नवर्ग के बच्चों के साथ खेलने नहीं दिया जाता क्योंकि उन लोगों के वातावरण को हेय दृष्टि से देखा जा रहा है। वातावरण कहानी के पात्रों के मानसिक विकास के लिए कारक बनकर उभरा है।

(5) **भाषा शैली :–** कहानी की सफलता अभिव्यक्ति की कुशलता पर निर्भर करती है। यदि उद्देश्य बढ़िया हो परन्तु भाषा और शैली उचित न हो तो कहानी आकर्षित नहीं करती। कहानी की भाषा सरल, स्पष्ट, प्रवाहपूर्ण, चुस्त और सशक्त होनी चाहिए, मुहावरों और लोकोक्तियों का प्रयोग कहानी को संवारता है। भाषा भावानुकूल हो, ''...भूख से मरते हैं कमीने आदमियों के बच्चे! कहते–कहते आया का गला रुँध गया। उसे अपना लल्लू याद आ गया।''

प्रस्तुत कहानी की भाषा बड़ी सशक्त और भावनुकूल है। लेखक ने कल्पना की अपेक्षा जीवन के यथार्थ को व्यक्त किया है इसलिए भाषा शैली में कल्पना का अतिरेक नहीं, अभिधात्मकता अधिक है। लेखक ने अभिजात पात्रों की वर्गीय मानसिकता को उजागर करने के लिए उन्हीं की चलन्त भाषा का उपयोग किया है, लक्षणा व्यंजना की अपेक्षा भाषा में स्पष्टता अधिक है। भाषा को तद्भव और देशज शब्दों द्वारा विकसित किया गया है, शैली विवरणात्मक है। जैसे अंग्रेजी शब्दों का प्रयोग इस प्रकार हुआ है– कान्वेण्ट, यूनिवर्सिटी, दिस इज़ वेरी सिली, नोटिस, कम्पनी आदि।

(6) **उद्देश्य :–** कहानी का सर्जन लेखक किसी–न–किसी उद्देश्य की पूर्ति के लिए करता है। कहानी का उद्देश्य लेखक के व्यक्तित्व पर निर्भर होता है। कहानी मानव–मन के प्रकाशन के लिए, किसी विचारधारा के प्रचार–प्रसार के लिए, कोई सामाजिक परिवर्तन लाने के लिए, अनुभव की अभिव्यक्ति के लिए लिखी जा रही है।

प्रस्तुत कहानी का उद्देश्य वर्ग वैषम्य को प्रस्तुत करना है और मार्क्सवादी विचारधारा के अनुसार लोगों को अभिजात्य और निम्नवर्ग के बीच के फर्क के प्रति जागरुक करना और निम्नवर्ग के प्रति सहानुभूति उत्पन्न करना है। लेखक अभिजात्य वर्ग के प्रति किसी घृणा को प्रेरित नहीं करता न ही उसके विरुद्ध कोई टिप्पणी करता है। भारतीय जनमानस में पैदा हो रहे साम्यवादी भावों को उजागर करना ही लेखक का उद्देश्य प्रतीत होता है जिसे प्रस्तुत करने में लेखक सफल रहा है।

11.4 'करवा का व्रत' कहानी का समीक्षात्मक अध्ययन

कथानक व कथावस्तु :– प्रस्तुत कहानी की कथावस्तु में नारी को केन्द्र में रखा गया है। कहानी का विकास स्थितियों के अनुकूल है। कहानी की पात्र लाजवन्ती पति का अगले जन्म में साथ पाने के लिए करवा का व्रत रखती है किन्तु बदले में उसे पति का साथ नहीं केवल उपेक्षा ही मिलती है। जिसका चित्रण कर लेखक ने लाजो की मनोव्यथा को दर्शाया है, ''लाजो का मन और भी बिंध गया। कुछ ऐसा खयाल आने लगा– इन्हें के लिए तो व्रत कर रही हूँ और यह ही ऐसी रुखाई दिखा रहे हैं। ...मैं व्रत कर रही हूँ कि अगले जनम में भी 'इन' से ही ब्याह हो और इन्हें मैं सुहा ही नहीं रही हूँ....। अपनी उपेक्षा और निरादर से भी रोना आ गया। कुछ खाते न बना। ऐसे ही सो गयी।''

उसके चरित्र तथा कथानक में संघर्ष की स्थिति तब आती है जब वह अत्याचारों के विरुद्ध आवाज़ उठाकर पति के लिए करवा का व्रत नहीं रखती। यहीं से कहानी फलागम की ओर बढ़ती है। कन्हैया अपनी पत्नी के विराट रूप को देखकर अचम्भित हो जाता है और पत्नी के लिए निष्ठुर न रहकर उसका सहयोगी बनता है। जब पुनः करवा का व्रत आता है तो कन्हैयालाल पत्नी को उपवास रखने को मना करता है कि, ''...यों कुछ मंगाना है तो बता दो, लेते आएँगे। व्रत उपवास से होता क्या है? सब ढकोसले हैं।''

पति के मना करने पर लाजो करवा का व्रत रखती है। इतना ही नहीं जब उसे ज्ञात होता है कि कन्हैया ने भी उपवास रखा है तो दोनों का प्रेम इस प्रकार झलकता है, ''...तुम्हें अगले जन्म में मेरी जरूरत है तो क्या मुझे तुम्हारी जरूरत नहीं है? या तुम भी व्रत न रखो आज?''

लाजो पति की ओर कातर आँखों से देखती हार मान गयी।'' पति–पत्नी के दाम्पत्य सम्बन्धों में परम्परावादी और समय के अनुसार बदलती मानसिकता को दर्शाया गया है।

चरित्र–चित्रण :– कोई भी कहानी किसी–न–किसी पात्र के विषय में ही होगी। यह पात्र कोई व्यक्ति, पशु–पक्षी, अथवा कोई वस्तु भी हो सकती है। प्रस्तुत कहानी में कन्हैया और लाजवन्ती प्रमुख पात्र हैं जो दोनों के वैवाहिक जीवन से सम्बन्धित है। कहानी में हेमराज गौण पात्र के रूप में सामने आया है।

कन्हैया एक ऐसा पात्र है जिसमें नकारात्मक एवं सकारात्मक दोनों पक्ष उसके चरित्र में दृष्टिगोचर होते हैं। कन्हैया आरम्भ में कट्टर पुरुषवादी सोच को दर्शाता है जिसके लिए नारी उसके हाथों की कठपुतली है। कन्हैया शुरुआत में अपनी पत्नी लाजो को वस्तु समझकर उसके साथ अभद्र व्यवहार करता है। वह पत्नी पर अपना अधिकार जताना चाहता है। वह लाजो के जीवन को अपने अनुसार चलाने का प्रयास करता है। किन्तु जब वह विरोध करती है तो उसके इस विरोध से उसकी पुरुषवादी मानसिकता खण्डित होती हैं। इस खण्डन से कन्हैया के चरित्र में सकारात्मक पक्ष का निर्माण होता है जो कन्हैया पत्नी को दासी समझता था अब वही उसका सहयोगी बनता है।

वहीं लाजवन्ती के चरित्र में हमें आदर्शवादी व विद्रोही रूप दृष्टिगोचर होता है। लाजवन्ती पहले तो पत्नी धर्म का पालन करती है किन्तु अपना दायित्व निभाने के बावजूद जब पति उसके प्रति प्रेमपूर्वक व्यवहार नहीं करता है तो वह इस कटु व्यवहार का विरोध करती है। जिसके परिणामस्वरूप उसके पति में बदलाव आ जाता है।

प्रस्तुत कहानी का पात्र हेमराज गौण रूप में सामने आता है। वह भी पुरुषवादी सोच का प्रतिनिधित्व करता है। उसके अनुसार नारी पुरुष की गुलाम है। उसका प्रत्येक कार्य पुरुष की देख–रेख में होना चाहिए क्योंकि उसका मानना है कि स्त्री को अपने अधीन रखकर ही पुरुष वर्चस्व स्थापित किया जा सकता है।

देशकाल और वातारण :– इस कहानी में गृहस्थ जीवन से सम्बन्धित वातावरण

को चित्रित किया गया है। जिसके अन्तर्गत विवाह से जुड़े विवाहपूर्व मित्रों का वैवाहिक जीवन से सम्बन्धित सुझाव, दोस्तों से बातचीत, करवा के व्रत का माहौल, स्त्रियों का करवा चौथ के व्रत की बात करना, पड़ोस से तड़के, बर्तन–भांडे खटकने की आवाज़े, सुबह–सुबह पड़ोस की स्त्री के साथ करवा के व्रत की कथा सुनना, ताश या जुए की बैठक जमाना। इस तरह के दृश्यों का वातावरण बुना गया है जो कहानी में रोचकता उत्पन्न करता है।

भाषा–शैली :– कहानी की भाषा सशक्त, भावानुकूल और स्थिति उद्घाटित करने वाली होनी चाहिए। इस दृष्टि से देखें तो करवा का व्रत कहानी की भाषा स्थिति के अनुकूल है। कहानी की नारी पात्र आठवी कक्षा तक पढ़ी–लिखी है। उसकी भाषा मनोभावों के अनुकूल है, ''लाजो की कल्पना बावली हो उठी थी। वह सोचने लगी– मैं मर जाऊ तो इनका क्या है और ब्याह कर लेंगे। जो आयेगी, वह भी करवा चौथ का व्रत करेगी।...''

कहानी में कही भी कलिष्ट भाषा का प्रयोग नहीं हुआ है। भाषा विचार और उद्देश्य को वहन करने में सक्षम रही है। अरबी–फारसी जैसे शादी और रोटी आदि शब्दों का प्रयोग कहानी के विकास में निहित है। इसी के साथ संवादात्मक शैली का भी सफल प्रयोग किया है, ''...क्या पागल हो, कहीं मर्द भी करवाचौध का व्रत रखते हैं?... तुमने सरगी कहाँ खाई है?''

नहीं, नहीं, यह कैसे हो सकता है। कन्हैया नहीं माना, ''तुम्हें अगले जन्म में मेरी जरूरत है तो क्या मुझे तुम्हारी जरूरत नहीं है? या तुम भी व्रत न रखो आज।''

उद्देश्य :– प्रस्तुत कहानी का उद्देश्य पति–पत्नी के परस्पर सम्बन्ध को समानता के स्तर पर स्थापित करना है। पति के लिए पत्नी एक वस्तु न होकर एक व्यक्ति है। इसके अतिरिक्त यशपाल ने यह भी बताने का प्रयास किया है कि जब तक नारी स्वयं अपने लिए आवाज़ नहीं उठाएगी तब तक कोई भी उसकी सहायता के लिए आगे नहीं आएगा। इसमें एक तरफ जहाँ लाजो का परम्परागत रूप झलकता है तो वहीं उसमें आई चेतना की झलक भी देखने को मिलती है। लाजो का पत्नी धर्म का पालन करना, उसके चरित्र को गुणवान बनाता है। इसके पश्चात् भी वह सम्मान नहीं दिया जाता जिसकी वह अधिकारी है। इस तरह पति–पत्नी के दाम्पत्य सम्बन्ध में आई अस्थिरता को देखकर लेखक इस

समस्या के प्रति जागरुकता पैदा करना चाहता है। जिसमें वह सफल भी हुआ है। यशपाल ने इस बात पर भी दृष्टि डाली है कि नारी का प्रेम मात्र अधिकार से नहीं पाया जाता बल्कि प्रेमपूर्वक व्यवहार करने में ही पत्नी के प्रेम व सम्मान को पाया जा सकता है।

11.5 'परदा' कहानी का समीक्षात्मक अध्ययन

कथानक :– कहानी तो कथानक के बिना हो ही नहीं सकती। घटनाओं और परिस्थितियों का क्रमबद्ध ढंग से, तर्कपूर्ण और विश्वसनीय ढंग से वर्णन ही कथानक कहलाता है। 'परदा' कहानी में पीरबख्श के पूर्वजों और कुनबे का सविस्तार वर्णन किया गया है। यह कहानी चौधरी पीरबख्श के परिवार की गरीबी तथा आर्थिक विषमता का चित्रण करती है। यशपाल ने इस कहानी के माध्यम से मध्यवर्गीय मुस्लिम परिवार की आर्थिक विपन्नता को दर्शाया है जो पाठक के मन में गहरी सहानुभूति छोड़ जाती हैं। मुश्किल से घरवालों का पेट भरना, तन ढकने की समस्या तो थी ही लेकिन खानदान की पुरानी प्रतिष्ठा को बरकरार रखने के मोह में चौधरी पीरबख्श इस तरह फंसते जाते हैं कि घर की चीज़ें तक गिरवी रख देते हैं। उसके जीवन की दुखःद स्थिति का वर्णन इस प्रकार हुआ है, ''कपड़े की महंगी के ज़माने में घर की पाँचों औरतों के शरीर से कपड़े जीर्ण होकर यों गिरते जा रहे थे जैसे पेड़ अपनी छाल छोड़ देते हैं पर चौधरी साहब की आमदनी से दिन में एक बार किसी तरह पेट भर सकने के लिए आटे के अलावा कपड़े की गुंजाइश कहाँ थी?''

जहाँ यह कहानी चौधरी पीरबख्श की आर्थिक स्थिति को प्रस्तुत करती है वहीं दरवाज़े पर लटका परदा घर भर की औरतों के शरीर का वस्त्र भी है। यहाँ परदा जर्जर संस्कारों व झूठे दिखावे का प्रतीक है। बाबर अली से लिया कर्ज जब पीरबख्श नहीं दे पाता तो वह उसे गाली देकर घर के दरवाजे पर लटके परदे को झटक देता है तो उस समय परदे के पीछे का यथार्थ देखकर मोहल्ले वालों की आँखें बंद हो जाती हैं। उस दृश्य को देखकर पत्थर दिल वाले पठान का हृदय भी कांप उठता है। अंततः परदे के हटते ही उस घर की स्त्रियों के फटेहाल रूप को देखते ही आसपास के लोग तथा खान की कठोरता पिघल जाती है, लेकिन चौधरी पीरबख्श की सारी प्रतिष्ठा समाप्त हो जाती है जो उसने उस परदे के पीछे छुपा रखी थी, ''घर की औरतें और लड़कियाँ परदे के

दूसरी ओर घटती घटना के आतंक से आँगन के बीचों–बीच भय से इकट्ठी खड़ी हो काँप रही थीं। सहसा परदा हट जाने से औरतें ऐसे सिकुड़ गयीं जैसे उनके शरीर का वस्त्र खींच लिया गया हो। ...उनके शरीर पर बचे चीथड़े उनके एक तिहाई अँग ढकने में भी असमर्थ थे।...''

पात्र–चित्रण :– कहानी में मुख्य पात्र एक ही है– चौधरी पीरबख्श। इस पात्र के अतिरिक्त कुछ पात्र ऐसे हैं जो क्षणभर के लिए उपस्थित होकर अपनी छाप छोड़ जाते हैं। सहायक रूप में इन पात्रों का नाम उल्लेखनीय है जो कथा को बढ़ाते हैं जैसे चौधरी फ़जलकुर्बान, चौधरी इलाहीबक्श, पंजाबी खान बबरअलींखा। चौधरी पीरबख्श के माध्यम से लेखक ने एक ऐसे व्यक्ति का चित्रण किया है जिसके पूर्वज सम्पन्न और सामाजिक प्रतिष्ठा से सम्बन्धित थे। पीरबख्श के स्वयं का जीवन आर्थिक रूप से इतना सबल नहीं था। पूर्वजों की शान पर आंच न आए इसीलिए वह अपनी मान–मर्यादा को बनाए रखने का भरकस प्रयास करता है फिर भी वह आर्थिक विपिन्नता के कारण उसमें असफल रहता है। इस दृश्य को प्रस्तुत कर लेखक ने पीरबख्श की मनोदशा तथा उसके संघर्ष को प्रस्तुत किया है जो झूठी प्रतिष्ठा की आड़ में अपने गृहस्थ जीवन का सत्य छुपाए रखता है।

वातावरण व देशकाल :– प्रस्तुत कहानी में जो वातावरण दिखाया गया है वह मध्यवर्ग से प्रारम्भ होकर निम्नवर्ग की ओर बढ़ता है। जिसमें दोनों के परिवेश का आकलन हुआ है। मध्यवर्गीय परिवेश के अन्तर्गत चौधरी खानदान अपने मकान को हवेली पुकारता था, ''...बाहर बैठक में वे मोढ़े पर बैठकर नेचा गुड़गुड़ाया करते थे, ...पर्दा बोरी के टाट का नहीं, बढ़िया किस्म का लटकाया जाता था।'' इसमें मध्यवर्गीय दिखावे की प्रवृत्ति को पीरबख्श के माध्यम से दर्शाया है, चाहे वह आर्थिक रूप से सम्पन्न नहीं था फिर भी अपने पूर्वजों का सम्मान समाज में बनाए रखने के लिए एक आवरण ओड़े रखता है। कहानी का मुख्य पात्र जब निम्नवर्गीय परिवेश से जुड़ता है तो उस माहौल का वर्णन भी हुआ है। पीरबख्श सितवा की कच्ची बस्ती में मकान लेता है, उस बस्ती का परिवेश इस प्रकार उकेरा है, ''...कच्ची गली के बीचों–बीच गली के मुहाने पर लगे कमेटी के नल से निरंतर टपकते पानी की काली बार बहती रहती थी, नाली के किनारे घास उग आई थी। नाली पर मच्छरों और मक्खियों के बादल

उमड़ते रहते थे। सामने रमजानी धोबी की भट्ठी थी जिसमें से धुआँ और सज्जी मिले उबले कपड़ों की गंध उड़ती रहती थी। दायी ओर न्यागरा बनाने वाले बीकानेरी मोचियों के घर थे। बायीं ओर वर्कशाप के काम करने वाले कुली रहते थे।''

भाषा :– इस कहानी का शीर्षक 'परदा' एक प्रतीकात्मक शब्द है। इसी शब्द के आधार पर कहानी की संरचना हुई है जिसका रहस्य अंत में खुलता है। कहानी में उर्दू शब्द जैसे बदजात, तालीम आदि के प्रयोग के साथ–साथ अंग्रेज़ी भाषा के शब्द भी देखने को मिलते हैं जैसे प्राइमरी, वर्कशाप, कम्पाउण्डर, एण्ट्रेन्स आदि। यशपाल की प्रस्तुत कहानी के अन्तर्गत घटनाएँ, पात्रों के चरित्र, कार्यकलाप संवाद सभी कुछ इतना सरल और स्वाभाविक है कि सचेष्ट कुछ नहीं लगता।

उद्देश्य :– इस कहानी द्वारा मध्यवर्गीय प्रवृत्ति को दिखाना ही लेखक का उद्देश्य है। इस वर्ग का व्यक्ति चाहे भीतर से कितना ही खोखला क्यों न हो लेकिन अपनी प्रतिष्ठा व मान–सम्मान को बनाए रखने का वह हर सम्भव प्रयास करता है।

11.6 'दु:ख का अधिकार' कहानी का समीक्षात्मक अध्ययन

कथानक व कथावस्तु :– कहानी के आरम्भ में पोशाकों को प्रतीकात्मक रूप में प्रयोग किया है जिसमें मानव को दो स्वरूपों में बांटा गया है। एक बाहरी जिसमें आर्थिक सुख–सुविधाएँ जो मनुष्य के बाहरी जगत से सम्बन्ध रखती हैं जो उन्हें परिस्थितियों के कारण उपलब्ध होती हैं दूसरी आन्तरिक पक्ष जिसमें मनुष्य की आत्मा का वर्णन है जो मानव में एक प्रकार के भाव रखती हैं, ''मनुष्यों की पौशाकें उन्हें विभिन्न श्रेणियों में बाँट देती हैं। प्रायः पोशाक ही समाज में मनुष्य का अधिकार और उसका दर्जा निश्चित करती है...''

इन्हीं पंक्तियों को एक विस्तृत रूप में बांधकर लेखक ने कहानी के रूप में चित्रित किया है। निम्नवर्ग की आर्थिक विपन्नता को कथानक का विषय बनाकर दोनों वर्ग के भेद का भी स्पष्टीकरण किया है। बुढ़ी स्त्री के इर्द–गिर्द इस कहानी को इस प्रकार बुना गया है कि यदि वह किसी कारणवश पुत्र का शोक नहीं मना पाई तो वह लोगों की घृणा का शिकार बन जाती है। ऐसी ही

त्रासदपूर्ण स्थिति का सामना जब सम्पन्न वर्ग की नारी को करना पड़ता है तो लोग उसके शोक में सहानुभूति जताते हैं। दोनों स्थितियों में अन्तर केवल इतना था कि एक स्त्री पुत्र की मृत्यु पश्चात् मूर्च्छित रहती है जिसका स्पष्टीकरण लेखक ने इस प्रकार दिया है, ''...वह सम्भ्रांत महिला पुत्र की मृत्यु के बाद अढ़ाई मास तक पलंग से उठ न सकी थीं। उन्हें पन्द्रह–पन्द्रह मिनिट बाद पुत्र वियोग से मूर्च्छा आ जाती थी और मूर्च्छा न आने की अवस्था से आँखों में आँसू न रूक सकते थे। दो–दो डाक्टर हरदम सिरहाने बैठे रहते थे। हरदम सिर पर बरफ रखी जाती थी। शहर भर के लोगों के मन उस पुत्र–शोक से द्रवित हो उठे थे।''

दूसरी स्त्री उस दुःख को अपने भीतर दबाए परिवार के अन्य सदस्यों का पेट भरने के लिए आर्थिक सुविधाएँ जुटाती है, ''बुढ़िया खरबूजे बेचने का साहस करके आयी थी परन्तु सिर पर चादर लपेटे, सिर को घुटनों पर टिकाये हुए फफक–फफक कर रो रही थी।''

कहानी के अंत में कथाकार दोनों स्थितियों का अवलोकन करके यह आकंलन करता है कि हमारे समाज में जिस प्रकार से शोक सभाओं का आयोजन एवं अपने शोक को प्रदर्शित करने के तरीके निर्धारित हैं। यदि कोई उनसे हटकर विभिन्न परिपाटी को अपनाता है तो उसे बुढ़िया स्त्री की तरह समाज की प्रताड़ना एवं फब्तियों को सहना पड़ता है।

पात्रों का चरित्र–चित्रण :– प्रस्तुत कहानी की पात्र निम्नवर्ग को दर्शाती है और गौण पात्र सम्पन्न वर्ग का प्रतिनिधित्व करते हैं। बुढ़िया और उसका बेटा भगवाना निम्नवर्गीय पात्र हैं जबकि दुकानों में बैठे साहूकार सम्पन्न वर्ग को दर्शाते हैं। कहानी की पात्र बुढ़िया बेटे की मृत्यु पश्चात् स्वयं घर का पालन–पोषण करती है। उसकी विवशता यह है कि वह अपने बेटे भगवाना का शोक भी मना नही पाती। कारण यह है कि बहू ज्वरग्रस्त है और छोटे–छोटे बच्चों का पेट भरने के लिए वह बेटे का गम अपने अन्दर ही दबा लेती है। ''भगवाना की बूढ़ी माँ परिवार की हालत देखकर घर से बाहर निकलती है। भूखे बच्चों का पेट भरने के लिए वह पुत्र–शौक के पहले ही दिन बाज़ार से खरबूजे बेचने के लिए विवश है।''

उसकी त्रासदी से परिचित होकर भी दुकानदार वाले उस बूढ़ी स्त्री पर तरह–तरह की टिप्पणियाँ करते हैं। कौतूहल इस बात का है कि वह ऐसी स्थिति में कैसे बाहर आकर कमा सकती है। लेखक ने उसके प्रति लोगों की निमर्मता को स्पष्ट किया है। इस कहानी में एक बूढ़ी माँ की लाचारी और उसकी दशा पर व्यंग्य कसने वालों का वर्णन भी सफलतापूर्ण हुआ है। वह अपने घर की आर्थिक स्थिति को ठीक करने के लिए पुत्र के शोक की अपेक्षा परिवार के अन्य सदस्य को पालने में विश्वास रखती है। उसके इस साहस को तोड़ने में दुकानवाले उस पर ताने कसते हैं। जो उसके दुःख को कम करने की बजाए और भी बढ़ा देते हैं।

देशकाल और वातावरण :– इस कहानी में निम्नवर्गीय त्रासदी के वातावरण का उल्लेख किया गया है। बूढ़ी माँ के पुत्र की मृत्यु पश्चात् खरबूजे बेचने आना, पड़ोस की दुकानों के तखतों पर बैठे या बाजार में खड़े लोगों का उसे घृणा से देखना, उस पर तरह–तरह के व्यंग्य कसना ऐसे दृश्यों को प्रस्तुत कर लेखक ने मानव की संदेनहीनता को दिखाते हुए निम्नवर्गीय विवश वृद्धा स्त्री का करुणामय चित्रण किया है।

भाषा शैली :– इस कहानी की भाषा सरल एवं स्पष्ट है। कहानी के संवाद संक्षिप्त, सजीव एवं पात्रानुकूल है। प्रस्तुत कहानी की भाषा भावनुकूल होने के साथ–साथ जीवन के यथार्थ को प्रस्तुत करती है। इसमें व्यंग्यात्मक शैली के साथ–साथ उर्दू, अंग्रेज़ी और हिन्दी शब्दों का भी प्रयोग मिलता है जैसे– उर्दू शब्दों में बाज़ार, जवान, आँसू, आदमी, सहूलियत। अंग्रेज़ी शब्द– डाक्टर, फुटपाथ। हिन्दी शब्द– विष, घृणा और संस्कृत शब्द पुत्र आदि शब्दों का प्रचलन भाषा को प्रवाहपूर्ण बनाते हैं। इसके अतिरिक्त व्यंगात्मक वर्णन इस प्रकार हुआ है, ''एक आदमी ने घृणा से एक तरफ थूकते हुए कहा– ''क्या ज़माना है! जवान लड़के को मरे पूरा दिन नहीं बीता और बेहाय दुकान लगा के बैठी है।'' इस कहानी में प्रतीकात्मक भाषा का भी प्रयोग किया है उद्धाहरण स्वरूप पोशाकें यानी कि मनुष्य का बाहरी स्वरूप।

उद्देश्य :– प्रस्तुत कहानी का उद्देश्य मानव मात्र में मर रही संवेदना की ओर संकेत है कि जिस प्रकार एक सम्पन्न परिवार को अपने दुख पर पूरा अधिकार है उसी प्रकार निम्नवर्गीय का भी अपने जीवन व दुखों पर समान अधिकार है

परन्तु इस कहानी में सुख के विपरीत दुख के अधिकारों पर टिप्पणी के साथ समाज में मरणोपरान्त शोक सभाओं की व्यवस्था पर कटाक्ष किया है कि उस वृद्ध स्त्री के लिए शोक सभा में बैठने से अधिक महत्वपूर्ण अपने परिवार के अन्य सदस्यों के लिए धर्नाजन करके उन्हें जीवनदान प्रदान करना था जो एक संवेदनशील व्यक्ति के लिए गलत कदाचित भी नहीं होगा, चाहे समाज उसका पक्षधर न हो।

11.7 निष्कर्ष

अतः यशपाल की कहानियों का समीक्षात्मक अध्ययन करने के पश्चात् कहा जा सकता है कि कहानी तत्वों के आधार पर इनकी कहानियाँ सफल सिद्ध होती हैं। इन्होंने समाज के विविध पक्षों को अपनी कहानियों का केन्द्र बनाकर अपनी प्रतिभा का परिचय दिया है।

11.8 कठिन शब्द

1. निहित
2. यथार्थ
3. साम्यवादी
4. फलागम
5. वर्चस्व
6. प्रवृत्ति
7. निमर्मता
8. मुर्च्छित

11.9 अभ्यासार्थ प्रश्न

प्र1) 'आदमी का बच्चा' कहानी की समीक्षा कीजिए।

प्र2) कहानी के तत्वों के आधार पर 'करवा का व्रत' की समीक्षा कीजिए।

प्र3) 'परदा' कहानी के तत्वों पर प्रकाश डालिए।

प्र4) 'दुःख का अधिकार' कहानी का उद्देश्य स्पष्ट कीजिए।

———————————————————————————————

———————————————————————————————

———————————————————————————————

11.10 संदर्भ ग्रन्थ

1. कहानी संग्रह, तर्क का तूफान, यशपाल
2. यशपाल की सम्पूर्ण कहानियाँ, भाग–2
3. यशपाल की सम्पूर्ण कहानियाँ, भाग–3
4. हिन्दी कहानी का इतिहास, गोपाल राय

****

पाठ्यक्रम में निर्धारित कहानियों के प्रमुख पात्र

12.0 रूपरेखा

12.1 उद्देश्य

12.2 प्रस्तावना

12.3 पाठ्यक्रम में निर्धारित यशपाल की कहानियों में प्रमुख पात्र

12.4 निष्कर्ष

12.5 कठिन शब्द

12.6 अभ्यासार्थ प्रश्न

12.7 पठनीय पुस्तकें

12.1 उद्देश्य

प्रस्तुत आलेख को पढ़ने के उपरान्त आप यशपाल की कहानियों के पात्रों की चारित्रिक विशेषताओं से अवगत हो सकेंगे।

12.2 प्रस्तावना

कथा का विकास चरित्र पर निर्भर करता है साथ ही लेखक की मानसिकता एवं उसका उद्देश्य उसके द्वारा लिखित कथा चरित्रों के माध्यम से ही व्यक्त होता है। इसके अतिरिक्त प्रत्येक कथा में प्रमुख पात्र व गौण पात्र होते हैं। पूरी कथा

प्रमुख पात्र के इर्द–गिर्द घूमती है किंतु गौण पात्र कथा के विकास और प्रमुख पात्र की चारित्रिक विशेषताओं को उभारने में सहायक सिद्ध होते हैं।

12.3 पाठ्यक्रम में निर्धारित यशपाल की कहानियों के प्रमुख पात्र

मिसेज़ बग्गा साहिब का चरित्र :–

बग्गा साहिब और उसकी पत्नी अभिजात्य वर्ग का प्रतिनिधित्व कर रहे हैं। उनका चरित्र व्यक्तिगत न होकर वर्ग चरित्र के रूप में विकसित हुआ है और पति–पत्नी दोनों ही अपनी बेटी डौली को भी वर्ग चरित्र में ढाल रहे हैं। ऐसे तो उनकी दृष्टि में बेटा और बेटी में कोई अंतर नहीं है। बेटी के प्रति उनका प्रेम असीम है। वह सन्तान के लिए अपना उत्तरदायित्व निभाते हैं। पिता उसे उच्च शिक्षा देने के लिए दृढ़ संकल्प किए हुए हैं और माँ उसके बाल मन की ओर ध्यान न देकर उसे निम्न वर्ग के बच्चों के साथ उसके मन के अनुसार नहीं खेलने देती बल्कि आया के माध्यम से उस पर कड़ा नियंत्रण रख रही है ताकि डौली माली के बच्चों से दूर रहे।

चीफ़ इंजीनियर की पत्नी मिसेज़ बग्गा के पास करुण–मातृ हृदय है परन्तु वह भी वर्ग चरित्र का विकास कर चुकी है और बच्ची को निम्नवर्ग के बच्चों के साथ नहीं खेलने देना चाहती है। उदाहरण देखें– बेटी की यह दुर्दशा देख माँ का हृदय पिघल उठा। अंग्रेज़ी छोड़ वे द्रवित स्वर में अपनी ही बोली में बेटी को दुलार से समझाने लगीं– ''डौली तो प्यारी बेटी, है, बड़ी ही सुन्दर, बड़ी ही लाड़ली बेटी। हम इसको सुन्दर–सुन्दर कपड़े पहनाते हैं। डौली, तू तो अंग्रेज़ों के बच्चों के साथ स्कूल जाती है न बस में बैठकर। ऐसे गन्दे बच्चों के साथ नहीं खेलते न!''

''छी...छी...!'' मामा ने समझाया, ''वह तो कितना गन्दा बच्चा है! ऐसे गन्दे बच्चों के साथ खेलने से छी–छी वाले हो जाते हैं। इनके साथ खेलने से जुएँ पड़ जाती हैं। वे कितने गन्दे हैं, काले–काले धत्त! हमारी डौली कहीं काली है? आया, डौली को खेलने के लिए मैनेजर साहब के यहाँ ले जाया करो। वहाँ यह रमन और ज्योति के साथ खेल आया करेगी। इसे शाम को कम्पनी बाग ले जाना।''

वह उसे मालिन के घर नहीं जाने देना चाहती, दो तीन दिन पहले मालिन के घर बच्चा हुआ था और डौली उसे गोद लेने की कई बार ज़िद कर चुकी थी। उधर धोबी के लड़के को पिछले सप्ताह खसरा निकला था। जब डौली उनके घर जाती है तो उन बच्चों के साथ शहतूत के पेड़ के नीचे धूल में से उठा–उठाकर शहतूत खाती है। बेटी की ऐसी स्थिति देखकर वह आया को डाँटती है और डौली के मन में भी वर्गभेद पैदा करने का यत्न करती है। बच्ची आया को भी धोखा देकर माली के घर पहुँच जाती है। आया इस मसले में अपनी सफाई तो देती ही है लेकिन मिसेज़ बग्गा उसे डाँट देती है। इसी के साथ डौली को माँ अंग्रेज़ी में डांटती है। चाहे डौली को अंग्रेज़ी में डाँट समझ न आई हो लेकिन अपने प्रति माँ की उद्विग्नता को समझ जाती है।

बग्गा साहिब की तरह वह भी अधिक संतान की अपेक्षा अच्छी स्वस्थ और समझदार संतान को महत्व देती है। वह निम्न वर्ग के बच्चों के साथ बेटी को इसलिए नहीं खेलने देती कि उसकी आदतें न बिगड़ जाएँ, वह उसे साफ–सुथरा रखती है। उसका मानना है कि जब व्यक्ति बच्चों की देख–रेख अच्छे से नहीं कर सकता तो बार–बार बच्चे को जन्म देने की क्यों सोचता है? डौली की माँ माली के बच्चों के प्रति पति से कहती भी है कि पता नहीं ये बच्चों को कैसे पालते होंगे। दिन के समय चाय पर वह अपने पति से बातचीत करती है कि बच्चे न जाने क्यों छोटे बच्चों से खेलना पसंद करते हैं? वह निम्न वर्ग के लोगों के प्रति हेय भाव प्रदर्शित करती है कि कैसे वे लोग इतने बच्चों को पाल लेते हैं, माली के तीन बच्चे ही थे एक और हो गया है।

वह बेटी डौली को मनुष्य और कुत्ते के बच्चों के जीवन मूल्यों में फर्क करना भी सिखाती है और चाहती है कि उनका ठीक पोषण हो। एक दिन माली के नये बच्चे की 'कें कें' सुनकर मिसेज़ बग्गा को बड़ा बुरा लगता है। उसके पास बैठी डौली पूछती है कि बच्चा क्यों रो रहा है? माली से बच्चे को मेहतर से गरम पानी में डुबवा दो तो वह नहीं रोयेगा। बेटी के मुँह से यह बात सुनकर माँ कहती है, ''दिस इज़ वेरी सिली डॉली... कभी आदमी के बच्चे के लिए ऐसा कहा जाता है।'' यहाँ मिसेज बग्गा जानवर और इंसान के बच्चे का भेद तो बता रही है लेकिन उस बच्ची की मानसिकता को नहीं समझ रही है। बच्ची के बालपन को न समझकर उसके भीतर उच्च व निम्नवर्ग का बीज भो रही है।

अतः माँ का कर्त्तव्य बनता है कि वह अपनी संतान को मानवीयता का पाठ पढ़ाए लेकिन इस कहानी में मिसेज़ बग्गा अपनी बेटी को मानवता से परे हटकर उसके भीतर उच्च व निम्न वर्ग में भेद करवाने वाली माता सिद्ध होती है क्योंकि वह अपनी ही अनुरूप डौली को डालने की कोशिश कर रही है।

कन्हैया का चरित्र :– 'करवा का व्रत' कहानी का प्रमुख पात्र कन्हैया पुरुषवादी मानसिकता को दर्शाता है। जिसके चरित्र में नकारात्मक एवं सकारात्मक दोनों ही रूपों का चित्रण हुआ है। कन्हैया और लाजवन्ती के दाम्पत्य सम्बन्ध में शुरुआत में दोनों के मध्य प्रेम व विश्वास की कमी पाई जाती है और अंत में इनका परस्पर सम्बन्ध नये सांचे में डाला गया है। जिसमें ये एक–दूसरे का सहयोगी बन सफल गृहस्थ जीवन व्यतीत करते हैं। कन्हैया पहले पत्नी के प्रति रूखा व्यवहार करता है। अपने दोस्त हेमराज द्वारा विवाह पूर्व दिये गये परामर्श का अनुसरण अपने गृहस्थ जीवन में करता है।

कन्हैया पत्नी पर अपना अधिकार समझता है। इसी अधिकार के चलते वह लाजों को प्रताड़ित करने से भी नहीं हिचकचाता। ''कन्हैया का हाथ पहले दो बार तो क्रोध की बेबसी में ही चल गया था पर जब चल गया तो उसे अपने अधिकार और शक्ति का संतोश अनुभव होने लगा।''

इसी अधिकार भावना के चलते उसका साहस दिन–प्रतिदिन बढ़ता जाता है। कन्हैया लापरवाह व्यक्ति के रूप में भी सामने आता है। पत्नी के प्रति अपने कर्त्तव्य को भूलकर स्वयं मौज–मस्ती करता है। पति के इस आचरण के बाद भी लाजो भूखी–प्यासी रहकर करवा का व्रत रखती है तो उसके साथ प्रेमपूर्वक व्यवहार करने की अपेक्षा उसे प्रताड़ित करता है। यह जानते हुए भी उपवास में पत्नी के लिए सरगी का सामान आवश्यक है तो उसका प्रबन्ध करने की बजाए उसे डांटता है। पति की लापरवाही से लाजो नाराज़ होती है तो कन्हैया गलती का पश्चाताप् न करते हुए पत्नी से कहता है, ''मालूम होता है दो–चार खाये बिना तुम सीधी नहीं होगी।''

कन्हैयालाल के इस व्यवहार से लाजो टूट जाती है। जब कभी वह पति की बात का उल्लंघन करती तो पत्नी के प्रति कन्हैया का क्रूर व्यवहार बढ़ता ही जाता है। उसके लिए पत्नी मात्र वस्तु थी। परिणामस्वरूप कन्हैया पत्नी को और अधिक

प्रताड़ित करता है। कन्हैया की निर्ममता का उल्लेख इस प्रकार मिलता है, ''यह अकड़ है?... आज तुझे ठीक कर ही दूँ... खींचकर गिराते हुए दो थप्पड़ पूरे हाथ से जोर से ताबड़–तोड़ जड़ दिये और हाँफते हुए लात उठाकर कहा और मिज़ाज दिखा।''

लाजो का क्रोध भी सहन की सीमा पार कर चुका था। पत्नी धर्म को निभाने वाली लाजो अब चुप नहीं रहती बल्कि पति के विरुद्ध जाकर करवा का व्रत तोड़ देती है। पत्नी का विद्रोहीशील रूप कन्हैया के भीतर सकारात्मक परिवर्तन लाता है। वह अपराध बोध से ग्रस्त होकर अब पत्नी के साथ सहजतापूर्ण व्यवहार करता है। उसके सुख–दुख का सहयोगी बनकर गृहस्थ जीवन में भी अपनी भूमिका निभाता है, ''कन्हैयालाल स्वयं ही बिस्तर को झाड़कर बिछा रहा था... लाजो के प्रति इतनी चिन्ता कन्हैयालाल ने कभी नहीं दिखायी थी। जरूरत भी नहीं समझी थी। लाजो को उसने अपनी 'चीज' समझा था। आज वह ऐसे बात कर रहा था जैसे लाजो भी इन्सान हो, उसका भी खयाल किया जाना चाहिए। लाजो को शरम तो आ रही थी पर अच्छा भी लग रहा था।''

इतना ही नहीं जब वह पुनः करवा चौथ का व्रत रखती है तो कन्हैया भी अपनी इच्छा से व्रत रखता है। पत्नी के मना करने पर वह कहता है, ''तुम्हें अगले जन्म में मेरी जरूरत है तो क्या मुझे तुम्हारी जरूरत नहीं है? या तुम भी व्रत न रखो आज?'' इस प्रकार कन्हैया के चरित्र में सकारात्मक रूप उबरकर सामने आता है।

पति–पत्नी का सम्बन्ध जन्म–जन्मांतर का माना जाता है। इनके सम्बन्धों में यदि प्रेम, विश्वास और एक–दूसरे के प्रति सम्मान की भावना रहती है तो वह उनका दाम्पत्य जीवन सुखमय रहेगा।

लाजवन्ती का चरित्र :–

यशपाल ने अपनी कहानी 'करवा का व्रत' में लाजवन्ती को पतिव्रता पत्नी एवं विद्रोहीशील के रूप में चित्रित किया है जिसके चरित्र की विशेषताओं को इस प्रकार देखा जा सकता है–

महत्वाकांक्षी नारी :– कहानी की नारी पात्र लाजवन्ती पढ़ी–लिखी स्त्री है। वह

महत्वाकांक्षी है। परिवार में पिता और बड़ा भाई दोनों ही पुरानी मानसिकता से ग्रस्त व्यक्ति हैं। जिसके चलते वह अपनी इच्छाओं को दबाकर रखती है और सोचती है कि वह विवाह पश्चात् अपने स्वप्न को पूर्ण करेगी, ''उसे बहुत–सी चीज़ों के शौक थे। कई ऐसे भी शौक थे जिन्हें दूसरे घरों की लड़कियों को या नयी ब्याही बहुओं को करते देखकर उसे मन मारकर रह जाना पड़ता था।''

प्रति द्वारा प्रताड़ित :– लाजवन्ती का विवाह कन्हैया से होता है। कन्हैया परम्परावादी पुरुष होने के नाते उसके साथ कठोर व्यवहार करता है। यदि लाजवन्ती अपनी इच्छा उसके समक्ष प्रकट करती है तो वह दो बातें मानकर तीसरी पर इन्कार कर देता। पति के इस व्यवहार से जब लाजो अपनी नाराज़गी को जताती है तो कन्हैया उसे मनाने की अपेक्षा डाँट देता। इतना ही नहीं वह उसे अपनी प्रताड़ना का शिकार बनाता है पति के इस दुर्व्यवहार से लाजो के हृदय को आघात पहुँचता है। लाजो की मनोव्यथा का वर्णन इस प्रकार हुआ है, ''मार से लाजो को शारीरिक पीड़ा तो होती ही थी पर उससे अधिक होती थी अपमान की पीड़ा। ऐसा होने पर वह कई दिन के लिए उदास हो जाती है। घर का सब काम करती रहती।... इच्छा न होने पर भी कन्हैया की इच्छा का विरोध न करती पर मन ही मन सोचती रहती, इससे तो अच्छा है मर जाऊँ।''

पतिव्रता नारी :– पति के बर्ताव से लाजो पीड़ित होकर भी अपना धर्म पूर्ण निष्ठा से निभाती है। लाजवन्ती एक आर्दशवादी नारी के रूप में भी सामने आई है। पति की प्रताड़ना सहकर भी वह करवा का व्रत रखती है क्योंकि उसका मानना है कि, ''करवा चौथ का व्रत भला कौन हिन्दू स्त्री नहीं रखती? जनम–जनम यही पति मिले, इसलिए दूसरे व्रतों की परवाह न करने वाली पढ़ी–लिखी स्त्रियाँ भी इस व्रत की उपेक्षा नहीं कर सकतीं।''

यह संघर्षशील नारी का आदर्श उदाहरण है। लाजो अपने संस्कारों तथा विवाह सम्बन्धित रीति–रिवाज़ों को तोड़ना नहीं चाहती थी। चाहे वह पति से असंतुष्ट है फिर भी उसके लिए व्रत रखकर वह आदर्श नारी का परिचय देती है जो उसके चरित्र को श्रेष्ठ बनाता है।

भावुक स्त्री :– लाजो आदर्श नारी के साथ–साथ एक भावुक स्त्री भी है। करवा

का व्रत रखने के पश्चात् पति सरगी का सामना लाना भूल जाता है तो अपनी भूल को स्वीकारने के बजाए उसे डाँटता है जिससे वह दुःखी होकर कहती है, ''इन्हीं के लिए तो व्रत कर रही हूँ और यह ही ऐसी रुखाई दिखा रहे हैं।... मैं व्रत कर रही हूँ कि अगले जन्म में भी 'इन' से ही ब्याह हो और इन्हें मैं सुहा ही नहीं रही हूँ....।'' वही अपनी उपेक्षा और निरादर से और भी पीड़ित होती है।

कर्त्तव्यनिष्ठ :– लाजो कर्त्तव्यनिष्ठ एवं आज्ञाकारी पत्नी है। वह अपनी इच्छाओं व आकांक्षाओं को दबाकर तथा पति के लम्पट व्यवहार के उपरान्त भी अपना कर्त्तव्य अच्छी तरह निभाती है, ''...सरगी में उसने कुछ भी न खाया। न खाने पर भी पति के नाम का व्रत कैसे न रखती। सुबह–सुबह पड़ोस की स्त्रियों के साथ उसने भी करवे का व्रत न करने वाली रानी और करवे का व्रत करने वाली राजा की प्रेयसी दासी की कथा सुनने का और व्रत के दूसरे अनुष्ठान निबाहे। खाना बनाकर कन्हैयालाल को दफ्तर जाने के समय दिया।''

विद्रोहीशील नारी :– लाजवन्ती विपरीत परिस्थितियों के बावजूद हिम्मत नहीं हारती। कन्हैया की अत्यधिक असहिष्णुता के कारण जब उसे अपने अस्तित्व का बोध होता है तो वह अपने स्वाभिमान के लिए पति के अत्याचारों का विरोध करती है, ''मार ले, मार ले! जान से मार डाल। आज ही तो मारेगा। मैंने कौन व्रत रखा है तेरे लिये जो जनम–जनम तेरी मार खाऊँगी। मार, मार डाल...।''

लाजवन्ती के इस विरोध से पति की मानसिकता में बदलाव आता है। जिसके चलते उनका गृहस्थ जीवन टूटने से बच जाता है।

यशपाल ने लाजवन्ती के माध्यम से ऐसी पत्नी को चित्रित किया है जिसमें आदर्श रूप की छवि तो देखने को मिलती है किन्तु बात जब उसके मान–सम्मान की आती है तो वही आदर्श रूप एक विद्रोहीशील नारी के रूप में परिवर्तित होता है।

यशपाल ने पति–पत्नी के सम्बन्ध और नारी पराधीनता को अत्यन्त गम्भीर समस्या के रूप में प्रस्तुत किया है। उनकी दृष्टि में पति–पत्नी दोनों ही अन्योत्यश्रित है। सामाजिक जीवन में दोनों की भूमिकाएँ महत्वपूर्ण हैं और जीवन के विकास और प्रगति के लिए दोनों का महत्व समान है किन्तु पुरुष प्रधान समाज में नारी को दूसरा दर्जा दिया जाता है। परिणामस्वरूप स्त्री पीड़ित,

असहाय, विवष तथा अपमानित जीवन जीती है। पति–पत्नी जब समान रूप से एक–दूसरे को समझेंगे तथा प्रेम व विश्वास से जीवनयापन करेंगे तभी उनका दाम्पत्य जीवन सुखमय रहेगा।

पीरबख्श का चरित्र :–

यशपाल द्वारा रचित कहानी 'परदा' में पीरबख्श के माध्यम से मुस्लिम परिवार की आर्थिक स्थिति को दर्शाया है। कहानी का पात्र चौधरी पीरबख्श एक प्रतिष्ठित परिवार से सम्बन्धित है, जो खानदान की पुरानी प्रतिष्ठा को कायम रखने के लिए स्वयं सामाजिक वर्जनाओं में पिसता रहता है। कारण यह है कि गरीबी उसके जीवन की सबसे बड़ी त्रासदी रही है। चौधरी पीरबख्श प्राइमरी तक ही पढ़ा है। वह खानदान की इज्ज़त के ख्याल से एक तेल की मिल में मुंशीगिरी करता है। इसके बावजूद वह इतना अधिक कमा नहीं पाता, जिससे वह परिवार की जरूरतों को पूरा कर सके। चौधरी पीरबख्श जिस बस्ती में रहता था, वह कमीन लोगों की बस्ती थी। उस पूरी बस्ती में एक चौधरी ही पढ़ा–लिखा और सफेदपोश व्यक्ति था। उनके घर के अतिरिक्त वहाँ किसी के घर की ड्योढी में पर्दा नहीं लगा था। चौधरी के घर लगा यह परदा इज्ज़त का आधार था, जो भीतर की वास्तविकता को छुपाए रखता है जिसका स्पष्ट उल्लेख इस प्रकार हुआ है, ''मुहल्ले में चौधरी पीरबख्श की इज्ज़त थी... भीतर जो हो, पर्दा सालम रहता था। कभी बच्चों की खींच–खांच या बेदरद हवा के झोकों से उसमें छेद हो जाते तो परदे की आड़ में जनाने हाथ सुई–धागा लेकर उसकी मरम्मत कर देते थे।''

चौधरी पीरबख्श पूर्वजों की प्रतिष्ठा को ओड़े रखता है किन्तु गरीबी उसके संघर्ष को और बढ़ा देती है। उसके घर की औरतों को कभी किसी गली में नहीं देखा गया। यहाँ तक कि घर की बच्चियाँ केवल चार–पांच वर्ष की उम्र तक ही जरूरी कामकाज से बाहर निकली थीं और फिर घर की आबरू के ख्याल से उनका भी बाहर निकलना सम्भव नहीं था। पीरबख्श स्वयं ही घर के प्रत्येक काम करता है क्योंकि वह अपनी मान–मर्यादा पर आँच नहीं आने देना चाहता था।

चौधरी पीरबख्श की आर्थिक स्थिति इतनी खराब थी कि वह पुरखों से प्राप्त

घर की चीज़ों को गिरवी रखता है। परिणामस्वरूप वह कीमत चुकाने में असफल रहता है और फिर उन गिरवी चीज़ों के घर लौट आने की सम्भावना नहीं रहती थी।

आर्थिक विषमता के कारण ही उसे अपने मालिक मकान का अपमान भी सहना पड़ता है। जब चौधरी के घर के दरवाज़े की लकड़ी गलने लगती है तो वह मालिक मकान सुरजू पाण्डे से उसे ठीक करवाने को कहता है। जिसका उत्तर चौधरी को इस प्रकार मिलता है, ''...कौन बड़ी रकम थमा देते हो! दो रुपल्ली किराया और वह भी छः—छः महीने का बकाया। जानते हो, लकड़ी का क्या भाव है? न हो मकान छोड़ दो।''

मालिक के रूखे व्यवहार से उसे आघात पहुँचता है लेकिन मजबूरी के कारण वह उस घर को छोड़ नहीं सकता। घर के जिस दरवाज़े पर पर्दा लटका था, उस दरवाज़े की लकड़ी चाहे गल गई थी फिर भी वह अपने घर के परदे को गिरने नहीं देना चाहता था। चौधरी पीरबख्श के पास इतना रुपया नहीं था कि वह बाज़ार से टाट खरीद सके इसलिए वह पुश्तैनी चीज़ दरी को पर्दे के रूप में लटका देता है। मुहौल्ले वालों ने जब दरी का परदा लटके हुए देखा तो वह चौधरी से कहता है, ''...अरे चौधरी, इस जमाने में दरी को यों कहो खराब करोगे। बाज़ार से लाकर टाट का टुकड़ा न लटका दो'' तो इसका उत्तर देते हुए चौधरी कहता है, ''...होने दो क्या है। हमारी यहाँ पक्की हवेली में भी ड्योढी पर दरी का पर्दा रहता था।'' आर्थिक स्थिति को छुपाने के लिए वह अतीत के पुरखों का गुणगान करता है।

चौधरी पीरबख्श की झूठी प्रतिष्ठा ही एक दिन उस परदे के पीछे की सच्चाई को सामने लाती है। लड़के बरकत के जन्म के समय पीरबख्श को रुपये की आवश्यकता थी। कहीं और से जब रुपये का प्रबन्ध नहीं होता तो वह पंजाबी खान बाबरअलीखां से चार रुपये उधार लेता है किन्तु उसे वापिस लौटा नहीं पाता। जब कर्ज वसूलने पठान उसके घर आता है तो उसका क्रोध अपने चरम पर पहुँचकर पर्दे पर वार करते हुए गालियाँ देता है। खान क्रोध में डण्डा फटकार कह रहा था, ''...पैसा नहीं देना था तो लिया क्यों? तनखाह किदर में जाता? अरामी अमारा पैसा मारेगा। ...अम तुम्हारा खाल खींच लेगा।... पैसा नई है तो गर पर परदा लटका के शरीफज़ादा कैसे बनता?'' खान और भड़क

जाता है और गुस्से में आकर दरवाज़े पर लटकी दरी का परदा झटक देता है। परदा हटने से ही पीरबख्श की झूठी इज्ज़त गिर जाती है। परदे के गिरने के साथ जैसे चौधरी के जीवन की डोर टूट गई और वह डगमगा कर ज़मीन पर गिर पड़ता है। सत्य यह था कि उस परदे के पीछे रहने वाली औरतें बेपरदा हैं। जब परदा गिरता है तो सारी औरतें शर्म और आतंक से आँगन के बीचों–बीच भय से इकट्ठी खड़ी होकर काँप रही थीं। ऐसा लग रहा था कि परदा हट जाने से उनके शरीर का वस्त्र खींच लिया गया हो क्योंकि परदा ही तो घर की औरतों के शरीर का वस्त्र था। दरअसल उनके शरीर पर पूरे वस्त्र नहीं थे, इसीलिए दरवाज़े पर हमेशा परदा लटका रहता था ताकि पीरबख्श की आबरू बनी रहे और परदे का रहस्य किसी के सामने न आए। इस दृश्य को बाहर खड़ी भीड़ जब देखती है तो लज्ज़ित होकर दरवाज़े के सामने से हट जाती है। इतना ही नहीं पठान का दिल भी सहम जाता है। उसकी त्रासदी की सच्चाई से रू–ब–रू होकर वह वापिस लौट जाता है।

अंततः चौधरी ज़मीन पर बेसुध पड़ा था। अब उसमें इतना सामर्थ्य नहीं था कि वह उठकर फिर से परदा लटका सके। शायद उसकी आवश्यकता अब नहीं रही क्योंकि उसके त्रस्द जीवन की वास्तविकता का खुलासा हो चुका था।

यशपाल की यह कहानी झूठे दिखावे की प्रवृत्ति को प्रदर्शित करती है साथ ही पर्दा की प्रतीकात्मकता और परदे के हटने से सामने आने वाले यथार्थ के द्वारा लेखक पीरबख्श जैसे व्यक्तियों की प्रतिष्ठा को ओढ़े रखने पर गहरा प्रहार भी करती है।

वृद्धा स्त्री का चरित्र :–

'दुःख का अधिकार' कहानी की प्रमुख पात्र वृद्धा स्त्री है जो निम्नवर्ग का प्रतिनिधित्व करती है। उसके चरित्र की सबसे बड़ी विशेषता यह है कि विपरीत परिस्थितियों के बावजूद वह हिम्मत नहीं हारती बल्कि अपने परिवार का दायित्व वृद्धावस्था में भी उठाने के लिए तत्पर रहती है। प्रस्तुत कहानी में बुढ़िया ममतामयी माँ है। वह अपने बेटे की जीवन शैली में पूर्ण सहयोग देती है जो उसके चरित्र की गुणवत्ता को श्रेष्ठ बनाता है। परिवार में पुत्र सहित बहू तथा पोता–पोती से भरा–पूरा परिवार सुखी जीवन व्यतीत करता है। पुत्र

भगवाना खरबूजों को बेचकर आर्थिक सुविधाएँ जुटाकर अपना घर चलाता है। माँ भी उसके कार्य में हाथ बटाती है।

अज्ञानता और अंधविश्वास :– बुढ़िया पढ़ी–लिखी स्त्री नहीं थी। इसी अज्ञानता के चलते उसके पुत्र की मृत्यु हो जाती है। सर्प के काटने पर वह डॉक्टर को बुलाने की बजाए ओझा को ले आती है। पुत्र के स्वास्थ्य से सम्बन्धित उसे जो कहा जाता वह उसका पालन अच्छे से करती है। झाड़–फूँक के साथ–साथ वह नागदेव की पूजा भी करती है। पुत्र को ठीक करने में वह कोई कसर नहीं छोड़ती। यहाँ तक कि दान–दक्षिणा के रूप में आटा व अनाज तक दे डालती है। इतना प्रयास करने के पश्चात् भी बेटे को बचा नहीं पाई। हर सम्भव प्रयास करने के पश्चात् भी बुढ़िया अज्ञानतावंश अपने बेटे को खो देती है।

परिवार के प्रति चिन्तित :– बुढ़िया अपने दुख व संताप को हृदय में दबाकर परिवार के प्रति चिन्तित रहती है। बहू बीमार है, पोता–पोती भूख से कलप रहे हैं। इसके पश्चात् भी वह जीवन से हार नहीं मानती। पुत्र को खोने का दर्द उसे सालता जरूर है लेकिन वह पुत्र शोक मनाने की बजाए भगवाना के बटोरे हुए खरबूजे डालिया में समेट कर बाज़ार बेचने चली जाती है क्योंकि वह अपने परिवार को भूख से तड़पते हुए नहीं देख सकती थी, ''लड़के सुबह उठते ही भूख से बिलबिलाने लगे। दादी ने उन्हें खाने के लिए खरबूजे दे दिये लेकिन बहू को क्या देती? बहू का बदन बुखार से तवे की तरह तप रहा था। अब बेटे के बिना बुढ़िया को दुअन्नी–चवन्नी भी कौन उधार देता।''

आर्थिक विपिन्नता के कारण वह बेटे के काम को ही आगे बढ़ाती है ताकि परिवार की त्रासद स्थिति को सुधार सके।

परिश्रमी :– बुढ़िया एक परिश्रमी माँ के रूप में भी सामने आई है। उसका यह रूप उन माओं को भी प्रेरित करता है जो ऐसी दुखद स्थिति में जीवन जीने की चाह छोड़ देती हैं। कहानी की पात्र बुढ़िया पुत्र की मृत्यु के दिन ही बाज़ार में आकर सौदा बेचने के लिए परिश्रम करती है। यदि वह ऐसा नहीं करती तो पोते घर में भूख से तड़पते रह जाते। आर्थिक विषमता के कारण उसे ऐसी अवस्था में भी परिश्रम करना पड़ता है।

समाज द्वारा अवहेलित :– बुढ़िया पुत्र शोक की अपेक्षा परिवार की भूख को

मिटाने के लिए खरबूजे बेचने लगती है तो लोगों को सहन नहीं होता। वह वृद्ध स्त्री की विवशता को देखे–समझे बिना उसे सहानुभूति देने की अपेक्षा तरह–तरह की टिप्पणियाँ करते हैं, ''एक आदमी ने घृणा से एक तरफ थूकते हुए कहा– ''क्या ज़माना है! जवान लड़के को मरे पूरा दिन नहीं बीता और यह बेहया दुकान लगाकर बैठी है।''

परचून की दुकान पर बैठे लालाजी ने कहा, ''अरे भाई, उनके लिए मरे–जिये का कोई मतलब न हो पर दूसरे के धर्म–ईमान का तो खयाल करना चाहिए! जवान बेटे के मरने पर तेरह दिन का सूतक होता है और वे यहाँ सड़क पर, बाज़ार में आकर खरबूजे बैचने बैठ गयी।'' इसी तरह बुढ़िया के प्रति समाज की अवहेलना देखने को मिलती है। यशपाल इस कहानी के माध्यम से यह बताना चाहता है कि विपरीत स्थितियों के कारण व्यक्ति ऐसा निर्णय लेने को मजबूर हो जाता है।

12.4 निष्कर्ष

यशपाल की कहानियों में विभिन्न पात्रों के माध्यम से विभिन्न सामाजिक स्थिति का पता चलता है। आदमी का बच्चा कहानी में मिस्टर बग्गा व उसकी पत्नी उच्च वर्ग का प्रतिनिधित्व करते हैं। जिससे निम्नवर्ग व उच्चवर्ग के मध्य पनपते भेदभाव को उभारा गया है। 'करवा का व्रत' कहानी के माध्यम से लेखक ने एक ऐसी नारी को चित्रित किया है जो पतिव्रता होने के साथ–साथ विद्रोहीशील नारी है। 'परदा' कहानी के पीरबख्श के माध्यम से यशपाल ने व्यक्ति की झूठी प्रतिष्ठा को प्रदर्शित किया है। 'दुःख का अधिकार' कहानी के माध्यम से निम्नवर्गीय त्रासदी को व्यक्त किया है।

12.5 कठिन शब्द

1. उत्तरदायित्व
2. नियंत्रण
3. प्रताड़ित
4. अस्तित्व

5. वर्जनाओं

6. अज्ञानता

12.6 अभ्यासार्थ प्रश्न

प्र1) 'आदमी का बच्चा' कहानी में मिसेज़ बग्गा का चरित्र–चित्रण करें।

————————————————————————————————

————————————————————————————————

————————————————————————————————

————————————————————————————————

————————————————————————————————

प्र2) कहानी 'दुःख का अधिकार' में वृद्धा स्त्री के चरित्र पर प्रकाश डालिए।

————————————————————————————————

————————————————————————————————

————————————————————————————————

————————————————————————————————

————————————————————————————————

प्र3) 'करवा का व्रत' कहानी के पात्र कन्हैया के चरित्र पर प्रकाश डालें।

————————————————————————————————

————————————————————————————————

————————————————————————————————

————————————————————————————————

————————————————————————————————

प्र4) 'परदा' कहानी में चौधरी पीरबख्श के चरित्र–चित्रण पर प्रकाश डालिए।

————————————————————————————————

————————————————————————————————

————————————————————————————————

————————————————————————————————

————————————————————————————————

12.7 पठनीय पुस्तकें

1. यशपाल की कहानी–कला, कुमारी अनुविग
2. यशपाल : व्यक्तित्व एवं कृतित्व
3. यशपाल : कहानी संग्रह, तर्क का तूफान
4. यशपाल की सम्पूर्ण कहानियाँ, भाग–2
5. यशपाल की सम्पूर्ण कहानियाँ, भाग–3

****